लड़ाई के बाद...?

लड़ाई के बाद
3621/B
12 APR 1962
विद्या प्रकाशन मन्दिर
दिल्ली-६

प्रस्तावना

प्रस्तुत उपन्यास का इतिहास अपने में कुछ कम अपूर्व नहीं है, ऐसा मेरा ख्याल है। मूल कथावस्तु पर मैंने सन् १९२० में एक नाटक लिखा था और सत्ताईस वर्षों के बाद सन् १९४७ में वही कथावस्तु (मराठी में) उपन्यास के रूप में प्रकाशित हुई।

सन् १९२० में इंदौर महाराज की 'यशवंत नाटक मंडली' के सूत्र जब गणपतराव बोडस के हाथ में आये, तब उस नाटक मंडली के लिए उन्होंने मुझ से एक नाटक लिखने को कहा। मैंने उन्हें यह कथावस्तु बतायी। वह उन्हें अच्छी लगी और तुरन्त ही नाटक लिखना आरम्भ कर दिया गया। मंडली जिस समय जलगाँव में अपने खेल कर रही थी उस समय नाटक का एक अंक लिखा जा चुका था और कंपनी ने नाटक की 'तालीम' भी शुरू कर दी थी। परन्तु उसी वर्ष के अंत में बोडसजी ने यशवंत मंडली से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। इस कारण नाटक की तालीम वहीं तक रही।

इसके बाद ललितकलादर्श मंडली के केशवराव भोंसले ने इसी नाटक को रंगमंच पर लाने का निश्चय किया। उस समय मंडली टिपनीसजी का 'शहा-शिवाजी' नाटक जमा रही थी। उसके रंगमंच पर आने के बाद यह नाटक रंग-भूमि पर लाया जायगा, ऐसा तय हुआ था। इस नाटक में जो लड़ाई के प्रसंग थे, वे चित्रपट के द्वारा दिखाये जाने की योजना बनाई गई थी और इसलिए यह तय हुआ था कि जब मंडली अपने खेल करने बम्बई जायगी, उसी समय इस नाटक की 'तालीम' शुरू की जायगी। 'शहा-शिवाजी' नाटक रंगभूमि पर आया और गंधर्व तथा ललितकलादर्श दोनों मंडलियों के संयुक्त खेल होने के थोड़े ही दिन बाद,

थाने ४ अक्टूबर १६२१ को, केशवराव भोंसले का देहान्त हो गया। जिस योजना के अनुसार इस नाटक को खेलना तय हुआ था, उस योजना के अनुसार उसका खेला जाना नयी व्यवस्था में, मंडली की आर्थिक दृष्टि से संभव न होने के कारण मैंने मंडली के लिए 'सत्तेचे गुलाम' (हिन्दी अनुवाद 'हक के गुलाम' नामक एक नया नाटक उस समय लिख दिया।

ललितकलादर्श मंडली की आर्थिक दशा अच्छी हो जाने पर जब-जब इस नाटक को रंगमंच पर लाने का प्रयत्न किया गया, तब-तब सरकार से उसके खेलने की मंजूरी न मिली। इसलिए रंगभूमि और चित्रपट के मेल का प्रयोग अंत में कमतनूरकर के "श्री" नाटक के समय किया गया और वह सफल भी हुआ।

कथावस्तु मुझे अत्यन्त प्रिय थी और मैं उसे यूं ही छोड़ देना नहीं चाहता था। नाटक दिखाने के लिए सरकार की मंजूरी लेनी पड़ती है। परन्तु वही कथावस्तु उपन्यास के रूप में छापनी हो, तो सरकार की मंजूरी की जरूरत नहीं होती। इसलिए मैंने उसे उपन्यास के रूप में लिख डाला। शिवरामपंत करदीकर ने अपने 'त्रिकाल' नामक सप्ताहिक पत्र के लिए यह उपन्यास ले लिया और उसके बारह प्रकरण धारावाहिक रूप से उसमें छपे भी। परन्तु आगे चलकर त्रिकाल साप्ताहिक का दैनिक में रूपान्तर हो गया और इसलिए उपन्यास वहीं तक छपकर रह गया। उपन्यास की कथावस्तु युद्ध विरोधी होने के कारण और नाटक के रूप में उसे सरकार की स्वीकृति प्राप्त न होने के कारण कोई प्रकाशक उपन्यास प्रकाशित करने को तैयार ही न होता था। एक प्रकाशक उपन्यास छापने के लिए पांडुलिपि मेरे पास से ले गये और दो साल तक अपने पास ही उसे रखे रहे।

सन १६३६ के आरम्भ में "किताबखाना" वाले श्री दामले ने इस उपन्यास को छापना चाहा। पर कई महीनों तक उसकी छपाई नहीं हो पाई। संयोग ऐसा आया कि इधर उपन्यास के पहिले फार्म का कंपोजिंग पूरा हुआ और उधर उसी समय दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया। इसलिए वह

काम बन्द कर देना पड़ा। उस लड़ाई के जमाने में यदि यह उपन्यास प्रकाशित हो जाता, तो निश्चित ही सरकार इसे जब्त कर लेती। लड़ाई के बाद भी पूरे दो वर्ष गुजर गये और तब कहीं जाकर यह उपन्यास मराठी में प्रकाशित हुआ।

इसके प्रकाशन का आनन्द कितना बड़ा है, इसकी कल्पना मेरे अतिरिक्त और किसी को नहीं हो सकेगी। जहाँ तक मैं जानता हूँ कम-से-कम भारतीय साहित्य में, इस प्रकार का यह उदाहरण पहिला ही होगा। विशेष आनन्द इसलिए होता है कि इस उपन्यास को प्रकाशित होने के लिए भारतवर्ष के स्वतन्त्र होते तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। स्वतन्त्र भारत में ही यह यह उपन्यास प्रकाशित हो यह मेरा बड़ा भाग्य है।

पहिले युद्ध के समय मैं संगमेश्वर में पोस्टमास्टर था। उस समय लड़ाई से लौट कर आये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से मुझे जो जानकारी मिली, उसी के आधार पर यह कथानक लिखा गया है। इसमें लड़ाई की जो घटनायें आई हैं, वे सब यथातथ्य हैं। विशेषतः डाक विभाग के मेरे एक मित्र गोपीनाथ सैतवडेकर ने, जो बैलजियम फ्रंट पर गये थे, और मेरे एक दूसरे मित्र श्री माधवराव कामत ने, जो मेसोपोटामियन, (जिसे आजकल ईराक कहते हैं) फ्रंट पर गये थे, वहाँ की जो सत्य-कथायें सुनाई उन्हीं पर इस उपन्यास के प्रसंग आधारित हैं। इसलिए मैं इस उपन्यास को 'ऐतिहासिक' कहता हूं।

पहिले महायुद्ध के बाद गांवों और शहरों में जो परिस्थिति निर्मित हुई उसी से आगे चलकर मजदूर-आन्दोलन का जन्म हुआ। सच पूछा जाय तो बम्बई के मिल मजदूरों का आन्दोलन किसानों का भी आन्दोलन है। पहिले महायुद्ध के कारण गाँव उजड़ गये, इसलिए गाँवों के किसान बम्बई जाकर मजदूर बने। किसान और मजदूर इन दोनों हैसियतों से निर्मित हुए असंतोष से ही मिल-मजदूरों का आन्दोलन उत्पन्न हुआ।

प्रस्तुत कथानक उसकी प्रस्तावना है। इसके बाद के मजदूरों के आन्दोलन का इतिहास मेरे 'धांवता धोटा' (उड़ती ढरकी) उपन्यास तथा 'सोने का शिखर' नाटक में आया है।

पहिले महायुद्ध के बाद की परिस्थिति और दूसरे महायुद्ध के बाद की परिस्थिति; दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। शिधू और अर्जुनराव के जीवन में महायुद्ध के बाद जो घटनायें घटीं, उन्हें उपन्यास में यद्यपि सजाकर बताया गया है, फिर भी वे निरी काल्पनिक नहीं। जो पर्यवसान हुआ वह चाहे बिल्कुल ही वास्तविक स्वरूप का न हो, परन्तु लाक्षणिक दृष्टि से देखा जाय, तो बिल्कुल ही अवास्तविक नहीं कहा जा सकता। द्वितीय महायुद्ध के बाद का इतिहास पाठकों के सन्मुख है, इसीलिए प्रथम महा-युद्ध के बाद के इतिहास का इससे मिलाकर देखने के लिए यह कथानक उपयुक्त सिद्ध होगा।

महायुद्ध के बाद सामान्य जन-जीवन किस प्रकार क्षत-विक्षत होकर बिखर गया, इसकी अनुभूति आज भी ताजी है। आज भी विश्व की कुछ बड़ी शक्तियाँ इस संसार को शीत-युद्ध में लपेटे हुए हैं तथा कौन जाने कब अपने उन्माद से इस दुनियाँ में विनाश की ज्वाला भड़का दें, पर यह तो निश्चय है कि अगला विश्व युद्ध जितना ही वैज्ञानिक होगा उतना ही उस की विनाश-लीला भयंकर होगी और सामान्य जन-जीवन पूर्व महायुद्ध की अपेक्षा अधिक पीड़ित, दारुण और करुण होगा।

संसद-सदस्य (राज्य सभा)
नई दिल्ली
१ जून १९६१

भा० वि० वरेकर

प्रकाशकीय

मेरे आश्चर्य का उस समय ठिकाना न रहा जब मामा साहब ने एक जोर का ठहाका लगाते हुए कहा कि मैं पहले महायुद्ध के समय पोस्ट-मास्टर जरूर था, पर मैं सैनिक या पोस्ट-मास्टर के रूप में लड़ाई के मैदान में कभी नहीं गया। हाँ, मेरे कुछ मित्र, जो लड़ाई का अनुभव लेकर लौटे थे, उन्हीं से कुछ सुनी सुनाई बातों के आधार पर मैंने इस उपन्यास की रचना की है।

मामा साहब की अनुभूति बड़ी तीव्र और मर्मभेदनी है। उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे पाठक स्वयं युद्ध-भूमि पर उतर कर सब कुछ देख रहा है। जिस कुशलता और मार्मिकता से मामा साहब ने अपने पात्रों की मन:स्थिति का वर्णन किया है, वैसा वर्णन क्या बिना एक बार युद्ध-भूमि में गए कोई कर सकता है और यही मामा साहब की इस उपन्यास में चरमकुशलता है कि युद्ध का अनुभव लिए हुए लोगों की अपेक्षा अधिक मार्मिक अनुभूति की संवेदना वे पाठकों को देते हैं। इसके कुछ पात्र शिधू, अर्जुन आदि जो यथार्थ हैं वे तो अपने में सजीव हैं ही, पर मादेलीन के रूप में करुणा और उज्ज्वल चरित्र की जो सजीव मूर्ति मामा साहब ने खड़ी है वह अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक सजीव और मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ने वाली है।

आज विश्व के शीत-युद्ध के विषम वातावरण में, इस उपन्यास का प्रकाशन काफी सामयिक है।

कड-कट्ट-कडकट्ट

तार-प्रेषक यंत्र की 'कड-कट्ट-कडकट्ट' लगातार जारी थी। खिड़की के पास कोई नहीं था। आफिस में प्रायः सन्नाटा छाया हुआ था। दोपहर का वक्त था।

पोस्ट-मास्टर साहब मेज पर पैर फैलाकर कुर्सी से टिके सो रहे थे। क्लर्क महाशय अपनी मेज़ पर सिर रखकर आराम कर रहे थे। तार बाबू शिधू जोशी तार-प्रेषक यंत्र के नज़दीक उस 'कड-कट्ट-कडकट्ट' के बीच की मेज पर सिर रखकर सोया हुआ दिख रहा था।

पर वह सोया नहीं था। उसके मस्तिष्क में लगातार विचार आ रहे थे। उसके घर की आर्थिक परिस्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं थी। संगमेश्वर जिले के कलंबस्त नामक एक छोटे-से गाँव में उसका एक छोटा-सा घर था। घर में बूढ़ी माँ थी। घर के बुजुर्गों में दूसरा और कोई न था। तार बाबू की हैसियत से उसे २० रू० माहवार वेतन मिलता था। अपना खर्च चलाकर हर महीने के अंत में उसे पाँच-सात रुपये अपनी माँ के खर्च के लिए भी भेजने पड़ते थे। घर की खेती-बारी न हो, यह बात न थी, पर उस खेती से आय कुछ न थी।

कलंबस्त गाँव का वह जमींदार था। जमींदार के हक के बदले उसे साल में निश्चित रूप से कुछ आय बँधी थी। पर उसमें हिस्सेदार भी बहुत थे और उसके ये भाईबंद अलग-अलग रहते थे। इसलिए इस शान के सिवा, कि मैं जमींदार हूँ, खेती से उसे और कोई लाभ न था।

वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। मैट्रिक पास होने के बाद उसने वकालत पढ़ना शुरू किया। परन्तु वकालत की पढ़ाई से पेट न भरता इसलिए उसे डाक विभाग जैसे रद्दी मुहकमे में नौकरी करनी पड़ी। उसी समय

के लगभग संयोग से बहुत से नये तारघर भी खुले, वरना तार का काम सीखने के लिए उसे कितने ही वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ती।

उस अवसर से लाभ मिल जाने के कारण एक ही साल में उसकी तनख्वाह १५ रु० से बढ़कर २० रु० हो गई। उसके अन्य साथियों को, जो बिना मैट्रिक या स्कूल फाईनल पास किये ही नौकरी पा गये थे, शिघ्र से ईर्षा होने लगी। १५ रु० से २० रु० की तरक्की पाने के लिए तार की परीक्षा पास न होने के कारण उन्हें अभी पाँच-छः साल और लगने वाले थे।

हर साथी ने उसका अभिनन्दन किया। परन्तु उस अभिनन्दन में मत्सर की बू थी। वे कहते, तुम्हारा क्या पूछना है, भई! तुम ठहरे मैट्रिक-पास। मैट्रिक पास होने पर तुम अफसोस करते थे कि जाने सरकारी नौकरी मिलती है या नहीं? आजकल स्कूल फायनल पास किये बिना सरकारी नौकरी मिलना बहुधा बड़ा मुश्किल होता है। यही एक मुहकमा है जहाँ मैट्रिक पास को नौकरी मिल जाती है। नौकरी मिलते ही तुम्हारी किस्मत भी जाग उठी। सरकार ने तार घरों की संख्या बढ़ाने का निश्चय किया और मैट्रिक होने से तुम्हें पहला चान्स दिया। बेटा, पूरे पाँच साल निगल डाले तुमने! बस, मजे हैं तुम्हारे।

जब उसके साथी ऐसी बात कहते तो उसे जितना आनन्द होता उतना ही दुख भी होता।

उसकी यह बड़ी महत्वाकाँक्षा थी कि कालेज में जाकर एल० एल० बी० पढ़े। वह स्वदेशी आन्दोलन का जमाना था। नौकरी करना उस वक्त हेय माना जाता था और वकालत को लोग राजनीति में प्रवेश करने का पहला कदम मानते थे। आज वकालत का उतना सम्मान चाहे न हो, पर उस जमाने में वकील होने वाला प्रत्येक व्यक्ति कभी-न-कभी एक राजनीतिज्ञ व्यक्ति होगा, ऐसा सर्व-साधारण जन-समाज का विश्वास था।

राजनीति में प्रवेश करूँ, नाम कमाऊँ, थोड़ी देशसेवा कर सकूँ,

ऐसी शिधू की महत्वाकांक्षा थी। पर जिस दिन उसने नौकरी स्वीकार की उस दिन उसके सामने यह प्रश्न खड़ा हुआ कि नौकरी मिलने से मैं आज अपनी उस महत्वाकांक्षा से तो वंचित नहीं हो गया। और इस लिए उसने अपनी पुस्तकें नहीं फेंकीं।

यहाँ यद्यपि वह सरकारी दफ्तर में, तार बाबू की हैसियत से तार-प्रेषक यंत्र के नजदीक मेज पर सिर रखकर, अंग्रेज़ी साम्राज्य के एक महत्वपूर्ण विभाग की इकाई के नाते बैठा था, फिर भी उसके दिमाग में वकील बनकर देश-सेवा करने के विचार निरंतर उठ रहे थे। अपने लिये उसने इस समय जिस पुस्तक का उपयोग किया था, वह कानून की ही एक किताब थी। वह आँख बंद किये पड़ा था फिर भी उसके चेहरे पर हास्य की हलकी रेखा चमक रही थी।

वह हवाई महल बना रहा था। वकील होने पर सनद कहाँ की निकालूँ? रत्नागिरी के डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में वकालत करूँ या कि सीधे बम्बई हाईकोर्ट से ही आरम्भ करूँ? यह वह तय नहीं कर पा रहा था। उसे लगता; रत्नागिरी में क्या रक्खा है? उसी तरह वह सोचता; बंबई में भी क्या धरा है? मुझे तो सीधे पूना जाना चाहिए। देश-सेवा की आग उस समय पूना में धधक रही थी। लोकमान्य तिलक के कार्य से सारा महाराष्ट्र ही नहीं, अपितु समूचा हिन्दुस्तान चौंधिया गया था। लोकमान्य तिलक को छः वर्ष के कारागार की सजा मिलने से हिन्दुस्तान की राजनीति में कुछ शिथिलता आ गई थी, पर सब को यह विश्वास होने लगा था कि यह शिथिलता शीघ्र जाती रहेगी।

उस भविष्य काल पर शिधू की दृष्टि केन्द्रित हो गई थी।

इस तरह विचार करते-करते वह चौंक पड़ा और झट से जाकर उसने तार-प्रेषक यंत्र की चाबी पर हाथ रखा। इस समय तक उस यंत्र से जो "कटकट" चल रही थी, उससे शिधू का कोई सम्बन्ध नहीं था। जब उसके आफिस के नाम से पुकार आई तो वह चट-से काम के लिए तैयार हो गया। दो-तीन तार आये थे। उन्हें लेकर उसने पैंसिल फेंक

दी और कुर्सी पर पीछे गर्दन डालकर "हुश" करता हुआ पड़ गया।

खिड़की के दरवाजे पर कोई एक व्यक्ति खड़ा था। उसने धीरे से "बाबू साहब" कहकर बड़े अदब से शिधू को पुकारा। शिधू ने उसकी ओर मुड़कर देखा। वह तड़ाक-से उठा और और खिड़की के पास जाकर बोला—"क्या हुआ? क्या घर में आग लग गई है? या कोई सरकारी वारंट आया है? या कोई बीमार मौत की घड़ियां गिन रहा है? क्या हुआ—आखिर हो क्या गया?

शिधू की इस भरमार से बेचारा खिड़की के पास खड़ा वह मनुष्य घबड़ा गया। वह बोला—"मुझे तार करना है।"

"फिर करो न?"—शिधू ने उसे उत्तर दिया—"मैं कहाँ कहता हूँ कि मत करो? इसी काम के लिए तो सरकार मुझे हर महीने बीस रुपये नकद बजाकर देती है। तार ले आये हो लिखकर?"

"मुझे अंग्रेजी नहीं आती बाबू साहब?"—उस व्यक्ति ने उत्तर दिया।

"ऐसा!"—शिधू ने व्यंग-पूर्ण आवाज में कहा—"तुम्हें अंग्रेजी नहीं आती? फिर तुम दुनिया में क्या करोगे? अँग्रेजी के बिना जिन्दा नहीं रह सकते। अगर अँग्रेजी न आती, तो दादा भाई नौरोजी, माननीय गोखले और लोकमान्य तिलक को कोई कुत्ता भी न पूछता। अँग्रेजी न आती तो 'बंग-भंग' का आन्दोलन लड़खड़ाकर गिर पड़ता। अंग्रेजी है इसीलिए स्वदेश है...'

"माफ कीजिए"—वह व्यक्ति बोला—"मुझे विलायत तार भेजना है।"

आश्चर्य-चकित होकर शिधू बोला—"ओहो! अँग्रेजी के नाम तो काला अक्षर भैंस बराबर है, और तार करोगे विलायत? क्या अँग्रेजी न जाननेवालों का भी विलायत से सम्बन्ध होता है? ऐसा कौन है तुम्हारा जो विलायत गया है? कम-से-कम उसे भी अँग्रेजी आती है या नहीं?

"उसे भी नहीं आती।"—वह व्यक्ति बोला।

जोर से माथा पीटकर शिधू कुर्सी पर बैठ गया।—"हे भगवान ! हे संगमेश्वर के करुणेश्वर ! अँग्रेजी न जाननेवाले लोग भी विलायत जाते हैं और इस शिधू को अँग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान होते हुए भी तूने उसे कट्-कड्कट्ट करने को इस तार-आफिस में क्यों बन्द कर रखा है ?"

तार बाबू के उपरोक्त उद्गार सुनकर खिड़की के पास खड़ा हुआ वह व्यक्ति बहुत शरमिंदा हो गया। क्या कहे, यही वह नहीं समझ पा रहा था। मुझे अँग्रेजी नहीं आती और मैं तार करने आया हूँ और अँग्रेजी न जाननेवाले अपने भाई को विलायत तार कर रहा हूँ, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाने के कारण मुझे तार बाबू से इतनी फटकार सुननी पड़ी, इसका उसे बहुत दुख हो रहा था।

क्या करूँ बाबूजी"—वह बोला—"हम दाल्दी लोग हैं। मछलियाँ मारते-मारते हमारी जिंदगी बीत गई और फिर हम हैं मुसलमान।"

"मुसलमान ! तुम मुसलमान हो ?"—शिधू चिल्लाया—'अरे, बड़ी शुद्ध मराठी बोलते हो तुम तो ! कोंकण के मुसलमान अपने को मुसलमान क्यों कहते हैं, इसी पर मुझे ताज्जुब होता है ! अच्छा तो तुम दाल्दी हो ?"

अपने आपसे पुटपुटाता हुआ शिधू बोला—"तुम दाल्दी हो। अच्छा, अब यह बताओ कि तुम्हारा भाई, नहीं तो बाप, नहीं तो ससुर, या दामाद, क्यों जी, तुम्हारे लड़की है क्या ? —कहाँ का तुम्हारा कौन किस जहाज से विलायत के किस शहर गया है ? कैसी बदकिस्मती है, देखो ! यह दाल्दी हुआ इसलिए विलायत जा सकता है और मैं ब्राह्मण हुआ इसलिए यहाँ तार बाबू होकर अटका पड़ा हूँ। यदि मैं मुसलमान होता, या कम-से-कम ब्राह्मण न होता तो यह दाल्दी मुझे भेंट देने के लिए दो-चार मछलियाँ ले आता।

"शायद मछलियाँ आपको नहीं चलतीं साहब ?"—वह व्यक्ति बोला—"मैं ले आया हूं थोड़ी-सी। आपके बड़े साहब को चलती हैं

न ! परसों विलायत से मेरा मनीआर्डर आया था उस समय उन्होंने भी ऐसा ही कुछ कहा था।"

"हाँ, हाँ ! उन्हें चल जाती हैं। अगर लाये हो, तो दे दो उन्हें। अच्छा, तो अब बताओ क्या तार करना है तुम्हें ?'

उस व्यक्ति ने जेब से एक कागज निकाला और शिधू को थमा दिया। पता मर्सलीस का था। शिधू उस पते की ओर लगातार देखता रहा। मार्सलीस का बन्दरगाह उसकी नजरों के सामने मूर्त हो गया था। जहाज भी उसकी कल्पना-सृष्टि में उतर आया था और वहाँ उसे एक मूर्त्ति भी दिखाई देने लगी थी। इस दाल्दी व्यक्ति का वह भाई नीली वर्दी पहिने हाथ में झाड़न रखे डेक साफ करता हुआ उसे दिखने लगा। शिधू को लगा, डेक साफ करके ही क्यों न हो, पर मुझे भी विलायत जाने मिल जाता तो ?.........।

उसने तार लिखा। गाईड निकालकर रेट देखा, क्योंकि उस गाँव से तार विलायत शायद ही कभी जाते थे। उसने पैसे गिन लिये उस व्यक्ति को टिकट देकर उससे उन्हें पीले फार्म पर चिपकाने को कहा और उसे रसीद देते हुए बोला—"यार, तुम बड़े किस्मत वाले हो ! क्या तुम नहीं जाओगे कभी विलायत ?"

"मैं कैसे जा सकता हूँ विलायत ?"—वह बोला—"आज मेरे पाँच भाई अलग-अलग जहाज पर गये हैं। वे वहाँ से पैसे भेजते हैं और मैं इधर रोजगार करके परिवार को संभालता हूँ। इसके सिवा मेरी एक नौका भी है। नौका से मुझे अपने पेट लायक काफी मिल जाता है। इसके सिवा......"

"ठहरो।"—शिधू बोला।

वह पोस्टमास्टर की मेज के पास गया। मास्टर साहब अभी तक सोये हुए थे। उसने मेज पर दो-चार बार हाथ पटका। मास्टर साहब जाग गये। शिधू ने खिड़की की ओर अंगुली दिखाकर हाथ के इशारे से पोस्टमास्टर को मछली के आकार का संकेत किया। "ले

आया है।"—शिधू बोला, "परसों जब इसका मनीग्रार्डर आया था, तब आपने इससे मछलियाँ लाने को कहा था न ?"

पोस्टमास्टर अब कत पूरी तरह जाग गये थे। बोले—"ऐसा ! तो भिकू से कह दो, उसे घर के पिछवाड़े ले जाए। ये दाल्दी लोग जबान के बड़े सच्चे दिखते हैं। उस दिन मैंने तो यूँ ही कह दिया था, पर यह सचमुच ही ले आया ! देख तो रे भिखू ! वह कौन-सी मछली लाया है ?"

भिखू चपरासी दाल्दी की टोकनी की पहिले ही जाँच कर चुका था। दाल्दी के तार की खिड़की के पास जाने से पहिले ही उसने अपने लिए उस टोकनी से एक अच्छी बढ़िया मछली निकालकर अलग रख ली थी।

"राँवगी मछलियाँ हैं हुजूर।" भिकू बोला। पोस्टमास्टर का चेहरा आनन्द से खिल उठा। उन्हें लगा, आज शाम के भोजन में बड़ा मजा आयेगा। इस जाति की ताजी मछलियाँ इस गाँव में हमेशा नहीं मिल सकतीं।

शिधू ने तार दे दिया। दाल्दी खिड़की के पास ही खड़ा था। बोला मेरा तार चला गया क्या ?"

शिधू सोच में पड़ गया। पहिले के अनुभव से, सच्ची बात कहना इष्ट नहीं यह उसके ध्यान में आया। वह बोला—"ठहरो, जाता है।"

उसने तार के फार्म की एक पोंगली बनाई और कड-कट्ट आवाज निकालनेवाले यन्त्र के नीचे धकेल दी। यन्त्र की चाबी पर हाथ रख कर यूँ ही 'कड-कट्ट' किया और धीरे-धीरे वह पोंगली यन्त्र के नीचे पूरी घुसेड़ दी।

खिड़की के पास खड़ा दाल्दी यह सब देख रहा था। बोला—"तार चला गया शायद ?"

"हाँ, चला गया।"—शिधू ने उत्तर दिया।

"आपके लिए क्या लाऊँ बाबूजी ?" मूली का साग पसन्द है। आपको ? भिंडी, तरोई या जो आप कहें ?"—उसने पूछा।

"मेहरबानी करो बाबा। और यहाँ से अब रास्ता नापो।"—शिधू बोला—"मैं अभी तक पोस्टमास्टर नहीं हुआ हूँ। सब्जी के डंठल में भी मुझे "रिश्वत" शब्द दिखाई देता है। मुझे तनख्वाह काफी मिल रही है। पैसे-दो पैसे की सब्जी के लिए मेरे कारण तुम्हारी जेब से पैसे क्यों जाएँ? अगर मैं मछली खाता होता, तो मछली तुम से ले लेता। एक बार खाने की कोशिश करके देखना चाहता हूँ तुम्हारी खातिर, पर अभी तक मुझ से वह बू बरदाश्त नहीं होती।"

"फिर आप विलायत कैसे जायेंगे बाबूजी?"—दाल्दी बोला—"विलायत जाने वाले को मछली खाना चाहिए, अंडे खाना चाहिए, मांस खाना चाहिए, बकरे का, भेड़ का और जम गया तो ढोरों का भी।"

"तुझ से हाथ जोड़ता हूँ, बाबा! अब तू जा।"—शिंधू बोला, "अगर कुछ देर रुक जायेगा, तो मेरे मुँह में पानी भरने लगेगा और मुझे अपने ब्राह्मणत्व को भूलकर, तेरे घर का भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करने की इच्छा होने लगेगी। इसलिए मेरे पिताजी! हाथ जोड़ता हूँ। अब यहाँ से मुँह काला करो!"

दाल्दी हँसते-हँसते बोला—"उत्तर आने पर उसका मराठी अनुवाद करके भेज देना बाबूजी।"

"हाँ-हाँ! सब भाषाओं में करके भेज दूँगा। अगर कोई मुसलमान मिल गया, तो उर्दू में भी कर दूँगा। पर अब आप यहाँ से जल्द खिसकिए।"—ऐसा कहकर शिधू ने अपनी पीठ खिड़की की तरफ मोड़ ली।

दाल्दी चला गया।

तार-प्रेषक यन्त्र की 'कट-कट' लगातार जारी ही थी। नजदीक के स्टेशन काम कर रहे थे। शिधू के मस्तिष्क में लगातार विचार उठ रहे थे। उसने सोचा—कैसा दुर्भाग्य! गँवार और अशिक्षित, किन्तु उतना ही साहसी होने से दाल्दी विलायत जा सका। शिक्षा से हमें

क्या लाभ हुआ ? पहिले तो हिम्मत और साहस का खात्मा हो गया। आक्रमण करने का भय लगने लगा। विदेश-गमन की कल्पना ही दुःसह होने लगी। फिर हम हिन्दू हैं विदेश-गमन के विरोधी। यदि जाने को मिलता, तो कोई रास्ता निकालते—पर जाएँ कैसे। शारीरिक परिश्रम करने की शक्ति चाहिए। वह हममें कहाँ ? खलासी का काम करना चाहें, तो जहाज में कदम रखते ही एक-दो खलासियों के हाथ के सहारे की जरूरत पड़ती है। फिर समुद्र में तूफान उठे, तो वहाँ हमारे पैर ठहरेंगे भी कैसे ?

यदि मैं किसी जहाज़ पर खलासी बनकर जाऊँ तो वहाँ मुझे कौन-सा काम करना पड़ेगा, इसकी कल्पना वह कर रहा था। अंग्रेजी उपन्यासों में खासकर क० मैरियट, डब्ल्यू डब्ल्यू जैकब्स, जोसेफ कानरड, के उपन्यासों में आये वर्णनों को वह याद कर रहा था। उन परिस्थितियों में क्या मेरा निभाव होगा ? उसे विश्वास न होता।

पुनः तार-प्रेषक यन्त्र में उसकी पुकार हुई। एक तार आया।

वह सरकारी बुलेटीन था। युद्ध छिड़ जाने का समाचार आया था। वह जोर से चिल्ला उठा—"अरे बाप रे !"

पोस्टमास्टर ने पूछा—"क्या हुआ शिधू बाबू ?"

पोस्टमास्टर की मेज पर तार का फार्म पटककर शिधू जोर-से चिल्लाकर बोला—"क्या हुआ साहब ! क्या हुआ ! अनर्थ हो गया ! यह देखिए, लड़ाई शुरू हो गई। किसी सर्विया या आस्ट्रिया के राजकुमार को सर्विया या आस्ट्रिया अथवा किसी दूसरे देश के मनुष्य ने गोली मार दी। यह देखकर रूस का जार क्रोध से उन्मत्त हो गया और जर्मनी का केसर अपनी मूँछों के घुमाव को मोम मलने लगा और अब लड़ाई शुरू होगी। अब दो दल बनेंगे। कुछ लोग एक दल में होंगे और कुछ लोग दूसरे दल में शामिल होंगे। दोनों एक-दूसरे के साथ लड़ने लगेंगे। हजारों लोग—नहीं लाखों, बल्कि करोड़ों लोग मरेंगे। उनकी कोई अन्त्येष्टि-क्रिया नहीं करेगा। आगे क्या होगा कौन जाने ?

तार-प्रेषक यन्त्र से आवाज आयी—कड कट्ट कड कट्ट R.T. राईट।"

"सुना साहब ?" शिधू बोला—"यह निर्जीव यन्त्र भी कह रहा है कि मैं जो कह रहा हूँ वह ठीक है।"

पोस्टमास्टर ने एक गहरी सांस ली। "यू आर राईट।"—वे बोले—"कौन कह सकता है कि क्या होगा ?"

———

सूत न कपास जुलाहों से लट्ठम-लट्ठा

शाम को शिधू घूमकर घर आया। वह डाकखाने की इमारत में ही रहता था। उस इमारत की रचना ऐसी थी कि उसके बहुत से भाग में पोस्टमास्टर का क्वार्टर था और थोड़ा भाग, याने बंबई के दो कमरों बराबर जगह तार बाबू के रहने के लिए थी। एक कमरा रनर लोगों के लिए था। बाकी हिस्से में डाकखाना था। क्लर्क बस्ती में ही रहता था।

पोस्टमास्टर और तार बाबू को चौबीस घंटे डाकखाने में हाजिर रहना चाहिए, इसलिए डाकखाने की इमारत में उनके रहने का भी प्रबंध प्रायः सभी डाकखानों में रहा करता था।

शिधू घर आया और नित्य की भाँति उसने टोपी निकालकर एक ओर फेंक दी, कोट उतारकर दूसरी तरफ डाल दिया, छड़ी बीच में ही पटक दी और रसोई में, जहाँ उसकी पत्नी खाना पका रही थी उसके नजदीक चूल्हे के पास जाकर बैठ गया।

उसके पास जाकर बैठते ही रमाबाई जरा दूर सरक गई और बोली, "यह क्या है जी! कम-से-कम पैर धोकर आना था! बिल्कुल बाहर के पैरों से सीधे एकदम चूल्हे के पास आ धमके! अरे, कुछ आचार-विचार का भी ध्यान है या नहीं?"

एक कहकहा लगाकर शिधू बोला, "भई, आचार विचार पर तो तुम्हीं ध्यान दिया करो! हमारे आचार-विचार तो ऐसे ही हैं, अगर इन में तुम्हें कुछ भ्रष्टाचार दिखता हो, तो तुम खुशी से कई पीपे भर कर गोमूत्र और कई टोकरियाँ भरके तुलसी के पत्ते लाकर यहाँ उँडेल सकती हो, मुझे कोई आपत्ति नहीं। पर मैं जैसा हूं, वैसा ही रहूंगा। मुझ में जरा भी फर्क नहीं होगा!"

रमाबाई बोली, "कुछ भी हो, पर ब्राह्मणों ने अपने आचार-विचार ···· "

"····ब्राह्मणों ने ?" शिधू ठहाका मारकर बोला, "अजी सरकारी नौकरी और ब्राह्मण, ये दो शब्द ही परस्पर मेल नहीं खाते। सेवा-वृत्ति शूद्रों का धर्म है। जिस दिन हमने म्लेच्छों की नौकरी स्वीकार की उसी दिन हम शूद्र हो गये और अब तो यह लड़ाई शुरू हो गई।"

"लड़ाई !" रमाबाई चौंककर बोली, "कहाँ शुरू हुई है लड़ाई ?" वह डर गई थी।

"इतना डरो नहीं।" शिधू बोला—"वैसे तो लड़ाई सात समुद्र के पार शुरू हुई है, पर उसके फल हमें भोगने होंगे। हमारे हिन्दुस्तान में आजकल लड़ाई संबंधी तारों का तांता-सा लगा है और अब सरकारी बुलेटिन भी निकलने शुरू हो गये हैं। उनमें अखबारों की तरह ठसाठसं मजमून भरा रहता है। इसके साथ ही अब व्यापारी लोग भी पागल-से हो उठे हैं। चाय की कीमत बढ़ गई, चीनी की बढ़ गई। दियासलाई की डिबिया की कीमत क्यों बढ़ी, सो भगवान् ही जाने ! यह पहेली मैं किसी भी तरह हल नहीं कर पा रहा हूँ। लड़ाई शुरू हुई हैं विलायत में, और चीजों की कीमतें बढ़ रही हैं हमारे इस कोंकण में ! इसके अलावा अब जहाजों में भर-भरकर कोंकण के लोग भी विलायत भेजे जाएँगे। वहाँ कसाईखाने खुलेंगे और यहां के लोगों को वहाँ ले जाकर, वहीं उन्हें कत्ल कर दिया जाएगा। यहाँ की जनसंख्या कम हो जाएगी। सच पूछा जाए तो ऐसी परिस्थिति में यहां की चीजों की कीमतें भी घटनी चाहिए। पर अब क्या होगा, कौन जाने ? अभी तक एक पैसे में चार दियासलाई की डिब्बियाँ मिलती थीं सो अब पैसे की एक मिलती है और कल शायद चार पैसे में एक मिलेगी।"

रमाबाई उदासीन होकर अपने पति की बातें सुन रही थी। यह क्या चमत्कार हो गया है, इसकी वह रंच-मात्र भी कल्पना नहीं कर पा रही थी ! लड़ाई विलायत में ही हो रही है और चीजें यहाँ मँहगी हो

रही हैं ! इन दोनों में परस्पर क्या संबंध है, यह प्रश्न सहज ही उसके सामने खड़ा हो गया। परंतु इसका जबाब पति से पूछे कैसे ? पत्नी-धर्म तो यह है कि पति से कोई प्रश्न न पूछना चाहिए। पति जब स्वयं कहे तो पत्नी को सुनना चाहिए और उसे अपने पति के बारे में यह विश्वास भी था कि कम-से-कम उससे पूछने की जरूरत न थी, क्योंकि जब वह एक बार बोलने लगता है तो धाराप्रवाह बोलता है। दुनियाँ के इतिहास की सारी बातें सुना देता है, यहाँ तक कि फिर सुनाने को उसके पास कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

बीच ही में शिधू बोल उठा, "अजी, यूँ मुंह फाड़कर क्या देख रही हो ? इतना डरने की ज़रूरत नहीं। तुम्हारा पति कोई सिपाही नहीं है। टेलिग्राफ डिपार्टमैन्ट का तारबाबू होता तो शायद मुझे भी लड़ाई पर जाना पड़ता। परन्तु इस रद्दी और दरिद्री डाक विभाग का तारबाबू होने के कारण कम-से-कम मुझे इस बात का जरा भी डर नहीं लगता कि सरकार मुझे जानबूझकर लड़ाई पर भेजेगी। घबड़ाती क्यों हो ? भोजन बन गया हो तो जल्दी थाली लगाओ। मुझे जोर की भूख लगी है।

शिधू ने बदन से कुरता उतारकर वहीं चूल्हे के पास ही फेंका और हाथ-मुंह धोने के लिए वह कुएँ पर चल दिया। रमाबाई सोच में पड़ गई। जब उसके कानों में यह पड़ा कि तार बाबू को भी लड़ाई पर जाना पड़ता है, तब उसका मन भय से काँप उठा। उसे लगा, यह लड़ाई का जमाना ठहरा ! कौन कह सकता है, डाकखाने के तार बाबू को भी लड़ाई पर भेज दें ? फिर इन्होंने जो कहा उसे भी सच कैसे मान लूं। शिधू के बातचीत के ढंग से रमाबाई परिचित थी। मामूली बात भी वह उल्टी-सीधी मोड़े बिना कभी न कहता। इसलिए उसके मन को ऐसी भी एक शंका छू गयी कि उन्होंने डाकखाने के तार बाबू को लड़ाई पर न भेजने की बात शायद इसलिए कही हो कि मैं कहीं घबरा न जाऊँ।

इन विचारों में खोयी रहने से उसकी बघार जल गयी। साड़ी के सहारे उसने चूल्हे से बर्तन उठाकर, वह बघार फेंक दी और दूसरी बघार देने के लिए उसने बर्तन फिर से चूल्हे पर रखा।

शिधू हाथ-मुँह धोकर आया और एक पीढ़ा लेकर बैठ गया।

वह बोला, "पीने के पानी के बर्तन को गीला कपड़ा लगाकर रखा है या नहीं? वरना तुमने सोचा होगा कि ये तो बरसात के दिन हैं। ठंडे पानी की क्या जरूरत? परंतु जहां तक गर्मी का सवाल है कोंकण की हवा के लिए ग्रीष्म और वर्षा दोनों एक समान ही है।"

"हाँ, हाँ, जनाब, गीला कपड़ा लगाकर ही पानी रखा गया है। मुझे यूँ रोज-रोज जताने की जरूरत नहीं, समझे? और क्यों जी, कल जब आप लड़ाई पर जाएँगे तो वहाँ आपके लिए पीने के पानी के बर्तन को कौन गीला कपड़ा लगाएगा?"

"अपने हथकंडे मुझे न दिखाओ, समझी?" शिधू बोला—"मैं 'डाकवाला" भले ही होऊँ, पर अगर मन में लाऊँ तो लड़ाई पर जा सकता हूँ और तुम नहीं जानती कि वहाँ अफसरों की क्या शान होती है। बर्फ की तहों में रख देते हैं एक-एक अफसर को। वहाँ तुम्हारे इस गीले कपड़े को कौन पूछता है?"

यह देखकर कि रमाबाई मन-ही-मन में हँस रही है, शिधू बोला—"हँसी को दबाती क्यों हो? यह पाखंड मुझे पसंद नहीं। हँसने को जी चाहता है, तो हसना चाहिए, रोने को मन होता है तो रोना चाहिए। अगर मामूली क्रोध आ जाए तो गालियाँ देनी चाहिए, अगर जोर-से गुस्सा आ जाए तो मुंह पर चाँटा जड़ देना चाहिए। मनुष्य को बिल्कुल "नेचुरल" होना चाहिए। परंतु स्त्रियों को देखो तो हमेशा पाखंडी और हमेशा झूठी। पतिव्रता जो हो तुम! पति को तुम भगवान् मानती हो। उसके मनोरथ सफल करने के लिए मन मारकर जब तुम बर्ताव करने लगती हो, उस समय आदत से तुम पक्की धार्मिक बन जाती हो। हँसने को जी चाहता है तो दिल खोलकर हँसो।"

रमाबाई बड़े जोर से हँस पड़ी।

"हाँ, अब देखो, कितनी सुंदर हँसी।" शिधू बोला।

रमाबाई ने भोजन परोसना शुरू किया। परोसते हुए उसे पति की बातों का स्मरण होकर हँसी के उबाल आ रहे थे। उन्हें दबाने का वह लगातार प्रयत्न कर रही थी और फिर उसकी बातों की याद आ जाने से जोर से हँस पड़ती थी।

"आज क्या किसी ने तुम्हें "लाफिंग गैस" सुंघा दिया है?"— शिधू बोला, "इतना हँसने को क्या हो गया? क्या मैं मुहर्रम के ताजिए की तरह नाच रहा हूं? या कि विदूषक जैसा नखरे कर रहा हूँ? मैं सच कहता हूं कि लड़ाई पर आफीसरों की बड़ी शान रहती है। मैंने पुरानी लड़ाइयों के वर्णन पढ़े हैं। आफीसरों को मोर्चो पर नहीं जाना पड़ता। सिपाही मरते हैं। आफीसरों का काम होता है सिर्फ हुक्म देना। उन्हें सिर्फ यह कहना पड़ता है, मेरे वीरो! मोर्चे पर जाओ और जान दे दो। अगर काम आ गये तो तुम्हारी आत्मा स्वर्ग जाएगी और यदि जिंदा लौट आए तो तुम्हें एक फीता मिलेगा।"

रमाबाई की हँसी अब बेकाबू हो गई। परोसते समय दाल का बर्तन उसके हाथ से छूटकर शिधू की थाली में जा गिरा।

"वाह! वाह! क्या खूब! इतनी दाल तो मुझे चाहिए थी। जब से बरसात शुरू हुई है, तब से मैं शाम को नहीं नहाता। अब तुमने मेरे नहाने का इन्तजाम कर दिया है। पर तुम्हारा क्या होगा? सारी दाल तुमने मेरी थाली में उँडेल दी। मेरा ख्याल है कि हम लोगों में पति की जूठी थाली में पत्नी के भोजन करने की जो प्रथा है उसका यही उद्देश्य होना चाहिए। सच पूछा जाए तो सब से अच्छा तो यह होगा कि पति और पत्नी को मुसलमानों की तरह एक ही समय एक ही थाली में भोजन करना चाहिए। ऐसा होने से भोजन का बँटवारा बिना किसी चखचख के एक समान हो जाएगा। शिकायत करने के लिए किसी को कहीं भी कोई गुंजाइश न रहेगी।"

शिधू की बकत्रास लगातार जारी थी और उसी के साथ-साथ रमाबाई का हँसना भी जारी था।

वह हँस रही थी, पर बेचैन थी। उसके मन में यह बात पक्की तरह जम गई थी कि शिधू को लड़ाई पर जाना होगा और उसी की वह नित्य की भाँति भूमिका बाँध रहा है। यदि उसे लड़ाई पर जाना पड़ा, तो मेरा क्या होगा ? ससुराल में अकेली एक सास थी। मायके में उसका अपना कोई था ही नहीं। माँ-बाप उसे बचपन में ही अनाथ कर गये थे। उसके एक मामा ने, जिसके परिवार में वह रहती थी, उसका विवाह कर दिया था। मामा उससे स्नेह रखते थे, पर आखिर थे पराये ही। उन्हें लगता, यह एक बड़ा बोझ हमारे परिवार पर आ गया है। जब रमाबाई का विवाह हुआ तब उन्होंने एक प्रकार से छुटकारे की साँस ही ली। घर में जो बोझ आ गया था, उसके निकल जाने पर, उन्हें जो आनन्द हुआ था, उस आनन्द को उन्होंने रमाबाई के सामने भी व्यक्त करने में कमी न की।

अब यदि पति लड़ाई पर चला गया तो मुझे कम-से-कम कुछ दिनों के लिए तो मायके में रहना पड़ेगा, इस विचार से उसके रोंगटे खड़े हो गये।

वह बोली—"कितने दिन चलेगी यह लड़ाई ?"

"हम दोनों के जिंदा रहने तक !"—शिधू बोला—"कौनसी लड़ाई ? क्या वह जो विलायत में शुरू हुई है ? मैं समझा, मेरी और तुम्हारी। इस लड़ाई के बारे में क्या कहा जा सकता है ? अभी तक हमारी सरकार उस लड़ाई में शामिल नहीं हुई है। हमारी सरकार के उस लड़ाई में शामिल होते तक तो कम-से-कम हमें कोई भय नहीं। और अगर हमारी सरकार उस लड़ाई में शामिल भी हो गई, फिर भी हमें डरने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि मैं ठहरा "डाकवाला"। मुझे कौन भेजेगा लड़ाई पर ? मैं लाख चाहूँ तो भी !"

"पर मैं जाने दूँगी तब न ?"—रमाबाई बोली।

शिधू बोला—"अगर लड़ाई पर जाने का हुक्म ही आ गया, तो उसे रोकना न तुम्हारे हाथ में है और न मेरे हाथ में। सरकार का हुक्म आया और चुपचाप कूच कर देना होगा। यहाँ जब तुम मुझे हुक्म देती हो, सब्जी लाने के लिए, तो आखिर चुपचाप मैं सीधा बाजार जाता हूँ कि नहीं ? उसी तरह है यह !"

रमाबाई हँस-हँसकर दोहरी होने लगी।

"हँसती क्या हो ?"—शिधू बोला—"मैं बिलकुल सच कहता हूँ। जिस दिन हमने नौकरी स्वीकार की, उसी दिन से जो हुक्म मिले उसे मानने के लिये हमें तैयार रहना चाहिए, ऐसा नियम है। इसे भी विवाह सरीखा ही समझो। हम सब सरकारी नौकर सरकार के जनानखाने की बीबियाँ हैं। जो काम बताया जाय उसको करनेवाले, जो भोजन दिया जाय उसे खानेवाले और जो हुक्म दिए जाएँ उनके ताबेदार ! आज अगर नौकरी छोड़नी भी चाहें, तो वह एकदम नहीं छोड़ सकते। तीन महीने के लिए नोटिस देना पड़ता है और इतनी अवधि तक हम लड़ाई पर जाकर मर भी सकते हैं !"

"अलाय-बलाय टले !"—रमाबाई ने कहा—"अभी कहीं किसी बात का कोई ठिकाना नही और क्यों व्यर्थ की उस लड़ाई की ·····"

"खैर, तो छोड़ो उस चर्चा को।" कहकर शिधू चुपचाप भोजन करने लगा।

भोजन के उपरान्त शिधू ने उस दिन का समाचार पत्र लिया। लैंप जलाया और बिस्तर पर लेटकर समाचार-पत्र पढ़ने लगा। उस समाचार पत्र में लड़ाई की पूर्व-परिस्थिति का वर्णन आया था। सम्पादक ने लड़ाई होने के चिन्ह स्पष्ट करके दिखा दिये थे। उसने यह भी अनुमान लगाया था कि किन-किन राष्ट्रों में लड़ाई की आग भड़केगी, कौन-कौन से राष्ट्र परस्पर मित्र बनेंगे और कौन-कौन से राष्ट्र शत्रुदल में सम्मलित होंगे। अँग्रेज सरकार की दृष्टि से भी कुछ अनुमान लगाये गये थे। पर सम्पादकजी के ये सारे अनुमान आगे चलकर गलत साबित

हुए। मित्र होनेवाले राष्ट्र एक दूसरे के शत्रु बन गये थे और जो शत्रु होनेवाले थे वे मित्र हो गये थे। कम-से-कम पहिले तो ऐसा लगता था कि जर्मनी लड़ाई आरम्भ करेगा। पर लड़ाई का पहिला कदम रूस के जार ने ही आगे बढ़ाया। जर्मनी को लड़ने के सिवा कोई चारा ही नहीं रहा था। फ्रान्स और इटली किस तरफ मुड़ते हैं इसका किसी को कोई अन्दाज नहीं था। ब्रिटिश पार्लमेंट के लार्ड ग्रे के भाषण ने उस समय बड़ी सनसनी फैला दी थी और उसके कारण इंग्लैड लड़ाई में शामिल होगा या नहीं इसका सभी को सन्देह था। ॲसक्विथ और लाइड जार्ज दोनों के मत भिन्न थे। मंत्रि-मंडल में भी एकमत नहीं था। यहाँ के समाचार पत्र पढ़नेवालों में सर्वत्र यह संदेह प्रकट किया जाता था कि इंग्लैंड इस लड़ाई में कहीं तटस्थ तो न रहेगा ?

शिध्रू सो गया, पर उसे लड़ाई के सपने दिख रहे थे। सच पूछा जाय तो वह लड़ाई पर जाने से डरता न था। प्रत्युत उसके मन में लड़ाई पर जाने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। वह सोच रहा था, यदि इंग्लैंड इस लड़ाई में सम्मलित हुआ, हिन्दुस्तान से लड़ाई का सम्बन्ध आया और हिन्दुस्तान से भी लड़ाई पर मनुष्य भेजे गये, तो उस अवसर को मुझे हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। इस विचार में खोया हुआ ही वह सो गया।

दूसरे दिन वह जागा तो उसे लगा, जैसे मैं लड़ाई से लौटकर आया हूँ। अनाप-सनाप सपने के कारण उसके मन पर जो परिणाम हुआ उसे देखकर, वह अपने आप पर ही हँस पड़ा।

पर वह विचारों में डूब गया। अगर लड़ाई शुरू हो गई तो मैं उस पर जाऊँ या नहीं ? जो नौकरी इस समय वह कर रहा था, उसमें आगे चलकर उसे क्या आशा थी ? कानून की पुस्तकें हाथ में रखे वह दिन काट रहा था सही, पर डाकखाने की नौकरी के भार के कारण कानून का अध्ययन संतोषजनक रीति से करना उसके लिए असंभव हो गया था।

उसकी महत्वाकांक्षा यह थी कि मैं दूसरों की अपेक्षा कुछ विशेष करके दिखाऊँ और लड़ाई का डंका पिटते ही अपनी इस महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए उस में नया बल आ गया था।

सिराहने रखी कानून की किताबों को उसने एक-के-बाद-एक खोल कर देखा और उन्हें एक तरफ फेंक दिया।

आखिर वकील बन कर भी मैं ऐसा कौनसा बड़ा झंडा गाड़ दूँगा। इससे तो अगर लड़ाई पर ही चला जाऊँ तो? उसे लगा, लड़ाई पर जाने से कोई विशेष बात होगी। अनपेक्षित परिस्थिति की अपेक्षा कोई भिन्न ही परिस्थिति मैं प्राप्त कर सकूंगा अथवा कम-से-कम समरभूमि पर काम आ जाऊँगा। हिन्दुस्तान के कुछ लोग लड़ाई के मैदान पर जाकर मरे, कम-से-कम इतना ही नया इतिहास तैयार किया जा सकेगा। क्या प्लेग से नहीं हजारों लोग मर गये? तपेदिक से कितने मरे हैं? बिस्तर पर पड़े-पड़े मरने की अपेक्षा समरभूमि पर किसी बंदूक की गोली अथवा तोप के गोले से यदि प्राण चले जाएँ·····?

उसे यह कल्पना बड़ी अभिनव प्रतीत हुई।

पुराना इतिहास पढ़ते समय उसे अपने पूर्वजों की वीरता का जो भान होता था, उसकी अपेक्षा आज शुरू होनेवाली लड़ाई के उसके भान में एक प्रकार की विलक्षणता थी। युद्ध की वे कथायें रम्य थीं और आज यह चालू परिस्थिति थी। कौन कह सकता है कि लड़ाई की यह आँधी हिन्दुस्तान तक आकर न पहुँचेगी। हवाई-जहाज की कल्पना उन दिनों अस्तित्व में आ चुकी थी। कौन कह सकता है कि हमारे शत्रु हवाई-जहाज में आकर हम पर अग्नि-वर्षा नहीं करेंगे? ऐसी परिस्थिति उपस्थित होने से पहिले ही मैं अगर विलायत की समर-भूमि में चला जाऊँ तो····?

कल्पना की इस नवीनता के कारण उसका हृदय भर आया। युद्ध की विकरालता के चित्र वह अपनी दृष्टि के सन्मुख मूर्त करने लगा।

रमाबाई घर में झाड़-बुहार कर रही थी। शिवू उसके सामने

जाकर खड़ा हो गया और बोला—"और अगर मुझे लड़ाई पर जाना पड़ा तो क्या तुम इजाजत दे दोगी ?"

यह सुनकर रमाबाई जैसे ऐंठ-सी गई। वह लगातार शिधू की आँखों में आँखें डाले, पलक भी न झपकाते, स्तब्ध खड़ी रही। उसके ओठों से शब्द निकल गये—"लड़ाई पर जाना पड़ेगा ?"

शिधू को विश्वास हो गया।

नित्य की आदत छोड़कर वह उतनी ही गंभीरता से बोला—"जाना ही पड़ेगा, ऐसी कोई बात नहीं। पर कौन कह सकता है ? यह नौकरी है। लड़ाई शुरू होने पर वहाँ अवश्य ही तारबाबुओं की माँग होगी। आज सरकार के टेलिग्राफ-विभाग में जो तारबाबू काम कर रहे हैं, वे प्रायः सभी मिलटरीवाले हैं। वे यदि युद्ध के मोर्चों पर चले गये, तो सरकार को डाक-विभागवाले हम जैसे तारबाबुओं को सिगनलर का काम करने के लिए लड़ाई पर मजबूरन भेजना ही पड़ेगा और ऐसा अगर हुआ ··· ।" इतना कहकर शिधू चुप हो गया।

"तो मतलब यह कि यहाँ से जाना होगा !"—रमाबाई पुटपुटायी, "फिर मैं यहाँ क्या करूँगी ?"

एक क्षण के भीतर उसकी गंभीरता विलुप्त हो गयी और वह जोर-जोर से हँसने लगा।

"कैसे पागल हैं हम लोग !"—शिधू बोला—"अभी किसी बात का कोई ठिकाना ही नहीं और लड़ाई पर जाने की बातें कर रहे हैं ! चलो। चाय तैयार हो गई हो तो जाकर ले आओ जल्दी। क्या मेरी यह प्रतिज्ञा, कि बिना चाय पिये दातुन नहीं करूँगा, मुझसे आज भंग करवाओगी ?"

रमाबाई चाय का प्याला ले आयी। प्याला लेते समय शिधू ने उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में आँसू आ गये थे।

"अरे धुत् पगली !"—वह उसके गाल पर हौले से एक चपत मारकर बोला—"सूत न कपास जुलाहों से लट्ठमलट्ठा !" इस वाक्य को कहते समय उसने अपने चेहरे पर ऐसा विलक्षण आविर्भाव प्रकट किया कि उसे देखते ही रमाबाई से अपनी हँसी न रोकी गयी और वह जोर-जोर से हँसने लगी।

———

अर्जी गयी

रोज बुलेटिन आ रहे थे। लड़ाई की तेजी का ढिंढोरा जहाँ-तहाँ पिट रहा था।

पर इंग्लैंड अभी तक युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ था। अपने-अपने ढंग से हर व्यक्ति तर्क भिड़ा रहा था। पर युद्ध में शामिल हुए बिना इंग्लैंड को कोई चारा न था, यह बात भी बिल्कुल स्पष्ट थी।

अगस्त की चार तारीख उदित हुई। उस दिन जो बुलेटिन्स आ रहे थे उनसे अनुमान लगाकर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता था कि इंग्लैंड लड़ाई में शामिल होगा। मंत्रि-मण्डल का विरोध साफ दिख रहा था, पर परिस्थिति जरूर विकट थी।

शाम को छ: बजे तार आफिस बन्द करके सब लोग घूमने निकले। साथ में पोस्टमास्टर भी थे। सब लोगों की चर्चा का विषय एक ही था। लडाई की बातें छोड़कर उस समय और कोई दूसरी बात किसी को सूझती ही न थी। पोस्टमास्टर बोले—"मुझे बड़ी चिन्ता लगी है। अभी तक हम युद्ध में शामिल नहीं हुए हैं और कब शामिल होंगे यह भी कहा नहीं जा सकता। यदि हम भी युद्ध में शामिल हो गये तो पहिली विपत्ति डाक-विभाग पर टूटेगी। टेलीग्राफ-विभाग में काम करनेवाले कर्मचारी प्राय: सभी मिलिटरी वाले हैं। वे तो लड़ाई पर जाएँगे ही। उनके स्थान में तार का काम करनेवालों की कमी पड़ेगी और फिर धीरे-धीरे डाक-विभाग में काम करने वाले तार बाबू उनके स्थान पर भेज दिये जाएँगे। डाक-विभाग में नयी भरती होगी, इसकी आशा नहीं करनी चाहिए। कम-से-कम टेलिग्राफ विभाग में तो नयी भरती नहीं होगी, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है क्योंकि ऐन वक्त

पर तार का काम सीखे हुए लोग उन्हें कहाँ मिल सकते हैं। और नयी क्लास खोलकर नये आदमी तैयार होते तक कम-से-कम कुछ महीनों के लिए तो काम का बोझ डाक-विभाग में काम करनेवाले हमीं लोगों पर पड़ेगा, इसी की अधिक संभावभा है।"

"और क्या, लड़ाई पर कोई तार बाबू नहीं जाएँगे ?"—शिधू ने पूछा।

"यह कैसे कह सकते है ?"—पोस्ट-मास्टर ने कहा, "हम जबसे नौकर हैं तब से कोई लड़ाई हुई ही नहीं। इसलिए हमें ऐसा कोई मौका देखने को नहीं मिला। पहिले एक बार बोर-वार हुई थी। पर उस समय मैं सरकारी नौकर नहीं था। उस वक्त के लोगों से मैंने जो सुना है उससे हम यह कह सकते हैं कि इस लड़ाई की आँच हमें नहीं लगेगी। मैं नहीं सोचता कि डाक-विभाग के कर्मचारियों को जबरदस्ती लड़ाई पर भेजेंगे। हाँ, पर तार-विभाग के कर्मचारियों को अवश्य लड़ाई पर जाना होगा।"

"यदि कोई अपने-आप लड़ाई पर जाने के लिए तैयार हो, तो उसे भेजेंगे या नहीं ?"—शिधू ने पूछा।

"यह क्या पागलपन घुस गया है तुम्हारे दिमाग में ?"—पोस्ट-मास्टर साहब बोले, "क्या तुम जाना चाहते हो लड़ाई पर ?"

"मैं ? मैं क्यों जाने लगा लड़ाई पर"—शिधू बोला, "हमारी यहीं जो लड़ाई चल रही है वही काफी है। हाथ और मुँह की लड़ाई लड़ते-लड़ते हमारा कचूमर निकला जा रहा है। ऐसी दशा में घर के लोगों को अकेला छोड़कर लड़ाई पर कौन जाएगा ?"

शिधू जोर से हँस पड़ा। पोस्ट मास्टर साहब ने भी एक ठहाका मारा, पर उनकी हँसी का कोई मतलब न था। अगर कोई उनसे पूछता कि आप क्यों हँसे तो दोनों के पास इसका जवाब न था।

आठ से पहिले दोनों आफिस में आए। आठ बजे तार आफिस खोल कर जो तार बाहर से आते वे दस बजे तक लिये जाते थे। इसके बाद

लोगों के भेजे जानेवाले तार लिये जाते। पहिला ही तार आया—

वह छोटा-सा ही था। परन्तु उसके आते ही शिधू ने कुर्सी की पीठ से गर्दन टिका दी।

उसने फिर एक बार तार पढ़कर देखा और जोर से पोस्टमास्टर साहब को पुकारा।

पोस्टमास्टर साहब दौड़ते हुए ही आए। तब शिधू बोला—"लीजिए साहब! हो गया फैसला! इंग्लैंड लड़ाई में शामिल हो गया!"

"तो इसमें घबराने की क्या बात है?"—पोस्टमास्टर बोले—"पर आसार जरूर अच्छे नहीं। कुछ भी हो, आखिर यह लड़ाई है। बरस-छः महीने बराबर चलती रहेगी और इस अवधि में सरकार जान ले लेगी हम डाकखानेवालों की। हमारे सिर पर ढेर-सा काम आएगा और हमारी मदद के लिए नये आदमी देने के बजाए जो आदमी हमारे पास अभी हैं उनमें से भी बहुतों को ले जाएँगे।"

पोस्टमास्टर की बात सुनकर शिधू हँसने लगा। बोला—"आप तो कुछ भी सोच रहे हैं, साहब! अजी लड़ाई तो लड़ी जा रही है यूरोप में। हिन्दुस्तान से उसका क्या संबंध?"

"तुम भूलते हो शिधू बाबू!" पोस्टमास्टर ने कहा—"सारी लड़ाई लड़ी जायगी हिन्दुस्तान की जान पर। इंग्लैंड कितना भी बलशाली हो, पर लड़ने के लिए उसे आदमियों की जरूरत होगी और इसकी माँग हिन्दुस्तान से ही पूरी की जाएगी। यहाँ से लड़ाई पर तहसीलदार नहीं जाएँगे, सब-जज नहीं जाएँगे अथवा कचहरियों के बाबू लोग नहीं जाएँगे। आफत आएगी डाक-विभाग पर और मैडिकल विभाग पर। दोनों विभागों के कर्ममचारियों को अब बोरिया-बिस्तर बाँधकर तैयार रहे बिना दूसरा चारा नहीं।"

शिधू अपने घर आया। भोजन बनाकर रमा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। कुछ न बोलकर शिधू सिर्फ खड़ा रहा। यह देखकर वह बोली—"क्या आज मुँह-हाथ नहीं धोओगे?"

"अजी कहाँ का मुँह-हाथ धोना और कहाँ की संध्या-पूजा लिये बैठी हो ?"—शिधू बोला, "अब हमारी सरकार भी लड़ाई में शामिल हो गयी है। अब मुझे जाना पड़ेगा जर्मनों से लड़ने"—"रमा हँस पड़ी तो शिधू बोला—"दाँत क्यों निकालती हो ? क्या तुम्हें झूठ लगता है ? अभी जाओ और जाकर पोस्टमास्टर साहब से पूछ आओ। वे क्या कहते हैं जानती हो ? हिन्दुस्तान से पलटनें जब जाएँगी तब जाती रहेंगी, पर पहिले लड़ाई पर तार बाबू भेजे जाएँगे !"

"सच ?"—रमा के स्वर में घबराहट थी।

"तो क्या मैं झूठ कह रहा हूँ ?" शिधू बोला, "तुम जानती हो मेरा यह स्वभाव नहीं कि किसी गंभीर बात पर मज़ाक करूँ। मज़ाक के वक्त ही मज़ाक करता हूँ। जहाँ इतनी बड़ी लड़ाई हो रही है क्या वहाँ कोई मज़ाक करेगा ?"

इस तरह कहता हुआ शिधू पिछवाड़े कूएँ पर चला गया। रमा आश्चर्य से भरी वहीं खड़ी थी। शिधू कब आकर पीढ़े पर बैठ गया, इसका उसे पता तक न चला।

"अब परोसो न ?"—शिधू जोर से चिल्ला पड़ा।

रमा एकदम चौंककर होश में आई और परोसने लगी।

खाना खाते वक्त दोनों मौन थे। शिधू के दिमाग में लगातार विचार आ रहे थे। विदेश जाने की उसे बड़ी रुचि थी। सरकारी खर्च से विदेश जाने को मिलेगा, इस विचार से उसे एक प्रकार का आनन्द हो रहा था।

यदि मुझे सरकार द्वारा लड़ाई पर नहीं भेजा गया तो मैं लड़ाई पर जाने के लिए अर्जी दूँगा, ऐसा उसने अपने मन में निश्चय कर लिया। तार बाबुओं की वहाँ जरूरत होगी, इसमें कोई शक ही न था। पर उसे इस बात का अलबत्ता शक था कि वह तार बाबू की हैसियत से ही लड़ाई पर भेजा जाएगा या नहीं। उसकी धारणा थी कि लड़ाई में हिन्दुस्तानियों को तार के काम पर नियत नहीं करेंगे। वरना पलटन के

लोगों को तार का काम सिखाने की क्या जरूरत ? अगर गये तो सिर्फ ईसाई और एंग्लो-इंडियन या यूरोपियन तार बाबू ही लड़ाई पर भेजे जाएँगे। तार बाबू के नाते मैं नहीं भेजा जाऊँगा, यही उसे लग रहा था।

यह देखकर कि भोजन करते समय हमेशा बकवास करने वाला पति बिल्कुल चुपचाप भोजन कर रहा है, रमा को एक धक्का लगा। वह बोली "क्या लड़ाई पर सचमुच जाना पड़ेगा ? यदि ऐसा कोई मौका हो तो आज ही इस्तीफा दे दीजिए। यही ठीक होगा।"

"इस्तीफा देना क्या हंसी-खेल है ?" शिधू बोला, "इस्तीफा तो मैं आज दे दूं। परन्तु उसे मंजूर करना या न करना सरकार की मर्जी पर है। लड़ाई के वक्त अगर सभी लोग इस्तीफा देने लगें तो सरकार हर-एक को तोप से उड़ा देगी। पहिले तो सरकारी नौकरी करके ही हमने गलती कर दी है। अब जो भी होगा उसे हमें चुपचाप बरदाश्त करना होगा।"

इस पर बेचारी रमा क्या जबाव देती ? उसका कलेजा टूट गया था। मायके में उसका अपना कोई नहीं था। ससुराल में अकेली सास थी। वह भी भाई-भाइयों के झगड़े में फंसी हुई थी। शिधू को यदि लड़ाई पर जाना पड़ा तो सुसराल में जाकर रहने के सिवा उसे कोई चारा न था। उसे लगा, मेरी सास शिधू को लड़ाई पर नहीं जाने देगी। कम-से-कम सास के आग्रह से ही पति यदि नौकरी से इस्तीफा दे दे तो यह विपत्ति टल जाएगी।

इसे छोड़कर उसे और कोई दूसरा उपाय नहीं सूझ रहा था।

शिधू जाकर बिस्तर पर लेटा और नित्य की भाँति समाचार-पत्र पढ़ने लगा। उसके दिमाग में विचारों ने कुहराम मचा दिया था। उसे लग रहा था कि मुझे यह ढिठाई करनी ही चाहिए। अनेक वर्षों तक हिन्दुस्तान को इसकी कोई कल्पना ही न थी कि लड़ाई क्या होती है।

सिर्फ लड़ाई की कहानियां पढ़ी जाती थीं। महाराष्ट्र में जो ऐतिहासिक पुरुष हो गये हैं उनके पवांडे गाये जाते थे। भिन्न-भिन्न प्रकार के आन्दोलन हो चुके थे। उस जमाने में हमारे नेता लोग गला फाड़-फाड़ कर लड़ाइयों का वर्णन करते और उन्हें सुनकर तालियाँ बजाते-बजाते श्रोताओं के हाथ लाल हो जाते।

अब खून से हाथ लाल करने की बारी आ गई थी। वह प्रसंग जितना अनुभूत था उतना ही अनपेक्षित भी था। जो राष्ट्र कितनी ही सदियों तक एक दूसरे के बैरी थे वे राष्ट्र एक हो गये थे। रूस और इंगलैंड एक हो जाएँगे यह बात उस लड़ाई से पहिले किसी को सच ही न लगती। फ्रांस और इंगलैंड की मित्रता पर भी उतना ही आश्चर्य होता था। तुर्किस्तान भी इँगलैंड, फ्रांस और रूस के विरुद्ध उठ खड़ा हो गया, यह भी एक महान आश्चर्य था।

इतने चमत्कार हो जाने पर हिन्दुस्तान में भी लड़ाई न हो, यह कौन कैसे समझता?

कुछ वर्ष पहले सुने हुए बड़े-बड़े नेताओं के भाषणों की उसे याद हो आयी। देश के लिए हथेली पर सिर लिये रणभूमि पर जाने वाले इतिहास-कालीन योद्धाओं के चरित्र सुनकर उस समय उसकी रंग-रग का खून खोल उठता था। हर प्रकार का स्वार्थ त्याग करने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए, तत्कालीन नेताओं के ये उद्‌गार उसके कानों में गूंज रहे थे।

उसके सामने प्रश्न था तो केवल यही कि यदि वह लड़ाई पर गया, वहाँ उसने अनेक कष्ट झेले, वहां वह काम आ गया तो क्या यह उसकी मातृ-भूमि भारत के उद्धार के लिए होगा? इस प्रश्न का उत्तर उसके मन में अंकुरित न होता। लड़ाई की आग यदि भड़कती गई तो उसकी आँच हिन्दुस्तान को भी लगे बिना न रहेगी, ऐसा उसे लग रहा था। यूरोप में ही यदि यह आग बुझ गई तो क्या हिन्दुस्तान नहीं बच जाएगा? उस लड़ाई की आग को यूरोप में ही बुझा देने के लिए जो

जो हिन्दुस्तानी वहाँ काम आएँगे तो क्या यह नहीं कहा जा सकेगा कि वे हिन्दुस्तान की रक्षा के लिए काम आये ? लड़ाई में काम आना, जाने क्या है इसे हिन्दुस्तान आज कई वर्षों से भूल गया है। पिछले कुछ वर्षों में प्लेग से क्या कुछ कम आदमी मरे थे ? प्लेग से मरने की अपेक्षा लड़ाई में मरना क्या अधिक श्रेयस्कर नहीं है ?

उसका मन दुविधा में पड़ा था। देशाभिमान से इस युद्ध का मेल मिलाया जा सकता है क्या, इसका वह विचार कर रहा था। वह सोचता था, यदि सरकार का हुक्म आता तो चाहे जिस समय और चाहे जहाँ लड़ाई पर जाने के लिए वह मजबूर था। उस समय वह यह विचार कैसे कर सकता था कि लड़ाई पर जाना देशाभिमान है या नहीं। उसे लगा लड़ाई पर जाकर भी मैं ऐसा कौन सा बड़ा मैदान मारूंगा ? सिर्फ "कड्कट्-कड्कट्ट" करता बैठा रहूँगा अथवा पत्र और पार्सल की थैलियाँ खोलता रहूँगा। क्या ये काम लड़ाई की मर्दानगी में शामिल हो सकते हैं ? प्रत्यक्ष लड़ाई में भाग लिये बिना, कन्धे पर बन्दूक रखकर फायर पर फायर उड़ाये बिना लड़ाई के किसी भी विभाग में किया गया काम मर्दानगी में गिना जायेगा क्या ?

उसका मन नहीं कहता। लड़ाई की घमासान में कन्धे पर बन्दूक धारण कर प्रवेश करने की महत्वाकाँक्षा रखने के लिए समय अनुकूल न न था। लड़ाई के मोरचे के नजदीक रहने का भाग्य तो किसी पोस्ट-मास्टर को भी मिल जाता। क्या महत्वाकांक्षा इसी से तृप्त होती है अथवा लड़ाई के बेस आफिस में बैठकर थैलियाँ खोलने में होती है ?

उसका मन निश्चय न कर पाता। उसने सोचा, चाहे जो हो, लड़ाई पर तो मैं जाऊँगा ही। कम-से-कम यह देखने को तो मिलेगा कि लड़ाई क्या होती है। मर्दानगी के बारे में हमारा ज्ञान जो अभी इतिहास पढ़ने तक ही सीमित है कम-से-कम उसे कुछ प्रत्यक्ष स्वरूप तो प्राप्त हो जाएगा।

बार-बार एक ही प्रश्न उसके मन में झांक जाता, यह सच है कि मुझे लड़ाई पर जाना चाहिए। पर किसलिए मैं अपनी जान खतरे में डालूँ ? देश के लिए ? पैसे के लिए ? कीर्ति के लिए ? उसने सोचा किसी के लिए भी क्यों न हो ? बिस्तर पर पड़े-पड़े मरने की अपेक्षा किसी तोप के गोले से रणभूमि पर अथवा रणभूमि के बेस पोस्ट आफिस में यदि मौत आवे तो बुरा क्या है ? इस प्रकार मरने से मेरे गाँव के लोग कम-से-कम यह तो कहेंगे कि हमारे गाँव का शिधू लड़ाई में मरा। कोंकण के एक गाँव में पैदा हुआ एक क्लर्क जो आगे चलकर वकील या कोई आफिसर भी हो सकता था, देशभक्त हो कर अकड़ से घूम सकता था, कौंसिल में जा सकता था, देश भाईयों के लिए कौंसिल में लड़ सकता था (काहे का लड़ना, सिर्फ शब्दों की लड़ाई)—वह कोंकण का एक भद्र पुरुष लड़ाई में मरा। इस तरह गाँव के लोग कम-से-कम कहते तो रहेंगे। यह क्या थोड़ा हुआ ?

भगवान का नाम लेकर उसने निश्चय किया। जो होना हो सो हो, मैं लड़ाई पर जाऊंगा। सरकार की ओर से आर्डर नहीं आया तो मैं स्वयं अर्जी दूँगा।

विचारों की शृंखला इतनी सनसनाने लगी कि अखबार को बिस्तर पर पटककर वह जोर से चिल्ला पड़ा—बस तय हो गया ! लड़ाई पर जाऊँगा।

रमा बिस्तर के नजदीक खड़ी थी। वह गम्भीर स्वर में बोली—"और फिर मैं क्या करूँगी ?"

शिधू ने सोचा इस समय गम्भीर होकर काम नहीं बनेगा। वह बोला—"तुम भी चलो न हमारे साथ लडाई पर। सिपाहियों के लिए खाना पकाने को कोई रसोईदारिन रखनी ही पड़ेगी। उस पद पर तुम्हें नियुक्त करा दूँगा। बस ! काम बन जाएगा !"

आँसुओं से डिबडिबाई आँखें पोंछकर रमा अत्यन्त दयनीय मुद्रा से बोली—"लड़ाई पर जाऊँगा, यह कहना आपको बड़ा आसान मालूम

होता है। पर इधर मेरा कलेजा जो टूट रहा है इसका भी कुछ ख्याल है आप को !"

"अजीब पगली हो।" शिधू बोला—"तुम व्यर्थ डर रही हो। अजी, लड़ाई पर जाने वाले सभी मनुष्य यदि मरते तो राज्य चलाने के लिए पीछे कोई बचता ही नहीं।"

"यह सच है।" रमा बोली—"पर राज्य चलाने वाले लोग लड़ाई पर जाते ही कहाँ हैं ? वे तो सिर्फ हुक्म ही दिया करते हैं। लड़ाई में मरते हैं सिपाही और सेना के साथ में रहने वाले दूसरे निकम्मे लोग।

"वाह वाह !" शिधू बोला—"अच्छा तुम इतना समझने लगी हो। हमें तुमने निकम्मों में शामिल कर दिया। हाँ, यह कोई झूठ नहीं। मर्दानगी दिखाने के लिए सिपाहियों का बाना होना चाहिए। वह मेरे भाग्य में नहीं। पर इससे तुम्हें खुशी होनी चाहिए। हम निकम्मे लोग हैं इसीलिए सुरक्षित रहेंगे। फिर इसमें भय की क्या बात है ? निकम्मों की कल्पना अच्छी बताई तुमने। यह अभी तक मेरे दिमाग में ही नहीं आई थी। हम निकम्मे हैं, यह यदि मेरे ध्यान में पहिले आ जाता तो अलबत्ता मुझे इतना अजीब न लगता।"

रमा ने कहा—"क्या सचमुच आपको लड़ाई पर जाना होगा ?"

"बार-बार यही क्यों पूछ रही हो ?" शिधू तनिक चिढ़कर बोला—"यह जानते हुए भी कि निकम्मे लोग लड़ाई पर अधिक सुरक्षित रहते हैं, यदि मैं वहाँ चला गया तो नुकसान क्या हुआ ? और लड़ाई पर जाना ही पड़ेगा यह भी अभी निश्चित कहाँ है ? अभी तो सब अपने-अपने अंदाज लगा रहे हैं। तुम अभी से मनौती मनाना शुरू कर दो। तुम्हारी गौरी देवी या जो भी हों, उन्हें मन्नत बोलकर रखो। पेशगी घूस पाने की आशा होने पर बड़े-बड़े अफसरों की तो आँखें फट जाती हैं। उसी तरह तुम्हारे ये देवी-देवता ब्रिटिश सरकार के हुक्म

में दस्तंदाजी करने लगें तो तुम्हारा यह पति कभी लड़ाई पर नहीं आयेगा।"

शिधू ने एक जोर का कहकहा लगाया। वह हास्य बनावटी था। पर उस हास्य के कारण रमा का समाधान हो गया।

मँहगाई रोज बढ़ती जाती थी। परन्तु अखबारों पर लोग टूट पड़ते थे। जिनके घर खाने के लाले पड़े थे ऐसे लोग भी पेट को एक अधिक चिकोटी काटकर लड़ाई की खबरें पढ़ने के लिए अखबार खरीदते थे। हर मनुष्य की जबान पर लड़ाई को छोड़कर दूसरी बात न थी। अखबार की खबरों को नमक-मिर्च मिला कर कहने में होड़ लगा करती। काल्पनिक खबरें आजादी से उड़ाने में सब दर्जे के लोग भाग ले रहे थे।

सरकार के द्वारा जो बुलेटिन्स तार से आते थे वे पढ़ने को मिलने के कारण शिधू को अखबार पर निर्भर रहने की आवश्यकता न थी। लेकिन थोड़े ही दिनों के बाद ये बुलेटिन्स बन्द हो गये और शिधू को भी अखबार के लिए रोज पैसे खर्च करने पड़े।

रंगरूटों की भरती शुरू हो गई थी। गाँव-गाँव रिक्रूटिंग आफिसर घूमने लगे थे। कोंकण की दरिद्र जनता घर में भूखों मरने की अपेक्षा लड़ाई में मरकर स्वर्ग प्राप्त करना अच्छा, इस कल्पना से प्रेरित होकर स्वेच्छा से पलटन में भरती हो रही थी। बहुतों पर सख्ती भी की जाती थी। कभी-कभी रिक्रूटिंग आफीसर्र और गाँववालों में थोड़ी-बहुत लड़ाई भी हो जाती थी।

क़ानून की किताबों पर शिधू का ध्यान न जमता। आफिस का काम सुचारू रूप से किये बिना चारा न था। इसीलिए वह काम उससे हो रहा था। लड़ाई पर जाने की लालच ने उसके मन पर इतना असर किया था कि आफिस में बैठे हुए भी उसकी नजरों के सामने लड़ाई की घमासान के दिव्य स्वप्न दिखते थे।

जिस अवसर की वह बड़ी उत्कंठा से बाट जोह रहा था वह अवसर आखिर आ गया। स्वेच्छा से लड़ाई पर जाने के लिए जो तैयार हों उनसे अर्जियाँ लेकर जल्द भेजी जाएँ, इस तरह का बड़े दफ्तर से आया हुआ हुक्म शिघू ने जिस दिन पढ़ा उसी दिन झट-से अपनी अर्जी देकर वह शान्त चित्त से सोया।

————

क्विक मार्च

कलंबस्त एक छोटा-सा गाँव है। उस गाँव में भी चर्चा का सर्वत्र एक ही विषय था—लड़ाई! सच पूछा जाय तो लड़ाई की आँच शहरों की अपेक्षा गाँवों के लोगों को ही अधिक लग रही थी। शहर में रहने वाले सफेदपोश लोग लड़ाई की खबरें पढ़-पढ़कर सिर्फ बेचैन ही होते रहते। इससे आगे और कोई प्रभाव उन पर न पड़ता। पर गाँव के लोग, विशेषत: कोंकण के गाँवों के लोग, प्रत्यक्ष समर-भूमि पर पहुँचे थे। वे रोज जा रहे थे। इसलिए शहर के लोगों की अपेक्षा लड़ाई के समाचार जानने की उत्सुकता गाँववालों को ही अधिक महसूस होती।

यशोदा का लड़का अर्जुन पलटन में था। वह लड़ाई पर गया था। जिस गाँव में वह लड़ रहा था, उस गाँव के नाम का भी यशोदा ठीक से उच्चारण नहीं कर सकती थी। अर्जुन के दो बड़े भाई खेत में काम करते हुए, हाथ में खुरपी और हल पकड़े, पुराने जमाने की बन्दूकों और तोपों का वर्तमान बन्दूकों और तोपों से मिलान करते।

कोई ठीक से कुछ भी न जानता था। समाचार पत्रों में लड़ाई की जो खबरें आतीं, पटेल और पटवारी के घर उनके बारे में जो चर्चा होती, उन्हीं बातों को ये दुहराते रहते। लड़ाई से लौटने के बाद अर्जुन सूबेदार होगा या उससे भी कोई बड़ा ओहदा उसे मिलेगा, इस विषय में दोनों भाई बातें कर रहे थे। शिघू जोशी की माँ गोपिका बाई शान्त चित्त से उन दोनों भाइयों की बातें सुनकर मन-ही-मन हँस रही थी। वह खेत को मेड़ पर बैठी थी।

गोपिका पढ़ी-लिखी थी। साप्ताहिक "केसरी" वह बड़ी आस्था से पढ़ा करती। अपनी पड़ोसिनों को भी पढ़कर सुनाती। अखबार में

आनेवाली लड़ाई की खबरों से अर्जुन के भाइयों के मुँह की सुनी खबरों का कोई मेल न देख उसे मजा आता।

बेचारी यशोदा अलबत्ता इन चर्चाओं में कोई भाग न लेती। लड़का लड़ाई पर गया है, उसे वापिस आना चाहिए। जैसा गया है उसी तरह वापिस आना चाहिए, इसी पर उसका सारा ध्यान केन्द्रित थो। दिन में दस बार वह देवी की मनौती मनाती। हर बार की मन्नत की मुर्गियों का यदि हिसाब लगाते, तो अभी तक लगभग पचास मुर्गियाँ देवी के दरवाजे पर काटनी पड़तीं। इस हिसाब से लड़ाई के बन्द होते तक और अर्जुन के घर लौटते तक मुर्गियों की संख्या लाखों तक भी पहुँच जाती।

गोपिका ने एक दिन यशोदा से कहा—"यशोदा, तुम्हारे लड़के कैसी पागल जैसी बातें करते हैं! गाँव के कुछ लोग अनाप-सनाप गप्पें उड़ा देते हैं और ये पगले उन्हें सच मान लेते हैं। "केसरी" को छोड़कर और किसी भी समाचार-पत्र पर मेरा विश्वास नहीं। अभी ये लड़के कह रहे थे कि जर्मनी ने पंख लगाकर आसमान में उड़ने की तरकीब निकाली है। जा। किस निगोड़े ने यह गप्प ठोंक दी। अब तुम्हीं बताओ कि पंख लगाकर उड़ने के लिए क्या वे रावरा-राज्य के राक्षस हैं?"

"मुझे इन खबरों से क्या मतलब? मेरा अर्जुन किसी तरह सुरक्षित लौट आये, तो मेरा जी ठंडा हो जायेगा। लड़ाई की बातें करने में किसी का क्या जाता है? जाने उसकी कैसी मति भ्रष्ट हो गयी थी कि उसे लड़ाई पर जाने की सूझी? आज अगर यहीं रहता, तो मजे से खेत में काम करता और सुख पाता। कुछ भी हो, पर आखिर यह मुई लड़ाई ही तो है। इस में कब क्या हो जाय, कौन कह सकता है?" यशोदा की आँखें एकदम भर आईं।

"चुप हो जाओ, यशोदा! रोओ नहीं!" गोपिका ने कहा—"लड़ाई पर गये मनुष्य की याद में आँसू बहाना ठीक नहीं। किस वक्त क्या हो जाए, लड़ाई में इसका कोई ठिकाना नहीं रहता। इसलिए हमें

सिर्फ अपने कुलदेव का स्मरण करना चाहिए और लड़के को आशीस देनी चाहिए।"

"तुम मजे में हो पटेलन।"–यशोदा बोली–"तुम्हारा बेटा तारबाबू है। हर महीने तुम्हें खर्चा भेजता है। वह क्यों लड़ाई पर जाने चला ?' गोपिका बोली—"हम रामायण महाभारत आदि पढ़ते हैं। पेशवाओं ने जो लड़ाईयाँ लड़ी थीं, उनके वर्णन पढ़ते हैं। कुछ दिन पहले मैंने बापट नामक एक लेखक द्वारा लिखी "पानीपत का संग्राम" नाम की पुस्तक पढ़ी थी। युद्ध का वर्णन पढ़न से ही रोंगटे खड़े हो गये थे। पर उस जमाने की लड़ाईयां भी क्या कोई लड़ाईयाँ थी ? आजकल तो सुनती हूँ कि बड़े-बड़े शोध हुए है। मनुष्यों को मारने के हवाई जहाज, सुरंग, पनडुब्बियाँ तोपें, और राम जाने क्या क्या ! इसलिए मैं कहती हूँ कि मेरा शिधू सचमुच यहाँ बड़े मजे में है, सुख से है और यही मेरा बड़ा सुख है। वैसे देखा जाए तो ऐसे कितने ब्राह्मण लड़ाई पर गये होंगे ? तुम कुर्मियों या मराठों को जाना पड़ता है लड़ाई पर। पहिले जब पेशवाओं का राज्य था, उस समय ब्रह्मण भी रकाब में पैर फँसाकर घुड़-दौड़ किया करते थे, परंतु अब हम ब्राह्मण लोग यदि अपने हाथ का जौहर दिखाना भी चाहें, तो हमारे पास कलम को छोड़कर और दूसरा कोई हथियार ही नहीं है।"

"मतलब ?"—बीच ही में यशोदा बोल उठी—"क्या तुम्हें लगता है कि तुम्हारा बेटा भी लड़ाई पर जाए और हाथ का जौहर दिखाए ?"

"यह मैंने कहाँ कहा ?" गोपिका बोली—"अंग्रेज सरकार के कानून के मुताबिक ब्राह्मण सिपाही नहीं हो सकता। जब पहिले जमाने की लड़ाईयों के वर्णन पढ़ती हूँ, तो मन में आता है कि ब्राह्मणों के लड़कों को भी लड़ाई पर जाना चाहिए। तुम्हारा अर्जुन अब लड़ाई पर गया है, पर जब उसकी याद आती है, तो मेरा कलेजा भी धड़कने लगता है। फिर मान लो, कल यदि मेरा शिधू भी लड़ाई पर चल दे, तो मेरे जी का क्या हाल होगा ? ऐसा होता है हम स्त्रियों का मन !

एक बार जी में आता है कि मेरा बेटा भी लड़ाई पर जाए और नाम पैदा करे। पर पुनः ममता का पाश मन को मजबूती से बाँध देता है !"

गोपिका की बात वहीं तक रही। घर से नौकर दौड़ता आया। बोला—"शिधू भैया आये हैं। छोटी मालकिन भी साथ हैं।"

गोपिका का कलेजा धक्-से हो गया। उसे लगा, शिधू कहीं बीमार तो नहीं हो गया ? अचानक कैसे आया ? परसों ही तो उसका पत्र आया था। उसमें यहाँ आने की कोई खबर नहीं थी।"

गोपिका दौड़ती हुई ही घर पहुँची। यशोदा उसके पीछे-पीछे चलने लगी थी। शिधू दरवाजे के पास खड़ा था। उसे देखकर गोपिका को लगा कि शिधू की कहीं अचानक बदली हो गयी होगी और कही नजदीक पास ही हुई होगी, वरना पूरा सामान साथ में लाने की क्या जरूरत थी ? कहीं नौकरी तो नहीं छूट गयी-यह विचार भी उसके मन में आया।

कपड़े उतारकर शिधू नहाने के लिए कुएँ पर गया था। रमा सामान खोलकर सफर में गंदे हुए कपड़े निकाल रही थी और उन्हें धोने के लिए अलग रख रही थी। उसे देखते ही गोपिका ने पूछा—"तुम लोग अचानक कैसे आए, बहू ?"

सामान खोलने के लिए झुकी हुई रमा एकदम चौंककर सीधी खड़ी हो गई और सास के मुँह की ओर सिर्फ ताकने लगी। उसके मुँह से शब्द ही नहीं निकल रहा था।

बेचारी गोपिका के छक्के छूट गये।

"आखिर बात क्या है, बताओ न ?"—कहते हुए गोपिका का स्वर कांप उठा था।

"कोई खास बात नहीं।"—रमा अदब से एक ओर हटकर बोली "इन्हें लड़ाई पर जाने का हुक्म मिला है।"

गोपिका धम्म-से नीचे बैठ गयी—"लड़ाई पर ! मेरा शिधू

लड़ाई पर जाएगा ? तारबाबुओं की लड़ाई पर जाने की क्या जरूरत है ?"

"यह सब आप अब उन्हीं से पूछिए।" कहकर रमा ने कपड़े समेटे और उन्हें लेकर पिछवाड़े के द्वार से कुएँ पर चली गयी।

इस समय तक यशोदा भी आगई थी। उसे देखते ही गोपिका बोली—"देख लो, हम जो अभी बातें कर रही थीं, अचानक वही हो गया। अभी-अभी मैं तुम से कह रही थी कि मेरे शिधू को लड़ाई पर नहीं जाना पड़ेगा और अब सुनती हूँ कि उसे भी लड़ाई पर जाने का हुक्म मिला है। शिधू को वे क्यों लड़ाई पर भेज रहे हैं ? क्या वह सिपाही है ?"

"इस लड़ाई के जमाने में क्या होगा और क्या नहीं होगा, यह कोई नहीं कह सकता।" आँखें पोंछती हुई यशोदा बोली।

गोपिका जब से नीचे बैठी थी सो अभी तक वहीं बैठी थी। उसकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे।

पीछे से शिधू की आवाज आई—"माँ ! ओ माँ ऽ ऽ !"

शिधू की वह हर्ष-भरी आवाज सुनकर, गोपिका के आँसू थम गये। आँचल से मुँह पोंछकर, वह तड़ाक से खड़ी हो गयी और बोली—"आ गये बेटा ! लड़ाई पर क्यों जा रहे हो ? अभी-अभी रमा नें बताया मुझे कि तुम्हें लड़ाई पर जाने का हुक्म मिला है।"

"कम-से-कम मेरे आते तक तो रुक जातीं !" शिधू रमा को लक्ष्य करके बोला—"इतनी जल्दी क्या पड़ी थी ? माँ, मुझे लड़ाई पर जाना है। यशोदा के अर्जुन की तरह नहीं। लड़ाई तो होगी मोरचे पर और हमारा डाकखाना रहेगा उससे बहुत दूर पीछे की तरफ। मैं तारबाबू बनकर नहीं जा रहा हूँ। सिर्फ डाकवाला बाबू बनकर जा रहा हूँ। मुझे वहाँ केवल कुर्सी पर बैठे रहना होगा। अगर पत्र या पार्सल आये तो थैली खोल कर उन्हें निकालना और बँटवा देना। बस, इतना ही काम

रहेगा मेरा। वहाँ न रजिस्ट्री करना है और न मनीआर्डर करने हैं। हमारे डाकखाने के आसपास बड़ा कड़ा पहरा रहेगा। डाकखाने को सुरक्षित रखकर ही लड़ाई चल सकेगी। इसलिए सरकार को सर्वप्रथम अपने डाकखाने की पूरी सुरक्षितता पर ध्यान देना होगा। यहाँ चिपलून में रहना या रत्नागिरी में रहना, या कि वहाँ बेल्जियम-फ्रन्ट पर रहना—सब एक समान है। यहाँ आने में जो देर लगेगी वही सवाल है!"

शिधू माँ के सामने जाकर बैठ गया और हँसकर बोला—"देखो माँ! अब क्या बताऊँ? क्या तुम यह सोचती हो कि मैं कमर में पट्टा बाँधे, काँधे पर बंदूक रखे, क्विक मार्च करता हुआ लड़ाई पर जाऊँगा? मुझे तनख्वाह क्या मिलेगी, जानती हो?"

"आग लगाओ अपनी तनख्वाह को।"—गोपिका बोली—"जो यहाँ मिल रही है वही बहुत है।"

"क्या बहुत है? तुम्हें हर महीने पाँच-छः रुपए भी तो नियम से नहीं भेज सकता। घर गिर रहा है। तीन साल से सोच रहा हूँ कि मरम्मत करूँगा। पर······

"अब चुप भी रहोगे या नहीं?"—गोपिका बोली—"यूँ गीले कपड़ों में कब तक खड़े रहोगे? धोती बदलकर जल्द आकर पीढ़े पर बैठ जाओ। संध्या कर लो। थोड़ा-सा दूध देती हूँ, पी लेना। फिर मैं भी जाती हूँ रसोई में। रमा अब आती होगी। बड़ी देर कर दी उसने। ऐसे कितने कपड़े धोने थे उसे?"—इस तरह कहते हुए गोपिका घर में चली गयी।

भोजन के बाद शिधू सो गया। उसे नींद नहीं आयी थी। लड़ाई पर जाने के विचार उसके मन में उठ ही रहे थे। बंबई के डाकखाने में फौरन जाकर हाजिर होने का हुक्म उसे मिला था। अधिक-से-अधिक एक-दो दिन ही वह गाँव में रुक सकता था।

लड़ाई पर जाने के लिए उसने जिस समय अर्जी भेजी थी, उस समय

का उसका उत्साह अब उसमें नहीं रह गया था। उसका मन दुविधा में पड़ गया था। कहीं मैंने गलती तो नहीं की, यह विचार उसके मन को कचोट रहा था। घर में अकेली माँ है, पत्नी का भी मायके में अपना कोई नहीं, वह भी अकेली है। ऐसी परिस्थिति में, मेरे लड़ाई पर जाने के बाद, यहाँ उनकी चिन्ता कौन करेगा ? लड़ाई से घर वापिस वह कब लौट सकेगा; इसकी उसे कोई कल्पना न थी। लोग कहते थे कि चार-छः महीने के भीतर यह लड़ाई बंद हो जाएगी। चार-छः महीने के बाद, जहाँ यह लड़ाई खत्म हुई कि मैं लौट आऊँगा। तनख्वाह करीब-करीब आज से चौगुनी मिलेगी। बाकी सब खर्च सरकार देगी ही। इस मधुर विचार से कि ऐसी परिस्थिति में वह पूरी तनख्वाह घर भेज सकेगा, उसे बड़ी खुशी हो रही थी। इससे जब वह वियोग के दुख का मिलान करता, तो वह दुख उसे क्षुद्र लगता। अपनी माँ दुख में जिंदगी काट रही है इसलिए उसके मन में बड़ी चुभन होती थी। उसके आर्थिक कष्ट किस प्रकार दूर होंगे, सुख और संतोष में जीवन व्यतीत करने की परि-स्थिति उसे कब और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है, इन्हीं विचारों में खोया हुआ वह आज तक जी रहा था। परन्तु अब यह महसूस करते कि लड़ाई पर जाने के बाद से हमारे आर्थिक कष्टों का निवारण होगा और माँ सुख और संतोष में रह सकेगी, उसका मन उल्लसित हो रहा था। साथ ही, यह जानते हुए भी कि प्रत्यक्ष मोरचे पर जाने का मौका उसे नहीं आएगा और उसकी जान इतने खतरे में नहीं रहेगी जितनी कि सिपाही की रहती है। उसे लगा कि यह सोचना भी भूल है कि डाक-खाने में रहते हुए भी मैं बिल्कुल सुरक्षित ही रहूँगा, क्योंकि मोरचे के आसपास ही छावनी होती है और वहीं डाकखाना होता है। लड़ाई में यदि मैं मारा गया तो मेरी माँ का क्या होगा।, इस विचार से उसके प्राण सूखने लगे थे। फिर उसने सोचा कि बिना साहस किए सुख नहीं मिलता और जब साहस करने का अवसर आ गया है, तो उसे न कर पीछे हट जाना पुरुषों को शोभा नहीं देता। उसने यह सिद्धान्त रमा को

तो जैसे-जैसे समझा दिया था, पर माँ को समझाना बड़ा कठिन था।

सायंकाल भोजन के बाद माँ आकर उसके बिस्तर के पास बैठी। उस समय वह बोला, "माँ, रोओ मत। हमने बीसवीं सदी में जन्म लिया, इसे हम पुरुष अपना दुर्भाग्य समझते थे। पेशवाओं के जमाने की वीरता की बातें कहते और सुनते वक्त हमारी भुजाएँ फड़क उठती थीं। वही वीरता दिखाने का आज मौका आया है। प्रत्यक्ष वीरता दिखाने का मौका यद्यपि यशोदा के अर्जुन को मिलेगा, फिर भी डाकखाने में मोरचे के पीछे रहने वाले हम बाबुओं को वह मिलेगा ही नहीं, यह नहीं कह सकते। आज अगर पेशवाओं का राज्य होता, तो तुम्हारे पुत्र को लड़ाई पर जाना ही पड़ता। यही समझ लो कि आज पेशवाओं का ही राज्य है और अपने जी को पक्का करो। सच पूछा जाए, तो मुझे वहाँ किसी किस्म का कोई खतरा नहीं। पर तुम्हें यह बात जँचती ही नहीं। मैं बार-बार कह रहा हूँ कि मेरी जान सुरक्षित है। यहाँ की अपेक्षा मुझे वहाँ सुख ही अधिक मिलेगा। खाना-पीना, नौकर-चाकर, ऐशोआराम सब कुछ भरपूर है वहाँ मेरे लिए। यहाँ के तहसीलदार और जज लोग जितने ठाट में नहीं रहते, उतने ठाट से हम लोग वहाँ रखे जाएँगे। पीछे रहने वाले हम लोगों की सुरक्षा पर ही मोरचे पर के लोगों के प्राण अवलंबित हैं, यह तुम्हारी अपेक्षा हमारी सरकार अच्छी तरह जानती है। तुम जरा भी चिन्ता न करो। वापिस लौट कर आऊंगा, तो सौ सवा सौ महीने की नौकरी मेरी बाट ही जोहती रहेगी।"

गोपिका ने कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों कुहनियाँ घुटनों पर रख कर वह लगातार जमीन की ओर देख रही थी। उसकी आँखों से निरंतर आँसू बह रहे थे। उसकी वह अवस्था देखकर वह बोला—"यह कैसी अशुभ बात कर रही हो माँ ! तुम्हारा पुत्र लड़ाई पर जा रहा है। उसके पथ को क्या तुम आँसुओं से सींचोगी ? भगवान का नाम लेकर मुझे आशीर्वाद दो। तुम्हारे आशीर्वाद के बल पर तुम्हारा यह बेटा शिघ्र लड़ाई में नाम कमाकर पुनः तुम्हारे चरणों पर सिर रखने के लिए

शीघ्र ही लौटकर आएगा। भगवान क्या इतना निर्दयी है ? तुम्हारा भगवान पर विश्वास है न ? अब मेरे जाने के बाद आँखों से आँसू न बहाना। मां की आँखों से आँसू की एक बूंद निकलते ही पुत्र के शरीर से खून की सौ बूंदें बहने लगती हैं। इसीलिए रोना नहीं चाहिए। सदा प्रसन्न मुद्रा से रहना चाहिए, हँसते हुए।"

कोने में खड़ी अपनी पत्नी की ओर मुड़कर शिवू बोला, "और तुम भी सुन लो। यह न समझना कि सिर्फ अपनी माँ से ही कह रहा हूँ। दुनियाँ की सब माताओं से कह रहा हूँ। यह लड़ाई अब शुरू हो गयी है। दुनियाँ में अब बड़ी उथल-पुथल होने वाली है। आने वाले जमाने में सब माताओं के लड़कों को लड़ाई पर जाना होगा। इसलिए तुम्हें भी यह ध्यान में रखना चाहिए।"

पुनः माँ की ओर मुड़कर बोला —'अब तुम जाकर सो जाओ। अपने मन को थोड़ा भी कष्ट न दो। जिस दिन से मैंने सरकारी नौकरी स्वीकार की है, उसी दिन से मैं उनके हुक्म का तावेदार हो गया हूँ। जो हुक्म मुझे मिलता है, उसकी अदूली मैं नहीं कर सकता। यदि नौकरी छोड़ना चाहूँ, तो वह भी मेरे हाथ में नहीं। अब तो जो विपत्ति सामने आ गई है उसका सामना करने के लिए भगवान का नाम लेती रहो और रोज अपना आशीर्वाद मुझे भेजती रहो। हां, उठो तो अब······"

एक शब्द भी न कहकर गोपिका उठकर चल दी।

मीठ-मीठी बातें करके मैंने अपनी माँ को धोखा दिया, इसका उसे पश्चाताप हुआ। सरकार उसे सख्ती से लड़ाई पर नहीं भेज रही थी। उसने जानबूझ कर यह संकट अपने-आप अपने पर ले लिया था, परन्तु माँ के मन को धक्का न लगे, इसीलिए उसने झूठमूठ ही यह कह दिया था कि सरकार ही उसे लड़ाई पर भेज रही है। इस बात पर रमा ने भी विश्वास कर लिया था। रमा की उम्र ही क्या थी, यही सिर्फ सोलह वर्ष। अभी लड़की ही तो थी वह। विवाह हुए तीन ही वर्ष हुए थे।

पति से परिचय हुए अभी पूरा डेढ़ साल भी नहीं हुआ था। इतने में ही यह वियोग का प्रसंग और वह भी लड़ाई पर जाने का !

लड़ाई पर जाने वालों के लिए आँसू नहीं बहाना चाहिए, यह तत्त्व ज्ञान शिधू के खूब काम आया। उसका मन भी अस्वस्थ हो गया था। वह हमेशा हँसता रहता। पर इस प्रसंग पर उसका मन हिल गया था यह देखकर कि रमा को नींद लग गई है, वह भी अपनी नित्य की आनन्दी वृत्ति का त्याग करके यथेच्छ आँसू बहाने लगा। यह कर लेने पर उसका मन स्थिर और हल्का हो गया।

दूसरे दिन जाने की तैयारी आरंभ हुई। सारी तैयारी यद्यपि सरकार की तरफ से होने वाली थी, फिर भी इतने लम्बे सफर के साधन जमा करने के लिए उसे अपने खर्च से भी बहुत सी चीजे खरीदना आवश्यक था। उसने बड़ी किफायतदारी से हिसाब लगाया, फिर भी इन चीजों को खरीदने के लिए कम-से-कम सौ-डेढ़सौ रुपये की जरूरत थी। यह रकम सरकार से मिलने वाली नहीं। इसलिए उसने संगमेश्वर के एक साहूकार के पास अपना एक खेत गिरवी रख कर दो सौ रुपया कर्ज लिया। यह कर्ज लेते समय उसे बड़ी आन्तरिक वेदना हुई।

उसे पहिले भी अनेक कठिनाइयाँ आयी थीं, पर खेत गिरवी रखकर कर्ज लेने का अवसर उस पर नहीं आया था। उसके हृदय पर यह भारी आघात हुआ। पर उसे यह विश्वास होने के कारण कि लड़ाई से लौटने के बाद मैं यह क़र्ज सहज ही अदा कर दूँगा, उसने अपने मन को दुखित न होने दिया।

जब यह गाँव से जाने लगा, तब उसे बिदा देने के लिए उसके सब आसामी और उसके कुनबे के लोग उस गाँव की सरहद तक पहुँचाने गये। गोपिका और रमा धीरे-धीरे चल रही थीं। उन्हें आखिरी संदेश देते समय शिधू बोला—"माँ, अब तुम कहाँ तक जाओगी मेरे साथ ? यदि किसी दूसरे काम से विदेश जाता, तो तुम्हें बंम्बई तक भी साथ

ले चलता। तुम स्वयं देख लेतीं कि हमें किस शान से बिदाई दी जाती। परन्तु यह मौका है लड़ाई पर जाने का। वहाँ बंदरगाह पर हार पहिनाना और बाहों में भरना—यह कुछ नहीं हो सकेगा। वह सब यहीं निपट लें। वाह, यह क्या ? रो रही हो ? याद रखो, आँसू नहीं बहाना है और अपनी इस बहू से भी कह देना कि बेकार रोवे नहीं।"

रमा की ओर मुड़कर वह बोला—"अपना कुकम कुछ पुछा-पुछा सा ही लगाया करो। समझी ? पति को लड़ाई में जहाँ स्वर्ग प्राप्त हुआ कि वह झट-से पोंछ सको।"

"यह क्या बकता है रे ? निगाड़े की जीभ में जैसे हड्डी ही नहीं है !" गोपिका बोली, "तेरी यह आदत अब छूटेगी भी कब ? उसके मन की ओर भी देखेगा या नहीं ?"

"सबके मनों की ओर देख रहा हूँ और उनके चेहरों की ओर भी देख रहा हूँ। अब तुम सब लौट जाओ। हाँ, जाओ तो—लेफ्ट टर्न-क्विक मार्च ! सुना माँ, राघो भरारी के वेग से मैं लड़ाई पर जा रहा हूँ। उसने जिस तरह अहमदशाह अब्दाली का गला दबाया था उसी तरह मैं भी कौन जाने किसके प्राण लेकर ही लौटूंगा। अपनी बहू से कह देना कि उस समय पचारती लेकर तैयार रहे। अच्छा, तो अब आप सब लोग लौट जाइए न। हाँ, जाओ अब !"

शिधू ने एकदम आगे चलना शुरू कर दिया। फिर से पीछे मुड़कर देखा भी नहीं।

—०—

आलिंगन

विलायत जाने वाले अपने कुछ मित्रों को विदा देने के लिए इन्द्र जोशी पहिले एक दो बार बम्बई गया था। उस समय हार और पुष्प-गुच्छ देकर उसने अपने मित्रों को बिदा दी थी।

परन्तु यह प्रसंग बिल्कुल भिन्न था। लड़ाई पर जाने वाले लोगों की इस भीड़ में हार और गुलदस्ते देता कौन और लेता कौन? पहिले उसे पोस्ट-मास्टर जनरल के आफिस में हाजिर होना पड़ा। वहाँ से वह मिलिटरी कैम्प के हवाले कर दिया गया। लड़ाई पर जाने वाले अन्य पलटनों के साथ उसे भी एक जहाज पर बैठा दिया गया।

यह सब काम सरकारी निगरानी में होने के कारण मुलाकात, होने और पुष्प-गुच्छों आदि का प्रश्न ही उपस्थित न होता था। जिन-जिन से वह मिलना चाहता था, उन से मिलिटरी कैम्प में प्रवेश करने से पहले ही उसे मिल लेना पड़ा था।

उसका अपना यह अनुमान था कि पोस्ट-मास्टर की हैसियत से वह बेलजियम के किसी मोरचे पर भेजा जा रहा था इसलिए कह रहा हूँ कि कौन कहां भेजा जा रहा है, इसका पता किसी को भी नहीं लगने दिया जाता था।

पोस्टमास्टर की हैसियत से वह एक आफिसर था। इसलिए जहाज में उसे सेकिंड क्लास के केबिन में स्थान मिला। सैकिंड क्लास का केबिन मिलने की खुशी के साथ ही उसके हृदय में एक भय भी झाँकने लगा था। "बेस आफिस" में उसकी नियुक्ति हुई होती तो वह एक क्लर्क की हैसियत से ही जाता और फिर लड़ाई के मोरचे से कई मील दूर रहता।

परन्तु पोस्ट-मास्टर की हैसियत से जाने के कारण उसकी नियुक्ति किसी फील्ड आफिस में ही होगी, यह निश्चित था और इसीलिए उसके हृदय में भय-सा छा गया था।

उसका जहाज अदन के बँदरगाह पर कुछ समय के लिए रुका था। वहाँ उसने यह समाचार सुना कि स्वेज की नहर पार करने के बाद जहाज को खतरा है। समुद्र में जहाँ-तहाँ सुरंग डाल दिये गये हैं और शायद कहीं-कहीं शत्रु के 'डिस्ट्रायर्स' भी मार कर रहे हैं। वैसे वह डरपोक न था। लड़ाई पर जाने के लिए वह जान बूझकर तैयार हुआ था। यह खतरा उसने खुद मोल लिया था। इसके बावजूद यह समाचार पाकर उसके हृदय को धक्का लगे बिना न रहा।

जहाज पर वक्त बड़े मजे में कट रहा था। यद्यपि उसके साथियों में महाराष्ट्रीय कोई भी न था, फिर भी हिन्दी बोलने वालों की वहाँ कोई कमी न थी। हिन्दी भाषा में बातें करने लिए पहले पहल उसे बड़ी कठिनाई प्रतीत हुई। अँग्रेजी जानने वाले जो लोग जहाज पर थे, उनसे शिधू का सम्बन्ध शायद ही कभी आता; क्योंकि वे सब फौजी अफसर थे और उन अफसरों की दृष्टि में पोस्टमास्टर एक तुच्छ व्यक्ति था। मामूली सिपाही से पोस्टमास्टर का रैंक ऊंचा माना जाता था, जो जमादार के रैंक के बराबर था। नये कमीशन प्राप्त एक-दो हिन्दुस्तानी डाक्टर उसके साथी थे। उनसे उसकी अच्छी घनिष्ठता हो गई।

पहिले-पहल उसे खाने-पीने की बड़ी कठिनाई हुई। कुछ दिन तो उसने डबल-रोटी, मक्खन, चाय और सब्जियों पर ही रहने की कोशिश की। पर इन्हें खाकर उसका पेट नहीं भरता। नये डाक्टरों ने उसे फौजी खाना खाने की दीक्षा दी। पहिले ही वक्त जब उसे गोश्त परोसा गया तो उसे वह खाने की हिम्मत न हुई। अभक्ष्य भक्षण का आरम्भ उसने आमलेट से किया।

पहिला आमलेट खाने के बाद दो-तीन दिन उसका जी मचलता रहा। पर आगे चलकर वह उसका आदी हो गया और कुछ ही दिनों के

बाद वह करी-राईस तक पहुँच गया ।

पहिले आमलेट फिर सिर्फ करी-राईस, बाद में कटलेट्स और फिर तो जो भी उसके सामने आ जाता, उसे वह निःसंकोच खा डालता । मार्सलीज के बन्दरगाह पर उतरते तक फौजी खाना खाने का वह इतना आदि हो गया कि उसे यह जानने की भी परवाह न रही कि जो गोश्त खाने की मेज पर रखा है वह किस जानवर का है !

शिधू को लगा कि लड़ाई के मैदान पर जाने के लिए अब मैं पूरी तरह से तैयार हो गया । गोश्त हजम करने लगा, यह क्या कम हुआ ?

मार्सलीज पर मिलिटरी गाड़ी तैयार थी । इस गाड़ी से उनका सफर शुरू हुआ । वह गाड़ी किसी भी स्टेशन पर खड़ी न होती थी । जिस स्टेशन पर वह खड़ी हुई थी उस स्टेशन के नाम का भी किसी को पता न चला । उस स्टेशन पर लोग प्लेटफार्म पर उतर पड़े थे । इसलिए वह भी उतर पड़ा । इस गाड़ी से जिस तरह यूरोपियन सोल्जर्स जा रहे थे उसी तरह हिन्दुस्तानी सिपाही भी जा रहे थे ।

स्टेशन पर बड़ी भीड़ थी । वहाँ के लोगों की जो भाषा कानों में पड़ रही थी, वह अंग्रेजी न थी । इसलिये शिधू ने सोचा कि वह शायद फ्रेन्च भाषा होगी ।

वह एकदम आश्चर्य-चकित हो गया । बहुत सी स्त्रियाँ प्लेटफार्म पर आयीं और जो भी सोल्जर उन्हें मिला—फिर वह चाहे अंग्रेज हो या हिन्दुस्तानी—उसे अपनी बाँहों में भर कर चूमने लगीं ।

यह बात उसके साथ भी हुई । तब वह घबरा उठा । आज तक उसकी धारणा थी कि गोरे चमड़े के लोग अतिमानव हैं जिन्हें दूर से ही देखना पड़ता है और जिनसे हाथ मिलाना करीब-करीब असम्भव ही होता है । ऐसे विकट लोग होते हैं ये गोरे चमड़े वाले और ऐसी श्रेष्ठ जाति की स्त्रियाँ तो महाविकट होती हैं ! जीवन में जिन योरोपियन लोगों को उसने देखा था, वे सब कलैक्टर, डिस्ट्रिक्ट जज आदि उच्च पदधारी ऊँचे दर्जे के लोग थे । वे यदि थोड़ा भी मुस्करा देते, तो

जिसकी तरफ देखकर वे मुस्कराते, वह अपने आपको बड़ा धन्य समझता, उसे लगता मेरा जीवन कृतार्थ हो गया ! और यहाँ इस स्टेशन पर ? ये अतिमानवों की स्त्रियाँ हिन्दुस्तानी लोगों को अपनी गोरी बांहों में भर कर चूम रही हैं ! बेचारे शिंधू का कलेजा फट-सा गया !

स्वागत-सत्कार का यह तरीका उसकी दृष्टि में अपूर्व था । जिस लड़की ने इस नाजुक तरीके से उसका स्वागत किया था, उसने शिधू से बातें करना शुरू किया । वह फ्रेन्च भाषा बोल रही थी। शिधू को मजाक करने की सूझी । वह अपनी मराठी भाषा में उत्तर देने लगा । वह बार-बार फ्रेन्च बोल रही थी और वह बार-बार मराठी में उत्तर दे रहा था । भाषा शास्त्र की इस आँख-मिचौनी में दोनों मशगूल हो गये थे । दोनों उस प्रसंग का रसास्वादन कर रहे थे ।

बेचारा शिधू आखिर थक गया और अंग्रेजी बोलने लगा । वह लड़की बोली—"नो अंगले !"

शिधू बोला—"आई इंडियन—मराठी पोस्टमास्टर—"ऐसा कह-कर उसने हाथ से डाक बांटने का अभिनय करके दिखाया ।

उस अभिनय का अर्थ वह लड़की समझ गयी ।

वह बोली—"नो सोल्जर ?" शिधू ने सीधा मराठी में जवाब दिया, "अगर मौका आ गया, तो मै भी लड़ूँगा ।"

ऐसा जान पड़ा कि शिधू के रंग-ढंग से वह लड़की उसका आशय समझ गयी । उसने एक बार पुनः शिधू को अपने बाहु-पाश में बद्ध करके चूम लिया और बोली—"अंग्ले, इन्डियन्स-ब्रेव्हियर्स !

उनके इन उद्‌गारों का अर्थ शिधू के ध्यान में आ गया । फ्रान्स की रक्षा के लिए भारतीय सेना को लेकर अँग्रेज लोग दौड़ पड़े, इसीलिए फ्रेन्च लोगों को बहुत आनन्द हुआ । यह आलिंगन और चुम्बन उसी आनन्द का प्रदर्शन था, ऐसा उसने अनुमान लगाया ।

सीटी बजी और वह फिर गाड़ी में बैठा । स्वागत की इस नयी पद्धति का उसके मन पर बड़ा विलक्षण प्रभाव पड़ा था । क्या कोई

भारतीय स्त्री विदेशियों का इस प्रकार स्वागत-सत्कार करती ? भारतीय नारियाँ विजयी वीरों की आरती उतारती थीं, यह उसने भारतीय इतिहास में पढ़ा था। वह सोचता, क्या युवतियाँ सचमुच विजयी वीरों के सामने आकर उनकी आरतियाँ उतारती थीं या कि वे निरे वर्णन ही हैं। शायद विजयी पतियों की पत्नियाँ आरती उतारती भी हों। दिवाली में आरती उतारने की प्रचलित पद्धति का उसे स्मरण हो आया।

वह बड़ा पापभीरु था। परायी स्त्री की लालसा तक उसके मन में कभी नहीं जन्मी थी। यह सच है कि उसका प्रेम-विवाह नहीं हुआ था, फिर भी दैवयोग से जिस तरुणी से उसका विवाह हुआ था, वह अत्यन्त स्नेहमयी थी। उसे अपने पति पर गर्व था। पत्नी के प्रति उसके हृदय में भी एक विशेष प्रकार का तीव्र आकर्षण था। तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार परायी स्त्री को सिर्फ छूना भी पाप था। भीड़ में भी यदि किसी परायी स्त्री का केवल स्पर्श ही हो जाता, तो भी उसके रोंगटे खड़े हो जाते। उसे लगता, मेरी भूल हो गई, मैं शिष्टता से गिर गया, मर्यादा का मैंने उल्लघंन कर दिया ! परन्तु एक सुन्दर स्त्री जिससे कोई पहचान भी न थी, एकदम आई और अपनी दोनों बाहें उसके गले में डाल उस पर चुंबनों की वर्षा करने लगी ! इस विलक्षणता में क्या रहस्य था, यह वह समझ नहीं पा रहा था।

उसने अँग्रेजी उपन्यास पढ़े थे। जब प्रेमी युगल एक दूसरे पर अनुरक्त हो जाते, तब अनुराग के आवेश में, उन में परस्पर घनिष्ठता स्थापित होती और उनके अधरों से अधर भी मिल जाते, पर एक अनजाने अनदेखे, यही नहीं, बल्कि भारत में रहने वाले गोरे अँग्रेजों की दृष्टि में अत्यन्त तुच्छ माने जाने वाले हिन्दुस्तानी को एक सुन्दर यूरोपियन ललना ने अपनी भुजाओं में क्यों भर लिया, उसे क्यों चूम लिया, यह रहस्य वह समझ नहीं पा रहा था।

उस स्पर्श की स्मृति अभिनव थी। वह युवती रेशमी कपड़े पहिने

थी। उसकी त्वचा मृदु थी। इत्र की खुशबू उसके आस-पास महक रही थी। ऐसी युवती ने मेरे अधरों पर अपने अधर धर दिये!—वह प्रसंग उसे बार-बार याद आता और उसका हृदय बेचैन हो उठता।

वह अपनी मातृभूमि छोड़ कर आया है यह भी वह भूल गया। वह लड़ाइ पर जा रहा है, जान का वहाँ खतरा है, मौत वहाँ नजदीक खड़ी है, ये विचार भी उस वक्त उसके मन में नहीं आए।

उसके स्निग्ध स्पर्श की उसे बार-बार याद हो आती। वह हक्का बक्का हो गया। उसकी नित्य की संतुलित वृत्ति ने उसका साथ छोड़ दिया। उस फ्रांसीसी रमणी का रमणीय मुखड़ा, बांसुरी के स्वर जैसी मीठी आवाज, अँग्रेजी से भी अधिक सुन्दर लगने वाले फ्रेन्च भाषा के शब्द उसके कानों में गूँज रहे थे।

उसके मस्तिष्क में एकदम प्रकाश पड़ा। यही बात है! आज तक लोग कहते आये हैं कि तरुणियों के प्रोत्साहन पर तरुणों की वीर-वृत्ति अवलम्बित है। बस यही वह बात है! इसी नशे के जोर पर प्राणों की परवाह न कर हथेली पर सिर लिये सिपाही समरभूमि में लड़ा करते थे।

इन फ्रेन्च युवतियों को ज्ञान है, इसीलिए उन्होंने इस रीति से हिन्दुस्तानी सिपाहियों का स्वागत किया। जो यूरोपियन हिन्दुस्तान में आकर हिन्दुस्तानियों के साथ इस तरह पेश आते हैं जैसे हिन्दुस्तानी शुद्र-चमार हों, उन्हीं यूरोपियनों की ये लड़कियाँ सूर्य के प्रखर ताप से झुलसे हुए हिन्दुस्तानियों की काली चमड़ी को चूम रही हैं। सूखे जामुन की तरह हिन्दुस्तानियों के मोटे होठों से उन्हें घृणा न हुई। पान और तमाखू की तहें चढ़-चढ़कर काले हुए हिन्दुस्तानियों के शिगाफदार सड़े दाँतों को देख कर, उनके रोंगटे खड़े नहीं हुए।

यही है वह स्वदेश-प्रेम की भावना! क्या यह स्वदेश-प्रेम की भावना हिन्दुस्तानियों में है? शिधू अपने मन से पूछने लगा।

उसे पुरानी याद हो आई। पुराना इतिहास उसके मन में घूम गया।

परदेश जाने वाले राधो भरारी का चित्र उसकी दृष्टि के सन्मुख आया। पर उस इतिहास में ऐसी कोई घटना नहीं थी जिसमें इस प्रकार शरीर के करने लायक कोई उत्तेजना की बात होती—उसे लगा शायद संस्कृति-भेद के कारण उत्तेजना देने के तरीकों में यह फर्क हो गया हो। दोनों संस्कृतियों के इस अन्तर का उसने अत्यन्त सूक्ष्मता से मंथन करने का निश्चय किया।

उसकी गाड़ी किसी स्टेशन पर आकर रुक गयी। वहाँ मय सामान के वह उतारा गया और मोटर द्वारा किसी अज्ञात स्थान को रवाना कर दिया गया।

उसका सफर शुरू हो गया। कुछ दूरी पर डेरे और रावटियाँ नजर आने लगीं। बहुत दूर से तोपों के दगने की अस्पष्ट-सी आवाजें उसके कानों से टकराने लगीं।

उसका सीना धड़क उठा। यह महसूस करके कि मैं अब मैदानेजंग में पहुँच गया हूँ, वह हक्का-बक्का हो गया। वह जिस छावनी में थोड़ी देर के लिए उतरा था, उस छावनी से भी आगे उसे जाना था। वह फौजी अस्पताल था। उस अहाते में प्रवेश करने की किसी को इजाजत न थी।

स्थान-स्थान पर रैड-क्रास के चिन्ह दिख रहे थे। यहीं पर डाक्टरों से उसका साथ छूटा। वहाँ जो डाकखाना था, वह "बेस आफिस" था। उसने उस पोस्ट आफिस में पहिले हाजिरी दी, आगे उसे कहाँ जाना है, इसका हुक्म भी उसे वहीं मिला। उस हुक्म-नामे पर गाँव का नाम न था। फील्ड पोस्ट आफिस का सिर्फ नंबर लिखा था। इस कारण वह इस समय कहाँ था और अब कहाँ जाएगा, इसका उसे कोई पता न चला।

उस दिन उन सब लोगों ने उस छावनी के एक अलग हिस्से में ठहरकर आराम किया। जहाँ-तहाँ गड़बड़ी मची थी। भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग आ-जा रहे थे। बड़े-बड़े टैंक आ रहे थे। रेडक्रास की मोटरें

आ-जा रही थीं। मामूली कारें भी इधर-उधर दौड़ रही थीं। प्रत्येक व्यक्ति कार्य में व्यस्त था। रात हो गयी थी फिर भी किसी को चैन न था। हर व्यक्ति किसी-न-किसी काम में खोया हुआ था।

किसी चेहरे पर घबराहट नजर नहीं आती थी। हर व्यक्ति अपने काम में इतना डूबा हुआ था कि मौत उसके आसपास घूम रही है, इस की याद भी उसे न होती थी। इतना समय ही उसके पास कहाँ था जो उसे यह याद आती ?

उस रात शिधू को नींद आई। पर नींद आते ही दूर पर सुनाई पड़ रही तोपों की गड़गड़ाहटे उसे जगा देतीं। उनकी आवाजें इतनी बड़ी न थीं कि उनके कारण गहरी नींद में सोया हुआ व्यक्ति जाग उठता, पर सोते समय यही विचार उसकी नजरों के सामने झूल रहा था कि वह रणभूमि मे आ गया है। इस विचार के कारण वे अत्यन्त मन्द गड़गड़ाहटें भी उसकी नींद भगा देती थीं। वह घबराया नहीं था। फिर भी मृत्यु के विशाल जबड़े के आसपास वह कहीं है, इसी की याद उसे सोने नही देती थी। कंधे पर बन्दूक रखे लड़ने के लिए रणभूमि पर जाने वाला सिपाही वह नहीं था। उसे लगा, शायद इसीलिए वह डर रहा है। उसके नजदीक सोये हुए गोरखा सिपाही घोड़े बेंचकर सोये थे। कुछ तो अच्छी तरह खर्राटे भर रहे थे !

उसे लगा कि लड़ाई पर अगर आना है, तो सिपाही बनकर ही आना चाहिए, तभी वीरता का सच्चा अनुभव प्राप्त हो सकता है। वह क्लर्क बनकर समर-भूमि पर आया था। इस पर उसे शर्म आने लगी। हथियार हाथ मे लेकर आने के बदले वह हाथ में लेखनी लेकर आया था। उसे लगा, लेखनी चलाकर वह युद्ध कैसे जीतेगा ?

पर इसके लिए अब कोई चारा न था और पहिले भी कभी न था। दुर्भाग्य से उसने उच्च वर्ण में जन्म ग्रहण किया था। उच्च वर्ण की यह पैदायश इस साम्राज्य में उसके हृदय में उमड़ रही वीरता के आड़े आ रही थी।

वह उठकर डेरे के बाहर आया। उसने दूर निगाह फेंककर बड़े ध्यान से देखा। वर्षा में जिस तरह बिजली चमकती दिखाई देती है, उसी तरह तोपों के धड़ाकों की चमकें उसकी नजरों के सामने से सर-सराती चली जाती थी। लड़ाई के मैदान में क्या रात को भी विश्राम नहीं ? कहाँ गये वे धर्म-युद्ध ?

महाभारत की कथाओं का वह स्मरण करने लगा। दिन-भर लड़ कर रात को सब के लिए एक-सा आवागमन खोल देनेवाले कौरव-पांडवों का इतिहास उसे जिस समय याद आया, तब उसे ऐसा लगन लगा कि यह जमाना धर्म-युद्ध का है ही नहीं। इस जमाने में युद्ध का मतलब युद्ध है। युद्ध में धर्म की भावना कैसी ? धर्म और अधर्म—ये व्यवहारिक कल्पनाएँ हैं। लड़ाई के मैदान मे कुछ भी धर्म-अधर्म नहीं ! युद्ध-धर्म ही रणभूमि में धर्म होता है। इसी युद्ध-धर्म के अनुसार एक को दूसरे के प्राण लेना चाहिए, बस !

उसे लगा एक मनुष्य दूसरे के इस प्रकार प्राण क्यों ले ? यहाँ किसने किसको क्या अपराध किया है जिससे उसका बदला प्राण लेकर चुकाया जाय ? जिन्हों ने यह युद्ध आरम्भ किया है, क्या वे इस रणभूमि में स्वयं आए हैं ? फिर यह युद्ध किनका ? युद्ध उपस्थित किसने किया ? और लड़ कौन रहा है ?

जैसे-जैसे वह सोचने लगा वैसे-वैसे उसका मस्तिष्क भ्रमण करने लगा। उस भ्रमण के बीच ही उसकी आँख लग गई।

सुबह सूरज निकलते ही वह प्रत्यक्ष समरभूमि की ओर कूच करने के लिए निकल पड़ा।

पहिली झलक

वह सफर यद्यपि मोटर से हो रहा था, फिर भी मुकाम पर पहुँचने के लिए उसे काफी वक्त लगा।

सफर में बातचीत करने के लिए कोई न था—यह मतलब नहीं कि कोई दूसरे मनुष्य थे ही नहीं—पर वहाँ जो मनुष्य थे, उनकी भाषा से शिघू परिचित न था। वे प्रायः सभी गुरखे थे। जो गोरे थे, वे दूसरी मोटरों में बैठे थे। सिपाही के दर्जे से शिघू का दर्जा बेशक बड़ा था, पर वह अफसरों की बराबरी का न था। फिर भी उसके दर्जे का को ख्याल न कर उसे मामूली सिपाहियों के साथ ही बैठा दिया गया था।

वह अँग्रेजी पढ़ा-लिखा था। इसलिए मामूली सिपाहियों के साथ बैठा दिये जाने से उसे बुरा लगा। उसे कम-से-कम ऐसे लोगों के साथ बिठाते जो अँग्रेजी जाननेवाले थे, तो उसका समाधान हो जाता। ऊँचे और नीचे दर्जे का यह प्रश्न न था। प्रश्न था पढ़े-लिखे और अनपढ़ों की संगति का।

विचार करने के उपरान्त शिघू को यह दिखाई दिया कि यह प्रश्न शिक्षित और अशिक्षित का भी नहीं है, क्योंकि जो गोरे सिपाही थे, वे भी कहाँ शिक्षित थे? उनकी भाषा हमारे यहाँ की ग्रामीण भाषा से भी गई बीती थी। अश्लील और अशिष्ट शब्दों के बिना उनके मुँह से एक भी वाक्य नहीं निकलता था। फिर ऐसा क्यों होना चाहिए?

उसके मन ने यह पहेली हल कर ली। अश्लील और अशिष्ट ही क्यों न हो, पर उनकी भाषा अँग्रेजी थी और अँग्रेजी भाषा ही शिक्षितों की भाषा मानी जाती है। जिसे अँग्रेजी भाषा आती है, वही सुशिक्षित है, ऐसी धारणा हिन्दुस्थान में जड़ पकड़े हुए है। उसी का यह परिणाम

उसके मन पर हुआ।

सब लोग मुकाम पर जा पहुँचे। शिधू ने फील्ड आफिस का चार्ज लिया। उस स्थान पर जो मनुष्य पहिले काम कर रहा था, उसे ही शिधू की मातहती में काम करने का हुक्म मिला था।

शिधू को इससे बड़ा समाधान हुआ। कम-से-कम इस जगह ता उसके दर्जे का ख्याल किया गया था। अगर उस आदमी की मा हती में काम करने का उसे हुक्म मिलता, तो उसे बहुत बुरा लगता।

आफिस का काम एक निश्चित साँचे में ढला हुआ-सा था। पत्र और पार्सल को छोड़कर, दूसरा किसी भी प्रकार का काम इस आफिस में न था।

पत्र और पार्सलों को इकट्ठा करके भेजना और आए हुए पत्रों और पार्सलों को बाँट देना, इतना ही काम था। हिसाब--किताब रखने की कोई झंझट न थी। मनीआर्डर करने या टिकट बेचने का काम वहाँ नहीं करना पडना था। कम से कम उस वक्त तो नहीं था। सारे पत्र और पार्सल फील्ड सर्विस के पते पर आने-जाने के कारण उन पर टिकट लगाने का सवाल ही न था। आए हुए पार्सलों की रसीदें तैयार करना और उन पार्सलों को जहाँ-के-तहाँ बाँट देना, यही एक बड़ा काम था।

पार्सलों की संख्या बेशक बहुत बड़ी होती। दुनिया के प्रायः सभी हिस्सों से पार्सल आया करते। यह बात न थी कि सभी पार्सल सैनिकों के रिश्तेदार ही भेजते हों। अनेक अज्ञात व्यक्तियों की तरफ से भी सैनिकों के लिए उपहार के रूप में कमांडिंग आफीसर के पते से अनेक उपयोगी चीजों के पार्सल आया करते। इन पार्सलों को शिधू कमांडिंग आफीसर के पास पहुँचा देता। इसके बाद वह आफीसर उन चीजों का क्या करता इसका शिधू को कोई पता न चलता और न इसकी उसे कल्पना ही थी :

काम बहुत था, पर झंझट न थी। परिस्थिति अगर विकट थी तो सिर्फ एक ही बात में, बिलकुल कानों के नजदीक ऐसी आवाजें दनदनाती

थीं कि कानों के परदे फट जाने का भय था ! खंदकों में बैठकर लड़ने की कल्पना नहीं निकली थी। बड़ी दूर तक निशाना फेंकने वाली तोपें ईजाद हो चुकी थीं। शत्रु की सेना को हमारी हलचल दिखाई न दे इसलिए खंदक खोदे गये थे और सिपाही उनमें बैठे रहते। इन खंदकों में सिपहियों के रहने आदि का प्रबन्ध करीब-करीब बैरक जैसा ही रहता। इन खंदकों से निकलकर सिपाही सामनेवाली खन्दक पर आक्रमण करते।

ये सुनी हुई बातें थीं। प्रत्यक्ष खन्दकों के भीतर की परिस्थिति कैसी होती है, यह देखने का शिधू को मौका ही न मिला। रणभूमि पर जितनी सुरक्षा की अपेक्षा की जा सकती है, उतने सुरक्षित स्थान में उसका आफिस था।

पूछताछ करने पर उसे पता चला कि वह बेलजियम देश के किसी गाँव के आसपास है। बेलजियम का विनाश करके जर्मन लोग फ्रान्स की सीमा के बहुत निकट पहुंच गये थे और इसीलिए फ्रान्स की सहायता के लिए इंग्लैड की फौजें लड़ रही थीं।

शिधू को एक बात बड़ी कठिन लग रही थी। इस एक ही विषय में उसे लग रहा था जैसे उसे बड़ी कड़ी सजा मिली है। आठों पहर चलने वाली उसकी मुँह की तोप बन्द पड़ गई थी। बात करने के लिए ही कोई न था। फिर बोलता किससे ? और जो भी नजदीक थे उनकी भाषा उसे आती न थी। जो असिस्टेंट मिला था वह पंजाबी था। उसे हिन्दी ठीक से नहीं आती थी। वह उर्दू में लिखा करता। उसे अँग्रेजी बहुत कम आती थी—डाकखाने का काम चलाने लायक ! फिर भी वह अपने मातहत संतसिह के साथ अँग्रेजी में बोलने की कोशिश करता। कभी-कभी उसकी अँग्रेजी संतसिह समझ भी जाता। पर कठिन प्रश्न था शिधू को संतसिह की अंग्रेजी समझ में आने का। यह सच था कि संतसिह की अंग्रेजी से शिधू का काफी मनोरंजन हो जाता।

आफीसर लोग कभी-कभी आया करते। उस समय उनसे बातें

करने की शिधू कोशिश करता। पर एक तो अँग्रेज और ऊपर से मिलिटरी वाले ! वे क्यों बात करने लगे ? अगर कोई बात करने वाला मिल ही जाता, तो शिधू उससे लड़ाई की खबरें जानने का प्रयत्न करता, परन्तु उसे कोई उत्तर प्राप्त न होता। लेकिन इससे वह निराश कभी न हुआ और खबरें पूछना उसने कभी बन्द न किया। उसे लगता उत्तर न मिले तो न सही, पर कम-से-कम प्रश्न पूछने के सुख से ही वह क्यों वंचित रहे ?

संतसिंह को नेपाली भाषा आती थी और इसीलिए वह इस स्थान पर नियुक्त किया गया था। वह गुरखों से गप्पें हांकता बैठा रहता। वहाँ से उठकर आने के बाद अपनी टूटी-फूटी अँग्रेजी में लड़ाई के समाचार सुनाने की वह कोशिश करता। उस समय उसकी बातें ठीक से समझ लेने के लिए शिधू को अपना काफी दिमाग लड़ाना पड़ता।

एक दिन उसने बड़ा मजेदार समाचार सुनाया। बोला—"एक गुरखा ने आज जर्मनी के कैसर की मूँछें काट लीं और वह उन्हें अपने साथ ले आया है।" शिधू को इस पर विश्वास न हुआ। जर्मनी का कैसर किसी खन्दक के इतने नजदीक होगा और इतना असावधान होगा कि एक मामूली गोरखा जाकर उसकी मूँछ काट ले, यह उसे सच न लगता था। पर इस समाचार का बड़ा बोलबाला हुआ। यहाँ तक कि अफसरों में भी वह चर्चा का विषय हो गया। पत्रकारों ने यह समाचार हिन्दुस्थान भी पहुँचा दिया था, इसका पता शिधू को बाद में चला।

बात यह थी कि गुरखा किसी जर्मन की मूँछें काटकर ले आया था, इस में शक नहीं। पर वे किसी मृत जर्मन सैनिक की रही होंगी। राजा का अनुकरण करने के लिए जर्मन सिपाही भी मोम मलकर अपनी मूँछों को कैसर की मूँछों की तरह मोड़ लेते थे। उस गुरखा ने कैसर का चित्र कहीं देख लिया था। मूँछों को देखकर उसे लगा कि यह मृत सिपाही ही कैसर है। काट ली उसकी मूँछे और लाकर दे दीं अपने कमानी साहब को। और अफसरों ने भी इस बात को मजाक में न उड़ा-

कर उसे एक प्रकार का महत्व दे दिया ! रणभूमि में ऐसी बातें होती ही रहती हैं !

गुरखे बड़े मजबूत होते हैं। लड़ाई में दुश्मनों का मुस्तैदी से मुकाबला करना कोई इनसे सीखे । परन्तु उस स्थान का जलवायु उन्हें परेशान कर रहा था । कड़ाके की ठंड के कारण कभी-कभी उनकी कुछ न चलती । बेचारे विवश हो जाते । लेकिन वे कभी पीछे न हटे और न उन्होंने कभी कोई शिकायत की ।

इसी तरह कुछ दिन बीते । तोपों और मशीनगनों की आवाजों का शिधू को जो भय लगता था, वह अब धीरे-धीरे कम होने लगा । उसे इतना अभ्यास हो गया था कि उन आवाजों की ओर अब उसका विशेष ध्यान ही न जाता था । यही नहीं बल्कि यदि कभी वे आवाजें बन्द हो जातीं, तो उसे सूना-सूना-सा लगने लगता । जिस रात शान्ति होती तोपों और बंदूकों की आवाजें उसके कानों में न पड़ती, उस रात उसे नींद न आती ।

उसे अपने पर ही आश्चर्य होने लगा । सोचता, ऐसा कैसे हो गया ? फ्रान्स की सरहद पर जब वह उतरा था, उस समय उसका मन उचट गया था । समरभूमि पर कौनसे प्रसंग उपस्थित हो जाएँगे और उन प्रसंगों से कैसे छुटकारा होगा, इस की चिन्ता उस समय उसके मन में जाग्रत हो गई थी । परन्तु प्रत्यक्ष रणभूमि में आने के बाद उसे कोई चिन्ता न होती थी । एक जख्मी सिपाही को स्ट्रेचर पर रखकर लाये जाते हुए उसने जब पहिली बार देखा, उस समय उसकी आँखों के सामने अंधकार छा गया था और उसे लगा था जैसे वह बेहोश होकर गिर पड़ेगा । खून की बहती हुई धार, कटे हुए हाथ-पैर, फूटे हुए सिर, यह सब देखकर पहिले उसके रोंगटे खड़े हो जाते । परन्तु जैसे-जैसे इन बातों को वह नित्य ही देखने लगा, वैसे-वैसे उसका मन पक्का हो गया और उसका हृदय तनिक भी विचलित न होता । वहाँ सब तरह के घायल लाये जाते और रेड-क्रास की गाड़ियों में रखकर अस्पताल रवाना

कर दिये जाते । ऐसे समय घायलों को रेड-क्रास की मोटरों में चढ़ाने आदि के काम में वह अपने आप खुशी से मदद करने लगा । रेड-क्रास के लोग एक पोस्टमास्टर को इस प्रकार उनकी मदद करते देखते तो उसकी बड़ी सराहना करते । जानबूझकर वह गाड़ियों के पास जाता और खुशी से बिना माँगे रेड-क्रास वालों को अपनी सहायता देता । इन कामों को करने में उसका मुख्य उद्देश्य यही था कि खून देखकर उसके रोंगटे खड़े न हों । चाहे उसे स्वयं कही कोई जख्म न हुई हो, पर दूसरों के जख्मों से बहनेवाले खून से यदि उसके हाथ तर हो जाएँ, तो उसे घिन न आनी चाहिए । फर्स्टएड का काम वह अपने आप सीख गया और जब वह फर्स्टएड भी देने लगा, तब तो अफसर लोग भी उसे आदर की दृष्टि से देखने लगे ।

धीरे-धीरे आफीसरों से उसका परिचय होने लगा । एक-दो अफसरों से उसकी मित्रता भी हो गयी । लड़ाई के समाचार जितने जान सकना सम्भव थे, उतने उसे मालूम होने लगे ।

इन समाचारों के मालूम होने की एक सीमा रहती । फील्ड पर रहने वाले लोगों को किन बातों की जानकारी देनी चाहिए और किन की नहीं देनी चाहिए इसकी एक सीमा थी । पत्रकारों द्वारा लड़ाई के जो समाचार सारी दुनिया में भेजे जाते, उन समाचारों का फील्ड पर रहने वालों को पता तक न चलता था । फिर भी इन अफसरों की मित्रता के कारण शिथू को युद्ध की तत्कालीन परिस्थिति की थोड़ी बहुत कल्पना होने लगी । उन अफसरों में से एक अफसर की उससे काफी घनिष्ठता हो गई थी । यद्यपि वह अफसर बिल्कुल युवा न था, फिर भी उसे बूढ़ों में नहीं गिन सकते थे । उसने विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ प्राप्त की थीं । साहित्य का काफी अध्ययन किया था और अपनी मातृभाषा के बराबर ही तीन-चार अन्य यूरोपीय भाषाओं पर भी उसका काफी प्रभुत्व था । तत्कालीन फ्रेंच और अंग्रेजी मासिक पत्रों में उसके द्वारा लिखे लेख अत्यन्त लोकप्रिय हुए थे ।

और इस कारण ही शिशू के साथ उसकी खूब पटी । लडाई के बारे में यद्यपि वे कोई चर्चा न कर सकते, फिर भी साहित्य-चर्चा करने की उन्हें वहाँ कोई मनाही नहीं थी। तत्कालीन साहित्य में जो नई विचार-धाराएँ बहने लगी थीं, उनका प्रथम परिचय इस अफसर ने ही शिशू को कराया था ।

लड़ाई के कार्य-कारण के भाव के बारे में वे दिल खोलकर विस्तार से बातें करते।

उस अफसर को जिसका नाम मांश्यू लैंग्रां था अपने देश के प्रति ज्वलंत अभिमान था । फिर भी इस लडाई के कार्य-कारण भाव के बारे में तत्कालीन राजनैतिक पुरुषों से उसका मतभेद था । यही नहीं, बल्कि युद्ध का विषय ही उसे पसन्द न था । उसका पिता एक प्रख्यात पादरी होने के कारण शान्ति के प्रचार की कल्पना उसके कानों में बचपन से ही पड़ रही थी । इसीलिए उसके मत उसकी मर्जी के खिलाफ बनते गये थे । पेशा था लड़ने का, पर स्वभाव हो गया था शान्तिवादी । ऐसे इस विलक्षण पुरुष से परिचय हो जाने के कारण शिशू को बड़ा आनन्द हुआ । लड़ाकू मनुष्य के मुँह से शान्तिवाद का समर्थन सुनते हुए शिशू को बड़ा अचंभा होता ।

ऐक दिन मांश्यू लैंग्रां ने कहा—"हमारी पलटन ने आज बड़ी मर्दानगी दिखाई । जर्मनों को खूब ही चकमा दिया । जर्मनों की लाशों को पैरों तले रौंदते हुए हमारे सिपाही आगे के खंदक में पहुँचे । मैं उनके साथ था। लड़ने के आवेश में लाशों को पैरों से रौंदता हुआ मैं भी आगे बढ़ा । पर लौटते समय मेरी स्वाभाविक वृत्ति जाग उठी । इन लोगों में से कुछ लोग मेरी गोलियों से भी मरे होंगे । यह विचार मन में आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये । इन मनुष्यों ने मेरा क्या बिगाड़ा था ? उनके किस अपराध के लिए मैंने उन्हें इस तरह मौत की सजा दी ? घास को रौंदने की तरह मानव के शवों को रौंदने की मुझे क्या जरूरत थी ? यह निर्लज्जता मैंने क्यों की ? कौन कह सकता है—युद्ध शुरू होने से पहिले

इन में के कुछ लोगों से मेरी मुलाकात भी हुई होगी—उनके साथ मैंने एक मेज पर बैठकर खाना भी खाया होगा—साहित्य-चर्चा करते हुए कुछ लोगों के साथ मेरे दिन आनन्द में बीते होंगे ! ऐसे लोगों को, जिनसे मेरा व्यक्तिगत कोई वैर न था, आज मैंने क्यों मौत के घाट उतार दिया ?"—मेरे मन ने उत्तर दिया।—"देश के लिए !" इन बेचारों ने मेरे देश का क्या बिगाड़ा था ? जिन लोगों को आज मैंने मार डाला है, उन्होंने मेरे देश की शायद भलाई भी की होगी। मेरे देश में बनी चीजों पर उन्होंने अपनी उपजीविका चलाई होगी। मेरे देश का अन्न खाकर शायद वे जिए भी होंगे। फिर वे मेरे वैरी कैसे हुए ? जिनसे मेरा कोई परिचय नहीं, जिन्हें मैंने कभी देखा तक नहीं, जिन से मेरा रत्ती-भर भी ताल्लुक नहीं, उन लोगों को मैंने अपनी बंदूक का निशाना क्यों बनाया ? क्या बिगाड़ा था उन्होंने मेरा ?"

यह कहते हुए उसके नेत्र सजल हो गये थे। शिधू को आश्चर्य हुआ। यह युद्ध क्यों हो रहा है ? कौन लड़ रहा है ? किस के लिए लड़ रहा है ? किस के विरुद्ध लड़ रहा है ? इस रणभूमि पर आमने-सामने लड़ने के लिए खड़े किए गये ये लोग व्यक्तिगत रूप से एक दूसरे के शत्रु भी न थे—मित्र भी न थे। लेग्रां की तरह शिधू को भी लगा कि फिर एक-दूसरा एक-दूसरे के प्राण क्यों लेता है ? शिधू ने लेग्रां से प्रश्न किया—"यदि ऐसी बात है, तो आप लड़ाई में क्यों आए ?'

माश्यूं लेग्रां बोला—"मैं कहाँ इस लड़ाई में आया ? इस लड़ाई में मैं पड़ूँ, यह मेरी इच्छा कहाँ थीं ? मेरी इच्छा मुझे यहाँ खींचकर नहीं लायी है। नौकरी मुझे यहाँ घसीटकर लायी है। इसे आप चाहे सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य, जिस पेशे को मैंने एक बार अंगीकार कर लिया, उस पेशे के कारण यह कृत्य मेरे हाथों हो रहा है। स्वदेश की रक्षा के लिए मैं यहां आया हूँ। पर मैं आप से पूछना चाहता हूँ कि आप को इस लड़ाई में आने का क्या कारण है ? सात समुद्र पार करके यह भारतीय सेना फ्रान्स-बेलजियम की सरहद पर लड़ रही है, सो किस देश के लिए ?

"किसके देश के लिए ?"

शिघू बड़े अभिमान से बोला—"हम अपनी सरकार के लिए लड़ रहे हैं।"

"याने आप अपने देश के लिए नहीं लड़ रहे हैं ?"—माश्यूं लेग्रां ने आश्चर्य से पूछा।"

शिघू बोला—"हमारी सरकार ही हमारा देश है। हमारी सरकार का जो हित है, वही हमारा भी हित है। हमारी सरकार की जय ही हमारी जय है, ऐसा हम समझते हैं। इसीलिए हमारा हिन्दुस्थान इस लड़ाई में अग्रसर हुआ है। इस में हमारा भी कोई स्वार्थ न हो, यह बात नहीं। थोड़ा-सा स्वार्थ भी है। थोड़ासा ही क्यों, बड़ा भारी स्वार्थ है। संकट के समय हमने अपनी सरकार को सहायता दी है, इसलिए हमें आशा है कि लड़ाई में हमारी सरकार की जीत होने के बाद हमारे देश को राजकीय अधिकारों का एक बहुत बड़ा हिस्सा प्राप्त होगा।"

"क्या आपको विश्वास है कि आप की यह आशा पूरी होगी ?"—माश्यूं लेग्रां ने पूछा।

"हाँ, हमें पूरा विश्वास है।"—शिघू बोला।

माश्यूं लेग्रां सिर्फ हँस दिया।

"आप हँसे क्यों ?"—शिघू ने पूछा।

क्षण-भर सोचने के बाद लेग्रां बोला—"आप भारतवासी बड़े आशावादी हैं। आपकी सारी फिलासफी आशावाद की नींव पर खड़ी है। आपकी फिलासफी ने आपको यही सिखाया है कि निराशा याने मौत! इसीलिए आप ऐसा सोचते हैं। वैसा सोचना भूल है, ऐसा मैं नहीं कहता, पर हम लोगों का स्वभाव बेशक वैसा नहीं है। हम आशावादी होते, तो इस लड़ाई में न पड़ते। हमारी और आपकी फिलासफी में जो अंतर है वह यही है। हम जड़वादी हैं, आप आध्यात्मवादी हैं। जो दृश्य है वह नाशवान है, ऐसा आपको लगता है और जो दृश्य है वही सत्य है, इस धारणा से हम चलते हैं। इसीलिए इच्छा न होते हुये भी हम यहाँ

लाशें बिछा रहे हैं।

इसी समय एक बड़े जोर की आवाज हुई। धरती हिल उठी। बिगुल बजा और माश्यू लेग्रां भागता हुआ वहाँ से चल पड़ा।

शिधू अपने आफिस में गया। वह चला गया, इसीलिए बच गया। वह जहाँ खड़ा था उसी स्थान पर तोप का एक बड़ा भारी गोला आ गिरा था। नजदीक के दो डेरों को उस गोले ने नष्ट कर डाला था।

लड़ाई की यह पहिली झलक शिधू को देखने को मिली।

—नये पाठ

बसरा से अर्जुन का पत्र आया था। उसे लिए यशोदा गोपिका के घर आयी। उस पत्र को देखते ही उस बेचारी के छक्के छूट गये थे। एक तो उस पर टिकट नहीं लगा था। बिना टिकट वाला पत्र बैरंग क्यों नहीं हुआ, यह उसके लिए एक आश्चर्य था। दूसरे, भीतर बहुत जगहों पर छापें लगी थीं। लिखा हुआ मजमून भी यत्र-तत्र काट दिया गया था। यह काट-छाँट देखकर उसके मन में शक हुआ था।

गोपिका घर में नहीं थी। रमा ने यशोदा से जब उसके आगमन का कारण पूछा, तब यशोदा ने वह पत्र उसे थमा दिया और उसे पढ़कर सुनाने को कहा।

यशोदा बोली, "पहिले यह देखो कि यह काट-छाँट क्यों की गई है ?"

जितना मजमून पढ़ा जा सकता था, उतना रमा ने पढ़कर सुना दिया। कौनसा मजमून काटा-छाँटा गया था, यह जानने की उसने भरसक कोशिश की, परन्तु जो मजमून काट दिया था, उसका एक शब्द भी वह न पढ़ सकी।

लड़ाई पर जाने से पहिले शिधू ने रमा को जो बातें बताई थीं उनका उसे स्मरण हो आया। तब वह इस काट-छाँट का अर्थ समझ गई। वह बोली—"लड़ाई पर गया मनुष्य यदि अपने पत्र में कुछ ऐसा मजमून लिख दे जिसका लिखना युद्ध-काल में उचित नहीं माना जाता, तो सरकार द्वारा वह काट दिया जाता है, ऐसा युद्ध का कानून है। इस में चिन्ता की कोई बात नहीं।"

फिर भी यशोदा का समाधान न हुआ। पर यह सोचकर कि पटेलन

पर विश्वास न करूँ, तो फिर किस पर करूँ यद्यपि वह चुप रही, फिर भी उस काट-छाँट के कारण उसके देहाती मन को जैसे घुन-सा लग गया।

यशोदा बोली—"ऐसी कौन सी बातमेरे बेटे ने लिखी होगी जिसे काटने की सरकार को जरूरत पड़ गई। लिखी होगी कोई लड़ाई की बात, अगर लड़ाई की कोई बात लिख ही दी तो क्या हो गया ? कौन मैं गाँव भर में जाकर उसका ढिंढोरा पीटती ? मेरे बेटे की जन्म से ही यह आदत पड़ी है कि कोई भी बात मुझ से बिना कहे वह नहीं रह सकता। जब गाँव में था, तब भी यहाँ की एक-एक बात जब तक मुझ से आकर न कह देता, उसे रात को नींद न आती। इसी तरह वहाँ की भी सब बातें विस्तार से उसने मुझे लिख भेजी होंगी, तो सरकार के बाप का क्या जाता था जो उन्होंने वे काट दीं ?"

"हम-तुम जैसा सोचती है, सरकार वैसा नहीं सोचती।"—रमा बोली—"अजी, ये सरकारी कानून हैं। इनके बारे में हम कोई प्रश्न नहीं पूछ सकते। तुम्हें लड़के का कुशल-समाचार तो मिल गया न ? बस इतनी ही तो तुम्हें चाहिये !"

इसी समय गोपिका भी जा पहुंची। उसे देखकर रमा बोली "यशोदा के लड़के का पत्र आया है। बसरा से भेजा है उसने। उसने माँ से थोड़े पापड़ मंगवाये हैं। हमें भी "उन" के लिए थोड़े पापड़ भेज देने चाहिए। यदि थोड़ा अचार भी भेजा जा सके, तो और भी अच्छा होगा। मेरा ख्याल है एक डिब्बे के भीतर अचार रखकर भेजा जा सकता है। एक डिब्बे के भीतर एक बढ़िया कलईदार बर्तन रख देंगे। कलई की अच्छी मोटी तह उस बर्तन में लगा देंगे जिससे उसमें रखा अचार खराब न होगा।"

गोपिका हँस पड़ी और बोली, "अर्जुन का पत्र आने के बाद तुम्हें शिधू की याद आयी ? मैं कितने दिनों से कह रही हूँ कि उसे कुछ पापड़ भेज देना चाहिए। उस मुए विलायत में कहाँ से आया अचार और कहां से आये पापड़ ? राम जाने, गरम-गरम दाल-भात भी वक्त पर मिलता

होगा या नहीं ? अगर पापड़ भेज भी दें, तो वह उन्हें वहाँ भूँन सकेगा या नहीं ?"

"वैसे वहाँ उन लोगों का पूरा इन्तजाम रहता है।" यशोदा बोली, "हमारे एक रिश्तेदार हैं। वे मेजर सूबेदार थे। अब पेन्शनर हैं। वे कहते थे कि लड़ाई पर सिपाहियों को किसी भी प्रकार की तकलीफ नही होती। फिर शिधू भैया को तो कोई भी कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि उन्हें कोई मैदान में जाकर लड़ना है ? हाँ, अर्जुन की बात जरूर दूसरी है। वह जैसा गया है, वैसा ही लौट आवे, तभी मेरा मन शान्त होगा !"

"ऐसा क्यों कहती हो, यशोदा !"—गोपिका ने कहा—"अर्जुन गया है सिपाही बनकर। पहिले से ही वह पलटन में है। अब लड़ाई के बाद वह मेजर सूबेदार होकर ही लौटेगा।"

"मुझे वह सूबेदारी नहीं चाहिए।"—यशोदा बोली, "वह यहीं खेती करता रहता, तो मुझे अच्छा लगता। जाने किस निगोडे ने यह लड़ाई पैदा की ! परसों मैंने सुना कि कुटरा गाँव से जो दो आदमी लड़ाई पर गये थे दोनों वहाँ मारे गये। कोई कहते हैं सिर्फ घायल हुए हैं और कोई कहते हैं बिल्कुल ही खत्म हो गए हैं। सच झूठ भगवान जाने। पर जब से सुना है, मेरा दिल बैठ गया है। भोजन गले के नीचे नहीं उतरता। नींद का तो नाम ही न लो। वैसे तुम सचमुच बड़ी मजे में हो···।"

"इसीलिए तो निश्चित हूँ।"—गोपिका बोली, "और यशोदा, क्या तुम्हारा यह ख्याल है कि मेरा खाना गले के नीचे उतर जाता है ? इकलौता लड़का इतनी दूर गया है। यहाँ मैं अगर बीमार पड़ गयी, तो तार भेजकर उसे बुला भी नहीं सकूँगी—"

"ऐसी अशुभ बात नहीं कहते, माँजी !"—रमा ने बीच ही में कहा—"एक तो वैसे ही हमारे मन उदास हैं, और ऊपर से यदि कोई अशुभ विचार मन में आवे, तो हमारी हालत बड़ी अजीब-सी हो जाती है।"

"भगवान सब को सुखी रखे और सब सकुशल घर लौट आएँ।"—

यशोदा बोली, "अर्जुन जब से लड़ाई पर गया है, तब से सुभद्रा ने खाना ही छोड़ दिया। निरंतर आँसू बहाती रहती है। कितनी बार मैंने समझाया कि लड़ाई पर जब कोई मनुष्य जाता है, तो उसके लिए आँसू नहीं बहाना चाहिए। परन्तु मानती ही नहीं। पहिले क्वेटा गयी थी उसके साथ। तब बड़ी सुख में थी। जब वहाँ से लौटकर आई थी, तो सजी हुई गुड़िया जैसी लगती थी और अब देखो उसे। पहचान भी न पाओगी। मैं कहती हूँ—कुछ दिन के लिए मायके चली जा, तो सुनती नहीं। सारा काम-काज चुपचाप करती रहती है। पर रोज सूखती जा रही है। सामने थाली परोस कर रखती हूँ, तो घंटों उसकी ओर ताकती ही रहती है। पर कौर उठा कर मुँह में नही डालती। मैं उसकी माँ हूँ। क्या उसके लड़ाई पर जाने का दुख मुझे नहीं है। क्या मैं सारा दुख पीकर नहीं बैठी हूँ? पर उसकी हर बात देखो तो अजीब है! कम-से-कम तुम्हीं आकर उसे एक दिन अच्छी तरह समझा देना, मालकिन !"

गोपिका ने आश्वासन दिया और यशोदा चल दी। पर यशोदा की बातें सुनकर रमा के मर्म पर चोट सी लगी। अर्जुन के लड़ाई पर जाने के कारण उसकी पत्नी सभुद्रा ने खाना छोड़ दिया ? पर मैंने क्या किया ? दोनों में यह अन्तर क्यों ? क्या इसलिए कि वह अछूत की लड़की है ? सच पूछा जाए तो इस परिस्थिति में अछूत की लड़की को कुछ भी दुख नहीं होना चाहिए। मान लो अर्जुन लड़ाई में काम आ गया, तो सभुद्रा के लिए सब रास्ते खुले हैं। वह किसी दूसरे से फिर विवाह कर सकती है। ब्राह्मण कन्या की तरह वह बंधनों में नहीं है। फिर वह क्यों रोती है ?

मैं क्यों नहीं रोती ?

रमा को भी चैन नहीं पड़ता था, यह सच है। पर वह रोती नहीं थी। उसे याद आया—जाते समय शिधू कह गया था कि जब मनुष्य लड़ाई पर जाता है, तो उसके लिए आँसू नहीं बहाना चाहिए। उसे लगा इसीलिए मेरी आँखों में आँसू नहीं आते। मेरी आँखों में आँसू बहने का

अर्थ यह होगा कि मैंने अपने पति की बात नहीं मानी। यह महसूस करके उसका मन पक्का हो गया था।

पर क्या सुभद्रा ने यह महसूस नहीं किया ? फिर वह क्यों रोती है ? उसने सोचा जाकर सुभद्रा से ही पूछना चाहिए ?

उस दिन तीसरे पहर वह खेत पर गयी। वहाँ सुभद्रा से उसकी भेंट हुई। खेत में सुभद्रा काम कर रही थी, पर मिट्टी-सने हाथों से वह बीच-बीच में आँसू पोंछ रही थी। यह देखकर रमा को विश्वास हो गया कि यशोदा की बातों में रंच-मात्र भी अतिशयोक्ति न थी।

सुभद्रा रमा से उम्र में बड़ी थी। पर उसके अभी कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था। नाती देखने के लिए यशोदा बड़ी उत्कंठित थी। अभी तक बहू की गोद नहीं भरी इसका उसे बड़ा दुख होता था।

खेत की मेंड़ पर बैठकर रमा सुभद्रा से बातें करने लगी। बोली—"क्यों सुभद्रा, आँखें क्यों पोंछ रही हो ? क्या कुछ तिनका-विनका चला गया है ?"

सुभद्रा ने गर्दन उठाकर रमा की ओर देखा। खुरपी जमीन पर रखकर वह खड़ी हो गयी। बोली यह तुम मुझसे पूछ रही हो ? मेरा घर वाला लड़ाई पर गया है। उसी तरह तुम्हारा पति भी गया है। मैं ही तुम से पूछती हूँ कि तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों नहीं आते ?"

रमा ने मन ही मन लज्जित हो गई। बोली—"अजी, लड़ाई पर जो जाते हैं उनके लिए आँसू नहीं बहाना चाहिए, ऐसा शास्त्रों में लिखा है।

"आग लगाओ अपने उन शास्त्रों को !"—सुभद्रा बोली, "तुम्हारा बाना सिपाही का नहीं, इसलिए तुम ऐसा कहती हो। सिपाही का बाना निभाना कितना कठिन होता है, इसकी तुम्हें कल्पना ही कैसे हो सकती है ? लड़ाई पर जाने वाला मनुष्य अगर लौट आवे तो अपना, नहीं तो भगवान का आदमी भगवान के घर चल देता है ! लड़ाई पर जो आदमी जाते हैं वे भगवान के प्यारे होते हैं। वे अपने मनुष्यों की ओर नहीं

देखते, भगवान की ओर देखा करते हैं। भगवान कब उन्हें उठा ले जाएगा, इसका कोई ठिकाना नहीं ! उन आदमियों को अपने मनुष्यों की परवाह नहीं होती। इसीलिए तो मेरी आँखों से ये आँसू आते है। क्या बात है, मैं नहीं कह सकती, पर मुझे लगता है कि अब मेरी उन से भेंट नहीं होगी। ऐसे बुरे सपने देखती हूँ कि क्या बताऊँ ? नींद नही आती।"

"और मैं क्या सुख और संतोष अनुभव कर रही हूँ ?"—रमा बोली, "यह सच है कि लड़ाई के मैदान में उन्हे नहीं लड़ना है। पर नौकरी तो लड़ाई के मैदान पर ही कर रहे हैं न ? वहाँ भी कब क्या हो जाए, यह कौन कह सकता है ? इसलिए कहती हूँ कि रोना नहीं चाहिए। तुमने लड़ाई पर जाने वाले आदमियों को भगवान के प्यारे कहा। यह झूठ नहीं है। भगवान के प्रिय आदमियों के लिए यदि हम आँसू बहाएँ, तो भगवान हम पर नाराज हो जाएँगे। वे सोचेंगे कि आँसू बहाने वाले का मुझ पर कोई विश्वास नहीं और इसके फल-स्वरूप कुछ भला-बुरा भी हो जाए। इसीलिए कहती हूँ कि आँसू मत बहाओ। अपनी सास को देखो। अर्जुन उनके पेट से ही पैदा हुआ है न ? क्या माँ को अपने बेटे की कोई चिन्ता नहीं होती, ऐसा तुम सोचती हो ? क्या तुम्हारा यह ख्याल है कि उनका हृदय व्याकुल नहीं हो रहा है ? क्या वे तुम जैसी रोती है ? क्या उन्होंने अपना जी कड़ा नही कर लिया है ?"

"यहीं तो मैं नही समझ पाती।"—सुभद्रा बोली "मैं सास जी को हमेशा खुश-दिल देखती हूँ और मुझे बार-बार यही आश्चर्य होता है कि मां होकर उन्हें लड़ाई पर गये अपने बेटे की कोई चिन्ता कैसे नहीं है ?"

"नहीं सुभद्रा, तुम्हारा ख्याल गलत है। तुम्हारी सास को तुमसे भी अधिक दुख है। आज अर्जुन का बसरा से पत्र आया है। उसमें सरकार ने बहुत सा मजमून काट दिया है। यह देखकर तुम्हारी सास बहुत घबरा गई थी। उनके प्राण आँखों में आ गए थे। पर उनकी आँखों से एक आँसू की बूँदें भी नहीं टपकीं। मैंने जब उनसे उस काँट-छाट का कारण कहा तब कहीं उन्हें संतोष हुआ और एक तुम ही हो जो दिन भर आँसू

बहाती हो। कैसी पगली हो तुम !"

रमा की बातें सुनते समय सुभद्रा झुकी हुई काम कर रही थी। वह सीधी खड़ी हो गयी और बोली—"क्या सच आँसू नहीं बहाना चाहिए? पर मेरे आँसू तो बरबस निकल पड़ते हैं इसके लिए क्या करूँ ? मन जो बौखला गया है। लगता है पंख लगाकर उड़ जाऊँ ! पर जाऊँ कहाँ यह नहीं जानती और पंख भी लगाते नहीं बनते।"

इन दुख भरी बातों के बीच भी रमा हँस पड़ी और बोली, "सुभद्रा, आज से कभी आँसू न बहाने का निश्चय कर लो। जो हालत तुम्हारी है वही मेरी भी है। है न ? मुझे देखो। क्या मेरी आँखें रो-रोकर तुम्हारी तरह फूली हैं ? तुम रोती हो, तो तुम्हारी सासजी का कलेजा मुँह को आ जाता है। उनके हृदय में कितनी चुभन होती है, इनकी कोई कल्पना भी है तुम्हे ? एक तो बेचारी पहिले से ही दुख में है और जब तुम्हें भी रोती देखती है तो उनका दुख और भी अधिक बढ़ जाता है। वे किसे देखकर धीरज रखें ? वे तुम्हें समझाएँ या अपने मन को रोककर रखें ?"

सुभद्रा बीच ही में बोल उठी—"तुम अखबार पढ़ती हो न उसमें बसरा का कोई हाल आया है क्या ?"

"हाँ आया है।" रमा बड़ा रोब लाकर बोली—"बसरा में हमारी सेना जीतती हुई धड़ाके से आगे बढ़ रही है। केसरी में लिखा है कि हमारी सेना को जय के बाद जय प्राप्त हो रही है। हमारे सिपाहियों ने शत्रुओं को धूल में मिला दिया है।"

"सच ?"—सुभद्रा हर्षविभोर होकर बोली—"फिर कल वे कौन लोग आये थे जो कह रहे थे कि कुटला के दो आदमियों ने वीरगति पाई। वे क्या झूठ बोले ?"

"झूठ नहीं तो क्या ?" रमा बोली—"यहाँ जो लोग रह गये हैं, वे उन लोगों से जलते हैं जो हिम्मत करके लड़ाई पर चले गये हैं। यहीं अगर किसी की तनख्वाह बढ़ जाती है तो दूसरे उस पर जलने लगते हैं। यह तो गाँववालों की आदत ही है। जो लड़ाई पर गये हैं उन्हें

तनख्वाह भी अच्छी मिल रही है और लड़ाई भी जीत रहे हैं। फिर उन पर यहाँ वाले क्यों नहीं जलेंगे ? तुम किसी से कोई बात सुना ही मत करो और न उस पर विश्वास किया करो अगर तुम्हें कोई आकर लड़ाई की कोई बात बताये तो वह सच है या झूठ. यह आकर मुझ से पूछ लिया करो। मैं नियम से केसरी पढ़ती हूँ। उसमें लडाई की हर खबर आती है। तुम्हें पढ़कर ही सुना दिया करूँगी, तब तो तुम्हें संतोष हो जायेगा न ?"

"हाँ !" सुभद्रा बोली—"यह तुमने ठीक कहा। अगर लड़ाई की थोड़ी भी खबरें मालूम होती रहें, तो मन उतना ही शान्त रहता है। पर क्या "उनका" नाम लिखा आता है अखबार में ?"

"कैसी पगली हो तुम, सुभद्रा !" रमा बोली—"लाखों आदमी लड़ाई पर गये हैं। अखबार में कितनों के नाम लिखेंगे ? अब दो-चार महीने में ही लड़ाई बन्द होती है और फिर सभी अपने-अपने घर लौट आयेंगे। उनसे हमें लड़ाई की एक-एक बात मालूम हो जायेगी। तब तक मन को संतोष देने के लिए अखबार पढ़ लेना चाहिए।"

सुभद्रा का समाधान हो गया। उस दिन से उसने नियम बना लिया। दिन म जब भी थोड़ा अवकाश मिलता, वह रमा के घर जाती और उससे अखबार पढ़वाती और खबरें सुनती।

रोज समाचार सिर्फ सुनकर ही उसका समाधान न होता। उसे लगता यदि मैं भी पढ़ सकती तो कितना अच्छा होता ! उसने रमा से कहा और लिखना-पढ़ना सीखना आरम्भ कर दिया। रमा ही उसकी शिक्षिका बनी। दोनों को एक-दूसरे का अच्छा साथ रहता और दिन का कम से कम थोड़ा समय तो आनन्द में कट जाता।

हर सप्ताह शिब्बू और अर्जुन के पत्र आते। यदि किसी सप्ताह पत्र न आता तो दोनों के घरों में घबराहट की हवा बहने लगती। कोई बोलता नहीं था—रोता नहीं था। पर घर पर बेचैनी की छाया छायी रहती। पत्र प्राप्त होते ही पुनः सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण छा

जाता।

पत्रों में सिवा कुशल-समाचार के और कोई हाल नहीं लिखा रहता। इस कारण उन पत्रों से जितना होना चाहिए उतना समाधान किसी को भी न होता। अर्जुन के जो पत्र आते उनके मजमून बहुत जगह कटे रहते। अर्जुन के पत्र टूटी-फूटी मराठी में लिखे आते, पर उनके मजमूनों की काट-छाँट देखकर रमा को भी बेचैनी महसूस होती। कभी-कभी अर्जुन के पत्र का आधे से भी अधिक मजमून काटा जाता था। और काट-छाँट भी इस सफाई से की जाती कि कटे हुए मजमून का एक अक्षर भी पढ़ सकना असम्भव होता। बाद में यशोदा और सुभद्रा को इस काट-छाँट का इतना अभ्यास हो गया था कि पत्र के प्राप्त होते ही वे पहिले ही समझ जातीं कि अन्दर बहुत-सा मजमून कटा हुआ होगा। उन्होंने इसके लिए अपने मन को तैयार कर लिया था। पर रमा के मन में इस काट-छाँट के प्रति जिज्ञासा जाग उठती। अर्जुन ऐसी कौन-सी बातें लिख देता है जो काट दी जाती हैं, यह जानने की तीव्र जिज्ञासा उसे बेचैन कर देती।

उसी तरह उसे इसका भी बुरा लगता कि उसका पति अपने पत्र में लड़ाई का कभी कोई हाल लिखकर नहीं भेजता। अखबार में लड़ाई की खबरें पढ़कर उसके मन का समाधान हो जाता, इसमें शक नहीं।

फिर भी अपना पति वहाँ की खबरें पत्रों में क्यों नहीं लिखता, इसके कारण उसके मन को जलन होती।

अखबार की खबरों से लडाई की कोई कल्पना ही नहीं होती थी। गाँव में समझदार माने जानेवाले जो लोग थे, वे अपने-अपने ढंग से लडाई की चर्चा करते। कोई कहता दो-चार महीने में ही यह लड़ाई बन्द हो जाएगी। अखबार की खबरों को देखकर कुछ लोग कहते कि यह लड़ाई अभी कितने साल और चलेगी यह कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकता। अखबार की खबरों पर अब बहुत-से लोग विश्वास न करते। गप्पें ऐसी विचित्र रूप से उड़ा करतीं कि अखबार में भेजे जाने-

वाले समाचार सब बनावटी होते हैं, ऐसी भी लोगों की एक धारणा हो चली है।

इस तरह परस्पर विरोधी बातें जब रमा के कानों में पड़तीं, तब वह अत्यन्त अस्वस्थ हो उठती।

हर हफ्ते वह पत्र भेजती। उन पत्र में यहाँ के समाचार विस्तारपूर्वक लिखा करती। परन्तु अर्जुन के पत्र की काट-छाँट देखकर उसे लगता कि मेरे द्वारा लिखा गया पूरा मजमून मेरे पति को पढ़ने को मिलेगा या नहीं। उससे आनेवाले पत्रों में उसके मजमून के बारे में कुछ भी जिक्र न रहता। पूछे गये प्रश्नों के उतर भी न होते।

और वह बेचारी ऐसे प्रश्न भी आखिर क्या पूछती? लड़ाई कब खत्म होगी? आप लौटकर कब आ रहे हैं?—इन्हें छोड़कर और दूसरे कौन-से प्रश्न हो सकते थे? परन्तु इन प्रश्नों के भी उत्तर शिधू के पत्र में न होने के कारण रमा के हृदय को धक्का लगता। वह सोचती—प्रत्यक्ष लड़ाई पर उपस्थित रहने वाले मनुष्य को यह कैसे नहीं मालूम हो सकता कि लड़ाई कब खत्म होगी? उन्हें मेरे इन प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं देना चाहिए?

बेचारी रमा यह नहीं जानती थी कि लड़ाई की जितनी खबरें अखबार से उसे मालूम होती थीं, उनका सौवाँ हिस्सा भी शिधू को मालूम न होता था। प्रत्यक्ष रणभूमि पर होते हुए भी वहाँ से कुछ अन्तर पर नजदीक ही घटने वाली घटनाएँ भी उसे अज्ञात रहतीं।

एक-दूसरे के मन एक-दूसरे को बुला रहे थे। कौन कह सकता है, शायद पुकार का उत्तर भी देते हों। परन्तु वह उत्तर उनके कानों में सुनाई नहीं पड़ता था—हृदय को महसूस होता था—और इसीलिए दोनों एक-दूसरे की याद करते हुए आनन्द से दिन काट रहे थे।

परिवर्तन

उस दिन पीछे हटने का हुक्म आया। जिस छावनी में फील्ड आफिस था वह कुछ मील पीछे ले जायी गयी। उसी अंदाज से बेस आफिस भी पीछे हटा दिया गया था।

उस हुक्म के कारण शिधू का मन अत्यन्त अस्वस्थ हो गया। उसके लड़ाई पर आने के बाद से यह पहली "रिट्रीट" या पीछे- हटाई थी। उसने सोचा शायद कहीं पर हमारा पराभव हुआ है। जब माश्यूँ लेग्रां से उसकी भेंट हुई तब उसे पता चला कि वह पराभव न था, बल्कि बड़ी चालाकी से हमारी सेना पीछे हट गयी थी। इसी प्रकार कभी--कभी पीछे जाना युद्ध की एक चाल होती है। इस चाल से शत्रु को चकमा दिया जाता है। शत्रु जब विजयानन्द से उन्मत्त हो जाता है, तब एक-दम उस पर उलट कर आक्रमण करते है और उसे धूल में मिला देते हैं।

माश्यूं लेग्रां का यह सब वर्णन सुनकर शिधू को समाधान न हुआ। लेग्रां की बात में कहीं-न-कहीं कुछ अनिश्चितता है ऐसा उसे लगा। इस का कोई कारण न था। शायद अपने मन का प्रतिबिम्ब ही वह उसकी बातों में देख रहा था। उस संदेह को दूर करने के लिए शिधू ने लेग्रां से पूछा, "क्या हमारी सेना सचमुच चालाकी से पीछे हटी है या कि सिर्फ पीछे हटी है ?"

"तुम्हें यह शक क्यों हुआ ?"—लेग्राँ ने पूछा।

"मुझ जैसे सिविल मनुष्य को यह समझना कि पीछे हटना लड़ाई में मर्दानगी होती है, असम्भव है। पीछे हटने में जैसा कि आपने अभी कहा, हो सकता है कि कोई चाल हो, पर जाने क्यों मेरा मन यूँ ही

क्षोभित हो गया है। इसलिए मैं पूछता हूँ।"

"शंकायें सभी को आती हैं।" लोगों ने कहा—"पर लड़ाई के सूत्र जिन के हाथों में होते हैं, वे सर्वज्ञ हैं। उनका हुक्म हुआ कि उसे मानना पड़ता है। यह फौजी अनुशासन है। हुक्म के खिलाफ थोड़ा भी शक प्रकट करना अथवा उस पर कोई चर्चा करना लड़ाई के मैदान में सबसे बड़ा गुनाह है। सिपाहियों को अपना दिमाग नहीं चलाना पड़ता, सिर्फ काम करके दिखाना पड़ता है।"

माश्यूँ लेग्रां के इस उत्तर से शिधू का बहुत कुछ समाधान हो गया। छावनी हटाने की बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। बात की-बात में सब कूच करने लगे और दूसरे स्थान पर जाकर इतनी फुर्ती और चपलता से डेरे लगाकर रहने लगे कि किसी के ध्यान में भी न आया कि जगह बदली गई है। हर व्यक्ति की तत्परता, चपलता और कार्यक्षमता इतनी विलक्षण थी कि उसके कारण ऐसा लगता था जैसे सब काम मशीन से ही हो रहा है।

इस नयी छावनी में शिधू को नये असिस्टेन्ट के रूप में जो व्यक्ति मिला था उसके आते ही शिधू अस्वस्थ हो गया।

उसके इस नये आफिस में एक तार-प्रेषक यंत्र रख दिया गया था और उस काम को करने के लिए एक फ्रेंच युवती नियत की गई थी। आफिस में एक लड़की का काम करना शिधू को दुःसह हुआ। लड़की और तारबाबू! लड़कियों का जन्म क्या बाबूगिरी करने को हुआ है? अस्पतालों में लड़कियाँ नर्स की हैसियत से काम करती थीं, यह उसने देखा था। पर वह देखकर इस विषय में उसे कोई बेचैनी महसूस नहीं हुई थी, क्योंकि नर्स का काम स्त्रियों का ही काम है। नर्स शब्द ही मूल में स्त्री-वाचक है।

पर तारबाबू—लड़की? उसके मन को यह जँचता न था।

उस लड़की को थोड़ी-बहुत अँग्रेजी आती थी। उच्चारण में थोड़ा फर्क था। फिर भी हमारे यहाँ की अँग्रेजी चौथी या पाँचवी कक्षा के

लड़के जिस प्रकार की अँग्रेजी बोलते हैं, उस प्रकार की वह अंग्रेजी थी। उतनी अंग्रेजी से शिधू को उसकी बात समझने में कठिनाई नहीं होती थी।

उस लड़की का नाम मादेलीन था। वह यद्यपि तार का काम करने के लिए नियुक्त थी, फिर भी डाक का भी बहुत-सा काम, याने फ्रेंच में लिखे पत्रों और पार्सलों पर के पते पढ़ना आदि काम भी उसे ही करने पड़ते थे। यही नहीं, बल्कि इस काम को ध्यान में रखकर ही उसकी नियुक्ति की गई थी।

फ्रान्स में पहिला कदम रखते ही शिधू को 'स्वागत और सत्कार' का जो अनुभव हुआ था, उसकी याद उस लड़की को देखते ही उसके मन में फिर हरी हो रही थी। कहीं यह लड़की भी तो वैसा ही कुछ न कर बैठे, इस भय से उसके छक्के छूटने लगे।

पर अब स्वागत का प्रश्न न था। वह वहाँ नौकरी करने आयी थी। काम करने की उसकी तत्परता देखकर शिधू के मन से धीरे-धीरे यह भावना भी विलुप्त हो गयी कि कोई लड़की उसके नजदीक बैठी काम कर रही है।

मादेलीन की सिर्फ एक बात पर ही शिधू को बड़ा आश्चर्य होता था वह सिगरेट पीती थी। उस जमाने में यूरोप की स्त्रियाँ सिगरेट नहीं पीती थीं। स्त्रियाँ सिगरेट पियें, फिर वे स्त्रियाँ विदेश की ही क्यों न हों, यह विचार ही शिधू को असह्य हो जाता।

हिन्दुस्थान में उसने अंग्रेज अफसरों की स्त्रियों को देखा था। पर उस ने उन्हें सिगरेट पीते कभी न देखा था और इसीलिए मादेलीन को सिगरेट पीते देखकर उसके रोंगटे खड़े हो जाते।

हिन्दुस्थान में वह बीड़ी पीने का आदी था। परन्तु लड़ाई पर आने के बाद से बीड़ियाँ प्राप्त न होने के कारण वह सिगरेट पीने लगा था। सिगरेट से उसकी तलब पूरी न होती- पर करता क्या ? सिगरेट पीने के सिवा उसे कोई चारा ही न था।

एक लड़की मेरे आफिस में काम करती है उसका उचित सम्मान करना चाहिए, यह सोचकर वह उस लड़की के सामने सिगरेट न पीता। परन्तु जिस समय वह लड़की ही उसे सिगरेट देने लगी, उस समय तो वह दंग ही रह गया। सिगरेट स्वीकार करूँ या नहीं, यह प्रश्न उसके सामने खड़ा हो गया। उस लड़की ने उसे सिगरेट पीते देखा था। इसलिए वह उससे यह भी नहीं कह सकता था कि वह सिगरेट नहीं पीता।

उसके द्वारा दी गई सिगरेट शिधू ने ले ली और जब बड़ी नजाकत से मुस्कराते हुए अपने गोरे हाथों से उस लड़की ने दियासलाई जलाकर उसकी सिगरेट जलाई, उस समय शिधू का हृदय टूट गया।

उसे लगने लगा कि वह बड़ा अपराध कर रहा है। स्त्रियों को सम्मान देने की तत्कालीन हिन्दू कल्पना की ज्योति उसके हृदय में जल रही थी। वह अभी तक मानता था कि स्त्रियों के सामने बीड़ी या सिगरेट पीना महान असभ्यता है। परन्तु जब स्त्रियाँ ही सिगरेट पीने लगीं, तो उनके सामने सिगरेट पीने में क्या अपराध है? ऐसा सोचकर, उसने उस प्रसंग के आगे अपना सिर झुका दिया।

वह मादेलीन से कभी-कभी युद्ध के बारे में बातें करता। बात आरम्भ करने में उसे संकोच होता, पर वह निःसंकोच उसके प्रश्नों का उत्तर देती। उस समय उसे यह आश्चर्य होता कि उसे इतना संकोच क्यों मालूम होता है और उस लड़की के मन में यह भावना क्यों नहीं आती।

युद्ध की परिस्थिति के विषय में मादेलीन को ठीक से कोई कल्पना न थी। वह हाल ही में लड़ाई पर आई थी। इसलिए समाचार पत्र पढ़कर, उसने तत्कालीन परिस्थिति की, लड़ाई के मैदान के बाहर रहते समय जो धारणा बना ली थी, उसी धारणा के अनुसार वह चर्चा किया करती। माश्यू लेग्रां और मादेलीन की बातों में तुलना करने पर जो अन्तर दिखाई देता वह यह था कि माश्यू लेग्रां कुछ छिपाता हुआ बातें करता, हर शब्द को बड़ा सोच-समझकर बोलता, पर बातों में सावधानी बरतने की आदत मादेलीन में न थी। वह कोई बात न छिपाती

उसके मन में जो आता वह अपनी अधूरी अँग्रेजी में साफ-साफ कह डालती। उसकी इन बातों पर शिधू को बड़ा आश्चर्य होता। उससे बातें करते समय शिधू को यह कभी दिखायी न दिया कि स्त्री और पुरुष के भेद की कल्पना उस लड़की के हृदय में कहीं वास करती हो।

वह एक कुलीन परिवार की लड़की थी। अच्छी पढ़ी-लिखी थी। फ्रेंच साहित्य का उसने गहरा अध्ययन किया था। उसी के कारण शिधू का "ज़ोला" से प्रथम परिचय हुआ। इससे पहले जोला के ग्रंथों को उसने नहीं पढ़ा था। जोला के ग्रंथों के अँग्रेजी अनुवाद उस लड़की ने ही उसे कहीं से प्राप्त करा दिये और उसी ने उससे पढ़वा लिये। उन ग्रंथों के परिशीलन से शिधू को फ्रेंच लोगों के मन की काफी कल्पना हो गयी और मादेलीन के प्रति उसे जो संकोच लगता था, वह अब न लगता।

लड़ाई पर आने के बाद से शिधू को जो एकाकीपन महसूस हो रहा था, मादेलीन के आ जाने से वह विलुप्त होने लगा। पारिवारिकता की चाह हिन्दुस्थानियों के हृदय में इतनी गहराई तक घुसी हुई होती है कि उसके कारण बिना परिवार के रहना हिन्दुस्थानी मनुष्य को—विशेषतः महाराष्ट्रियन को असम्भव-सा हो जाता है। पारिवारिकता की विशेष प्रकार की भावना वर्तमान परिस्थिति में यद्यपि पूरी नहीं होती थी, फिर भी लड़ाई के रूखे मैदान पर स्त्री-जाति की कोमल आवाज सुनाई पड़ने के कारण उस भावना की एक बड़े अंश में भरपाई हो गयी है, ऐसा उसे लगा।

मादेलीन के साथ रहने के कारण शिधू की मनोवृत्ति में परिवर्तन होने लगा था। पाश्चात्य आचार-विचारों के प्रति उसके मन में पहिले जो घृणा थी, वह क्रमशः कम होने लगी। कभी-कभी वह अपने मन में अपने ही बारे में कल्पना करके देखता और उस समय उसे अपने आप पर हँसी आ जाती।

वह सोचने लगा—यदि मेरी पत्नी रमा मेरी मातहती में यहीं तार-

बाबू का काम करती मुझे दिखाई दे तो मुझे कैसे लगेगा ? मादेलीन की तरह वह भी सिगरेट पिये तो कैसा लगेगा ? जिस समय वह ऐसे कल्पना-चित्र अपने अन्तःचक्षु के सामने खड़े करने लगता, उस समय आनन्द होने के बदले विनोद की अनुभूति ही उसके मन में अधिक जाग्रत होती ।

उसे लगा, मादेलीन को जो बातें शोभा देती हैं, वे हिन्दुस्थान की किसी भी "रमा" को शोभा नहीं देंगी । मादेलीन एक लड़की थी । फिर भी राजनीति पर बातें करने की उसमें काफी क्षमता थी—शक्ति थी । रमा पढ़ी-लिखी थी—याने लिख-पढ़ सकती थी । रोज बिना नागा अखबार पढ़ती थी । फिर भी अगर शिबू राजनीति पर उससे चर्चा करता, तो वह लजाकर कह देती—हम औरतों का इन बातों से क्या सम्बन्ध ? इन दो मनों का यह अन्तर ध्यान में रखकर, तुलना करते समय वह यह निश्चित न कर सका कि मादेलीन और रमा में, अच्छी किसे कहा जाए और बुरी किसे कहा जाए ? इस देश के रीति-रिवाज इस देश के लिए उचित हैं और हमारे रीति-रिवाज हमारे लिए ठीक हैं। ऐसा सोचकर जब वह अपने मन का समाधान करने लगता, तब उसके मन का स्वास्थ्य बिगड़ जाता । पाश्चात्य देशों की नारियों को जो बातें शोभा देती हैं, वे भारतीय नारियों को क्यों शोभा नहीं देतीं ? भारतीय नारियों की भावनाओं को सब पहलुओं से सार्वजनिक बनाने के किसी ने कोई प्रयत्न क्यों नहीं किये, इस पर उसे आश्चर्य होता । क्या यह स्वतन्त्रता के अभाव का लक्षण है ? क्या राजनीति और क्या धर्म, सभी विषयों में पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ जिस तरह संपूर्ण रूप से भाग लेती हैं उसी तरह हमारी भारतीय स्त्रियों को भी क्यों नहीं लेना चाहिए ? अगर यह लड़ाई हिन्दुस्तान में होती, तो मोरचों पर चाहे जैसा खतरे का काम करने के लिए, इस देश की नारियों की तरह, क्या भारत की नारियाँ भी आगे बढ़तीं ?

उसके विचारशील मन ने उत्तर दिया—"नहीं ।"

वह सोचने लगता—क्यों नहीं ? हमारी नारियों को लड़ाई के मोरचों पर क्यों नहीं जाना चाहिए, तोपों की आवाजों को क्यों नहीं सुनना चाहिए, मशीनगनों की दनदनाहट से उनके कान के परदे क्यों नहीं फटने चाहिए, खून से लथपथ जख्मियों की सेवा-सुश्रुषा करते हुए, विपुलता से बहनेवाले लाल रक्त में, हमारी भारतीय नारियों के हाथ क्यों न सनने चाहिए ? जरा-सी अँगुली कटकर खून आ जाए, तो उसे देखकर, हमारी भारतीय नारियों को गश आ जाता है !

जब उसने यह बात मादेलीन से पूछी, उस समय वह बोली—"मुझे भी रक्त देखकर गश आता, पर इसलिए नहीं कि मैं नारी हूँ। मैं दयावान हूँ, इसलिए रक्त देखकर, मेरा हृदय हिल जाता। लेकिन वही रक्त जब मैं मोरचे पर बहता हुआ देखती हूँ, तब गश आने के बदले मुझ में वीरता का आवेश भर जाता है और उस आवेश के उन्माद में ऐसा लगने लगता है, हाथ में बन्दूक लेकर, मैं भी खंदक में जाऊँ और अपने देश के वीरों की तरह देश के शत्रुओं से लड़ूँ। जैसा मैं सोचती हूँ, उसी तरह हमारे देश की हर लड़की सोचती है। आज हमें मोरचों पर बंदूक लेकर नहीं जाने दिया जाता। पर एक वक्त ऐसा आएगा जब लड़ने के लिए, देश की नारियों का जाना आवश्यक हो जाएगा। यह लड़ाई उस भावी काल की ही नींव है, ऐसा मैं सोचती हूँ।

मादेलीन के ये स्फूर्तिदायक उद्गार सुनकर, शिब्बू को अपनी परिस्थिति पर मन-ही मन शर्म आई। उसका मन कहने लगा—स्त्रियाँ तो दूर रहीं पर हमारे हिन्दुस्थान में कितने पुरुष लड़ाई में मरने को तैयार रहते हैं ? जो इस लड़ाई में आए हैं वे नौकर थे इसलिए आए—या जबरदस्ती भरती करके लाए गए। मेरी तरह स्वेच्छा से आए हुए भी दो-चार लोग होंगे। पर मैं भी तो मन में एक इच्छा लिये लाया हूँ—कीर्ति की इच्छा। मेरी आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण कुछ कमा ले जाने के लिए आया हूँ।

मादेलीन की संगति का उसके मन पर विलक्षण प्रभाव पड़ने लगा।

उसके मन पर उसकी संगति का असर होने लगा। पर उस असर में शृंगारिकता न थी—कामुकता भी न थी।

रमा के सहवास में उसे जो आनन्द हुआ करता, उस आनन्द की अपेक्षा इस आनन्द की अनुभूति बिलकुल भिन्न प्रकार की थी। यदि उसके कोई बहिन होती और वह मादेलीन की तरह ही सुशिक्षिता होती, फिर भी मादेलीन की संगति में उसे जो नशा चढ़ता, वह उस बहिन की संगति में न चढ़ता, ऐसा उसे लगा। हृदयों की भावनाओं में यह भावना एक प्रकार से अपूर्व थी। उस भावना के मूल मे देश के प्रति आत्यंतिक आत्मीयता थी। स्वदेश के लिए अपना खून बहाने की मादेलीन की अत्यन्त उत्कंठा देखकर, शिधू को भारतीय मनोवृत्ति पर शर्म आने लगी। फ्रान्स बड़ी विकट परिस्थिति में था। जर्मनी के केसर ने गरुड़ का झंडा पैरिस पर फहराने की प्रतिज्ञा की थी। फ्रान्स का सर्वनाश हो जाने वाला था—यूरोप के पहिले प्रजातन्त्र राज्य का जर्मनी मालिक हो जाने वाला था। इसलिए प्रत्येक फ्रान्सवासी के हृदय में ऐंठन पड़ रही थी।

बेलजियम का सवनाश उनकी नजरों के सामने था। फ्रान्स की भी वही दशा न हो, इसलिए प्रत्येक फ्रान्सवासी बच्चा-बच्चा भी अपने खून की अनेक बूंद रणभूमि में अर्पण करने के लिए तैयार हो गया था। यह देखकर शिधू को लगा कि स्वदेश के प्रति प्रेम की ऐसी भावना अपने हिन्दुस्थान में कहीं भी दिखाई नहीं देती।

यह पाठ उसके लिए नया था। समाचार-पत्रों तथा युद्ध के अनेक ग्रंथों को पढ़कर उसे यह अनुभूति प्राप्त नहीं हुई थी। रणभूमि में जो लाशें पड़ी सड़ रही थीं उनके ढेरों में भी स्वदेश-प्रेम के पावित्र्य की जो प्रखर ज्योति जलती रहती है, उसकी चमक वह प्रत्यक्ष अपनी अंधी हुई हिन्दुस्थानी आँखों से देख रहा था।

उस मोर्चे का जलवायु भारतीय सेना के लिए अनुकूल न था।

चर्चा हुई और भारतीय सेना को वापिस भेज देने का हुक्म आया।

पलटनें किसी दूसरे मोरचे पर जा रही थीं या कि हिन्दुस्थान लौट रही थीं, यह बात बिल्कुल गुप्त रखी गई थी। आगे कौनसा हुक्म आता है, इसका किसी को भी कोई पता न था। गुरखे जिस उत्साह से इस रणभूमि पर आए थे उनका वह उत्साह इस समाचार के पाते ही ठंडा पड़ने लगा। वे निराश हो गये, हम खूब बुद्धू बनाए गए, यही उन्हें लगा।

पर इसका कोई उपाय नहीं था। फौजी हुक्म इतने बड़े होते हैं कि उन के बारे में बात भी नहीं की जा सकती।

कूच की तैयारी हुई। शिधू ने मारयूं लेग्रां से विदा ली। उस फ्रान्सीसी सैनिक को भी शिधू को बिदा देते समय दुख हुआ। एक दूसरे की संगति में उन्होंने आनन्द के कुछ क्षण बिताये थे। लेग्रां की आँखें छलछला आयीं। उसने शिधू को कसमसाकर अपने हृदय से लगा लिया।

शिधू को रोमांच हो आया। गोरे लोगों के बारे में उसकी जो धारणाएँ पहिली थीं, वे अब सब जाती रहीं। चमड़े का रंग कुछ भी हो, लड़ाई के मैदान पर वर्ण-भेद स्नेह के आड़े नहीं आता, यह वहाँ दिखाई दिया।

मादेलीन से विदा लेते समय अलबत्ता वह अस्वस्थ हो गया। उसके द्वारा दी गई पुस्तकें उसने सुरक्षित रखी थीं। जब वह रवाना हो रहा था, तब अपने गले का लाकेट निकालकर मादेलीन ने उसे दिया। वह एक छोटा-सा उपहार था।

फ्रान्स की रणभूमि का वह असाधारण स्मृति-चिह्न प्राप्त होने से उसे बड़ा अभिमान हुआ। मोटर में चढ़ने से पहिले जिस समय उसने मादेलीन से हाथ मिलाया, उस समय उसके सारे शरीर में एक मीठी सिहरन दौड़ गयी। कुछ देर हाथ में हाथ डाले वह निश्चल खड़ा था।

एकदम मादेलीन ने उसे अपने बाहुपाश में भर लिया और अपने कोमल ओंठ उसके ओठों पर धर दिये।

फिर से वही अनुभव—नहीं, उसी अनुभव का कितना अधिक

गुना। पहिले का "स्वागत" अपरिचितों का था। इस स्वागत में परिचय था, स्नेह था, सहवास की सुखद स्मृतियाँ थीं।

झट-से उसने गर्दन घुमाई। फिर जाने उसने क्या सोचा, उसने वही "स्वागत" उसे वापिस लौटा दिया।

गर्दन घुमाकर वह जाने लगा। उस समय माद्लेलीन के हृदय से निकली हुई एक मन्द सिसकी उसे सुनाई दी।

कहाँ का यह पूर्व-सम्बन्ध ? कहाँ का यह रिश्ता ? मानवी हृदय वीणा का कौनसा यह सूक्ष्म तार ? शिधू अपनी मनोभावनाओं का विश्लेषण न कर सका।

खिन्न मन से वह मोटर में जा बैठा।

अमारा

मोर्सलीस में जिस समय वह जहाज में बैठा, उस समय वह किस मुकाम पर जा रहा है, इसकी उसे कोई कल्पना न थी। सभी सैनिक यह जानने को, कि वे कहाँ ले जाये जा रहे हैं, बड़े उत्कंठित थे। पर इस उत्कंठा के शांत होने की सम्भावना न थी। फौजी कानून ही ऐसे हैं कि उनके अनुसार पलटन कहाँ जा रही है, इसका पता साधारण सिपाहियों को नहीं लगने दिया जाता। इस विषय में सैनिक अधिकारी बड़ी सावधानी बरतते हैं।

जहाज रवाना हुआ, पर सब के हृदयों में, एक प्रकार की धीमी धड़कन थी। उस अवधि में अनेक जहाजों के डुबा दिये जाने के समाचार थे। जर्मनी के नाशकारी पनडुबियों जहाज समुद्र के भीतर जहाँ-तहाँ चक्कर काट रहे थे। उसी तरह समुद्र में जहाँ-तहाँ सुरंग भी डाल दिए गए थे। कँटीले स्थान से जाते समय मनुष्य जिस प्रकार टटोल-टटोलकर चलता है, इसी प्रकार हमारा जहाज जा रहा था। यदि कहीं कुछ भी खटका होता, तो हर मुसाफिर अपनी-अपनी जगह छोड़कर, पूछताछ करने के लिए दौड़ता हुआ डैक पर जा पहुँचता।

एक बार जहाज से पहिले भी सफर कर चुकने के कारण इस बार शिधू को इस सफर में कुछ भी अनोखापन न लगा। खान-पान संबन्धी निषेध उसने अब बिल्कुल छोड़ ही दिए थे। जहाज में बहुत से लोगों के एकत्र हो जाने के कारण वह कितने ही नए-नए लोगों से पहचान कर ले रहा था। हिंदी बोलने का अब उसे अच्छा अभ्यास हो गया था। इसके कारण परिचय कर लेने में उसे कोई कठिनाई न होती।

जहाज पर जितने भी लोग थे सभी सिपाही थे, लड़ने वाले। उनमें

कुछ अफसर भी थे। शिधू से अँग्रेज अफसरों के स्वभाव की जानकारी होने के कारण उनसे परिचय प्राप्त करने का उसने तनिक भी प्रयत्न नहीं किया।

और परिचय प्राप्त करना भी संभव न था। पहिले तो वे अफसर थे दूसरे अँग्रेज थे और फिर परिचय करने का इच्छुक शिधू था हिन्दुस्तान का नेटिव !

जहाज पर कुछ डाक्टर भी थे। पर वे भी अँग्रेज ही थे। पिछले सफर में डाक्टर हिन्दुस्तानी थे, इसलिए उनसे पहचान कर लेना उसे संभव हो गया था। परन्तु इस बार ऊपर के दरजे में बैठे लोगों में ऐसा कोई न मिला जिससे वह परिचय कर लेता।

जो मिले वे सब सिपाही थे और प्रायः सभी गुरखा और पंजाबी थे। उनकी मनोवृत्ति दोनों में किसी भी प्रकार की समानता न थी। सिर्फ वक्त काटने के लिए ही परिचय करना था। इसके सिवा उन सिपाहियों के परिचय से उसे कौन सा विशेष लाभ हो जाता ?

कुछ दिनों के बाद शिधू को पता लगा कि जहाज बसरा जा रहा है। मोरचे पर रहते हुए उसे जो भी लडाई की खबरें मालूम होती थीं उनसे उन्हें जानकारी हो गई थी कि बसरा की रणभूमि पर तुर्कों और अरबों से लड़ाई हो रही है।

भूगोल में उसने बसरा का नाम भर पढ़ा था इससे अधिक वह बसरा के बारे में और कुछ नहीं जानता था। उसे इसका कोई पता न था कि वह प्रदेश किस प्रकार का है, वहाँ का जलवायु कैसा है, वहाँ के लोगों का रहन-सहन क्या है और उसे किस प्रकार की बस्ती में जाकर वहाँ रहना है ?

बसरा के बंदरगाह पर वे उतरे। वहाँ दूसरे जहाज तैयार थे। उन छोटे-छोटे जहाजों में बैठ कर वे नदी से जाने लगे। विलायत जाने वाले जहाजों की तरह वे विशालकाय नहीं थे। छोटे छोटे जहाज थे। इस-लिए हमेशा कोंकण के किनारे पर जलयात्रा करने वाले शिधू को वे

जहाज परिचित से लगे और उनके प्रति उसके मन में अपनत्व की भावना पैदा हुई।

उसकी पलटन जिस जगह उतरी उस गाँव का नाम अमारा था, ऐसा उसे बताया गया। वहाँ के जिस पोस्ट आफिस में जाकर वह दाखिल हुआ वह फील्ड पोस्ट आफिस था। उसका "बेस आफिस" बसरा में था।

अमारा पहुँचते ही "सैपर्स और माइनर्स" का काम शुरू हो गया। और थोडी ही देर में छावनी खड़ी कर दी गयी। सप्लाई और ट्रान्स-पोर्ट का प्रबंध वहाँ पहिले ही हो चुका था। पर वहाँ के खाने-पीने का प्रबन्ध बेलजियम फ्रन्ट की तरह अच्छा न था।

उसका पोस्ट आफिस तैयार हो गया। उसने अपना आफिस खोल कर काम शुरू कर दिया। पहिले उसकी मातहती में काम करने के लिए एक पंजाबी दिया गया था। पर दो-तीन दिन के बाद ही उसे किसी दूसरी जगह जाने का हुक्म मिला और उसकी जगह पर एक नया आदमी आया।

उस नये आदमी को देखते ही शिधू कुछ सोच में पड़ गया। वह सोच ही रहा था कि इस आदमी को मैंने पहिले कहीं देखा था कि तभी वह मातहत एकदम दौड़कर उसके पास गया और उसने शिधू को अपनी भुजाओं में लपेट लिया।! एक क्षण के लिये ही क्यों न हो, पर शिधू को अपना दर्जा महसूस हुआ। यह देखकर कि उसका एक मातहत, जो मामूली सिपाही की रैंक का था, एकदम अपने आफीसर को आलिंगन करता है, उसके मन में रोष की भावना जाग्रत हो ही रही थी। तभी शिधू ने उस आदमी को पहचान लिया। वह उसके गाँव का, यशोदा का लड़का, अर्जुन था।

रोष की वह भावना एकदम उसके हृदय से अस्त हो गयी। चाहे समरभूमि में हो और चाहे परदेश में हो, जब दो मित्रों से अचानक भेंट हो जाती है, तब उनके बीच खड़ी हुई ऊँच-नीच की दीवाल एकदम ढहकर गिर पड़ती है। हम एक ही गाँव के हैं, एक ही वृक्ष की

छाया तले बैठे हैं, एक ही खेत में घूमें हैं और हम दोनों आज विदेश में एक दूसरे से अचानक मिले हैं, यही एक भावना उस समय शिधू के हृदय में शेष बच रही।

दोनों की पोशाकें बदली हुई थीं। उन बदली हुई पोशाकों के कारण परस्पर परिचय होने में जो रुकावट आ गयी थी, वह रुकावट नजरों के सामने से अब हट गयी। शिधू गाँव का पटेल है। अर्जुन उसका आसामी है। शिधू ब्राह्मण है। अर्जुन अछूत है। यह भावना भी विलुप्त हो गयी। शिधू अगर गाँव में होता और उससे अर्जुन की इस तरह अचानक भेंट हुई होती, तो अर्जुन उससे झुककर राम-राम करता, उसके चरण छूता। प्रेम से बातें अदब के साथ करता। लेकिन यहाँ रणभूमि में, मृत्यु के इस प्रांगण में, अदब की वह भावना उन दोनों में से किसी के भी हृदय में न जागी।

अर्जुन बोला, "मेरा कितना सौभाग्य है। यदि मुझ से कोई कहता कि इस रणभूमि में तुम्हें तुम्हारा पटेल मिलेगा और उसके मातहत में काम करने के लिए तुम्हें नियुक्त किया जाएगा, तो इस पर मैं कभी विश्वास ही न करता। अब पहिला काम घर पर पत्र भेजने का है! यह खबर पाकर कि मैं तुम्हारे हाथ के नीचे काम करता हूँ, माँ को बड़ी खुशी होगी और वह बेचारी बिल्कुल निश्चित हो जाएगी।"

"और मेरी माँ भी निश्चिन्त हो जाएगी यह जानकर।"—शिधू बोला—"किसी परिचित का चेहरा देखने के लिए मेरा मन बहुत तड़प रहा था। आज इतने दिन हो गये, परिचित मनुष्य की तो बात ही छोड़ो, किसी से मराठी बोलने का भी मौका मुझे नहीं आया आज तक। जो भी मराठी बोलता मन-ही-मन बोल लेता अपने आप से। इस फ्रन्ट पर बहुत से मराठे हैं?"

"हाँ, हैं। एक सौ सोलहवीं मराठा पलटन यहीं है। इसके अलावा और भी पलटनें हैं। बहुत से लोग मोरचों पर गये हैं। सुनता हूँ कुतेल अमारा पर मोरचे लगे हैं। यहाँ तुम्हें मराठी बोली के लिए तड़पना नहीं

पड़ेगा। मैं अकेला ही तुम्हारी इतने दिनों की प्यास बुझा दूँगा। यहाँ दूसरा काम ही क्या है? मजे से दिन-भर बातें करते रहेंगे। बस।"

शिधू के आनन्द की सीमा न रही। यदि उसके कोई भाई होता और उससे वह मिलता, तो जितना आनन्द उसे उस समय होता, उतना ही आनन्द उसे इस समय अर्जुन की भेंट से हुआ। कई बरसों से अर्जुन गाँव में नहीं गया था और शिधू भी गाँव में न था। फिर भी दोनों गाँव की बातें कर रहे थे। पुरानी स्मृतियाँ कुरेद-कुरेदकर निकालते और उन पर चर्चा करते रहते। शिधू के भाई-बन्द उनके आपसी झगड़े, अदालत के मुकद्दमें, खेत, बैल, गाय भैंस, इन सब के बारे में बातें करते हुए उनका वक्त कैसे गुजर गया, इसका उन्हें तक पता न चला।

शिधू जब अकेला बिस्तर पर लेटा हुआ होता, उस समय घर की याद के साथ ही उसे बेलजियम फ्रन्ट की भी याद हो आती। मादेलीन का साथ, उसकी बातें, उससे होनेवाली साहित्य-चर्चा और अंत में एक दूसरे ने एक दूसरे की जो विदा दी थी—ये बातें उसे याद आती। उन यादों के साथ उसके मन में जो भावनाएँ जागतीं, वे घर के लोगों के वियोग की भावनाओं के समान ही तीव्र होतीं। रमा की याद उसे आती। वह क्या कर रही होगी, मेरे वियोग के कारण उसे कितना दुख हो रहा होगा—यह सब वह भूला नहीं था। पति की आत्मीयता से वह अपनी पत्नी के वियोग को याद करता—

परन्तु मादेलीन की याद आने पर उसके मन में कैसे भाव उठते थे, इस विषय में यदि उससे कोई पूछता, स्पष्ट रूप से वह स्वयं इसका उत्तर न दे सकता। वह प्रेम नहीं था—नित्य की आत्मीयता न थी। फिर भी संगति के कारण मादेलीन के प्रति जो एक विशेष प्रकार की आत्मीयता उसके हृदय में जाग उठी थी, उसकी स्मृति से भी उसको आनन्द होता। रमा की याद के साथ ही उसे जब मादेलीन की भी याद आती तब उन दोनों व्यक्तियों की याद एक ही समय क्यों आती है, इसका कारण खोजने में वह असमर्थ रहता। बारीकी से वह अपने मन की जाँच

करता। मादेलीन की याद में जिस तरह प्रेम की कल्पना न थी उसी तरह कामुकता की भावना भी न थी। परन्तु वह आत्मीयता बेशक अपूर्व थी, इसमें संदेह न था।

अर्जुन से उसने अपनी इस मनःस्थिति के बारे में कुछ नहीं कहा। यदि कहता भी, तो उस सिपाही के पास इतनी सूक्ष्म दृष्टि थी ही नहीं जो उसके मन का विश्लेषण करके उस मनःस्थिति का कारण खोजकर उसे बता सकता।

हिन्दुस्तान के पोस्ट आफिस में काम करते समय उसकी मनःस्थिति जैसी मशीन-स्वरूप रहा करती, उसी तरह यहाँ भी थी। यहाँ परिचित भाषा के लोग मिल जाने के कारण बेलजियम फ्रन्ट पर उसे जितना परायापन महसूस होता था, उतना परायापन उसे यहाँ महसूस न होता। यहाँ का जलवायु उसके लिए प्रतिकूल था और यही उसकी यहाँ बड़ी कठिनाई थी। सारा प्रदेश एकदम रूखा था। जहाँ-तहाँ रेतीले मैदान थे। अगर वृक्ष थे भी तो खजूर के। एक बात वहां बड़ी आश्चर्यमयी थी। वहाँ की नदी बड़ी थी और समुद्र के बिल्कुल नजदीक थी। पर उस नदी का पानी मीठा था।

बस यही एक अच्छी बात थी वहाँ। यदि वह घूमने जाता तो एक विशिष्ट सीमा के बाहर जाने की मनाही थी। प्रत्येक स्थान पर रोकथी। फिर दूर से आनेवाली तोपों की गड़गड़ाहटों से यहां भी उसका पीछा नहीं छूटा था। प्रत्यक्ष मोरचा अमारा से काफी दूर था। परन्तु यहां परिस्थित कब बदलें जाय और ठीक मोरचे के नजदीक ही कब जाना पड़ जाए, इसका अन्दाज उस परिस्थिति में नहीं लगाया जा सकता था।

इस मशीनवत जिंदगी से शिधू ऊब उठा था। सुख से उतना ही समय कटता था, जब तक अर्जुन उसके साथ होता। पर वह बेचारा भी बातें करता तो आखिर कितनी करता ? दोनों की संस्कृतियों में अंतर था, दोनों मनों की रचना अलग-अलग थी। दोनों की शिक्षा में अन्तर था। दुनियां की ओर देखने की दोनों की दृष्टि भी भिन्न थी।

उन दोनों में बातें होतीं तो सिर्फ उनके गाँव के बारे में ही हो सकती थीं।

लड़ाई के जो समाचार मिलते उनसे किसी को भी समाधान न होता लोगों द्वारा सुने हुए जो समाचार आते उनमें सच्चाई की अपेक्षा झुठाई ही अधिक होती। हर व्यक्ति का ध्यान केवल एक बात पर केन्द्रित था—लड़ाई कब बन्द होगी।

और लड़ाई तो बन्द होने का नाम न लेती। धीरे-धीरे रेंग ही रही थी। किसी भी मोरचे पर ऐसे आसार नजर नहीं आ रहे थे जिनसे यह अनुमान हो सकता कि लड़ाई जल्द समाप्त हो जाएगी।

एक दिन शिधू बीमार पड़ा और वह बसरा की अस्पताल में भरती कर दिया गया। बेचारा अर्जुन व्याकुल हो उठा। अपने पटेल के साथ अस्पताल में रहने की उनकी बड़ी इच्छा थी। पर लड़ाई के मैदान पर वह उसका पटेल न था। शिधू को जब जहाज बैठाया गया, तब अर्जुन खूब रोया। वह बड़ा निडर सिपाही था। रणभूमि पर अनेक बार जा चुका था। बंदूक की गोलियों और तोपों के गोलों की उसे तनिक भी परवाह न होती, परन्तु यह देखते ही कि शिधू बीमार हो गया है, वह एक बालक की तरह रो उठा। शिधू ने उसे बहुत समझाया और यह भी आश्वासन दिया कि वह शीघ्र ही स्वस्थ होकर लौटेगा और दोनों फिर मिलेंगे।

मिलना न मिलना किस के हाथ में था? वहां सभी हुक्म के ताबेदार थे। आज यहां तो कल वहां। हुक्म होने पर क्यों, कब और किस लिए? ये प्रश्न पूछने की किसी की भी हिम्मत न थी। शिधू ने सिर्फ समझाने के लिए अर्जुन को आश्वासन दे दिया था। पर स्वयं शिधू को भी कहां विश्वास था कि उसके अस्पताल से लौटने के बाद भी अर्जुन उसी का मातहत रहेगा?

बसरा की अस्पताल में व्यवस्था बहुत अच्छी थी। वहाँ के डाक्टरों में बहुत से महाराष्ट्रीय थे। इसलिए शिधू को अमारा की अपेक्षा भी

बसरा में परायापन कम लगने लगा। उसे पेचिश हो गयी थी। वह बीमारी जल्द अच्छी होने वाली न थी। कितने दिन उसे अस्पताल में रहना पड़ेगा, इसका अन्दाज डाक्टर लोग भी नहीं लगा सकते थे।

यहाँ शिघ्रू को एक नया मित्र मिला। उसे शिघ्रू की विशेष घनिष्ठता हो गयी। उसका नाम था माधवराव। वह अस्पताल में क्लर्क था। करीब करीब शिघ्रू की ही उम्र का बिल्कुल युवक। शिघ्रू की तरह वह भी स्वेच्छा से ही लड़ाई पर आया था और उसे यह नौकरी मिली थी। उसकी विशेषता यह थी कि इतने दिन उसे लड़ाई पर आये हो गये थे, पर उसने अपने खान-पान में कोई बदलाहट नहीं की थी। वह माँसाहारी नहीं हुआ था।

माधवराव बड़ा बातूनी था। घंटों बातें करता रहता। जो भी बात बताना शुरू करता, तो उसका अंत न होता। जहाँ एक बार वह बोलना शुरू कर देता, तो उसकी बातें उससे रोके नहीं रुकती थीं। बात करने का उसका ढंग भी बड़ा बड़ा विलक्षण था। वह बड़ी जल्दी-जल्दी बोलता। बोलते समय हाथ नचाता जाता। सारांश माधवराव स्वयं एक हलचल था।

अपने तुल्य-गुण साथी पाने पर शिघ्रू को बड़ा आनंद हुआ। समय निकालकर माधवराव जब शिघ्रू के पास आकर गप्पे करने लगता, उस समय उसे डाक्टर की दवा की आवश्यकता भी न महसूस न होती। उसकी सुहबत में इतना अच्छा उसे लगता। माधवराव शिघ्रू को पुनः पुराने जमाने में ले गया, पुनः उसे निरामिषहारी बना दिया।

उसकी बीमारी का सच्चा कारण उसका माँसाहार ही था। उसके पेट को माँसाहार की आदत न थी और मेसोपोटामिया में खान-पान का इंतजाम खराब होने के कारण वहाँ का खाना उसके स्वास्थ्य के लिए अनुकूल न हुआ। इसलिए वह बीमार पड़ गया था। दवा की अपेक्षा अन्न को बदल देने से ही उसकी बीमारी धीरे-धीरे अच्छी होने लगी।

यह सच है कि अर्जुन की उसे बार-बार याद आती। पर माधवराव का साथ छोड़ना उसकी जान पर आता। यह भी सच है कि अर्जुन उसका बचपन का साथी था और शिधू के प्रति उसके हृदय में भक्ति थी और उसकी भेंट होने पर शिधू को परमानन्द हुआ था। फिर भी अर्जुन के भक्ति-भाव की अपेक्षा नवपरिचित माधवराव का स्नेह ही उसे अधिक मूल्यवान लगता। जैसे-जैसे उसके स्वास्थ्य में सुधार होने लगा, वैसे-वैसे वह घूमने-फिरने लगा। घूमने-फिरने लगा कहने के बजाय यह कहना ही ठीक होगा कि वह घूमने-फिरने की सहूलित लेने लगा। माधवराव भी कभी-कभी समय निकालकर उसके साथ घूमने जाता।

आसपास के भूभाग का वह निरीक्षण करता। वहाँ के निवासियो का परिचय प्राप्त करना उसके लिए संभव न था, क्योंकि उसकी भाषा वहाँ किसी को भी नही आती थी। वहाँ के निवासी यद्यपि मुसलमान थे, फिर भी उनकी भाषा शुद्ध हिन्दुस्तानी नहीं थी। इसलिए उस प्रदेश के लोगों से परिचय प्राप्त करने की इच्छा होते हुए भी उन दोनों के लिए वह संभव न हुआ।

मादेलीन का हाल जब उसने माधवराव से कहा, तो उसे सुनकर माधवराव आश्चर्यचकित हो गया। उसके अस्पताल में भी कुछ यूरोपियन नर्सें थी। परन्तु उनके बर्ताव करने का ढंग मादेलीन से तुलना करने योग्य न था। वे प्राय: सभी अंग्रेज थीं। परिचय हुए बिना किसी से बात नहीं करती थीं, यह उनका स्वभाव था और नेटिव्ह सिपाहियों से परिचय करना वे अपनी शान के खिलाफ समझती थीं। उन्हें अपने उच्च वर्ण और दर्जे का बड़ा ख्याल था।

इसलिए माधवराव को आश्चर्य हुआ था। उसने सोचा अँग्रेज और फ्रेन्च महिलाओं की मनोवृत्तियों में ही फर्क होना चाहिए।

मालेदीन के परिचय का हाल यद्यपि शिधू ने माधवराव को सुनाया था, फिर भी उनकी संगति का उनके मन पर जो विशेष प्रभाव पड़ा था, वह उसने माधवराव से स्पष्ट रूप से नहीं कहा था, क्योंकि मन पर

पड़ा वह प्रभाव अत्यन्त कोमल था। उसे लगा, अगर स्पष्ट खोलकर वह सब उसे बता दूं तो मेरी बात का गलत अर्थ निकला जाएगा। अपने हृदय के रहस्य को उसने इसीलिए माधवराव के सामने खोलने का प्रयत्न नहीं किया।

दिन बड़े आनन्द से बीत रहे थे कि इसी समय एक आपत्ति आई। छावनी में हैजा फैल गया।

डाक्टर लोग इस बीमारी के कारण की खोज में लग गये। जो खाना सिपाहियों को खिलाया जाता था उस पर कड़ी नजर रखी जाने लगी। पानी उबाल कर दिया जाने लगा। सर्वत्र रोग-कीटाणु-नाशक दवायें छिड़की जाने लगीं। इसके बावजूद बीमारी का जोर कम नहीं हो रहा था।

बहुत से लोग इस बीमारी के शिकार हो गये। इस कारण डाक्टरों के छक्के छूट गये। यदि बीमारी का यही हाल रहा तो कौनसी विपत्ति आ गिरेगी, इसकी किसी को कोई कल्पना न थी। डाक्टरों पर बड़ी भारी जिम्मेवारी आ पड़ी थी।

आश्चर्य यह कि बीमारी का कारण एक छोटे फल में निकला। उस प्रदेश में सर्वत्र खजूर के पेड़ थे। जंगल में हर जगह लगे थे ये पेड़। हिन्दुस्तान में खोजने पर न मिलेंगे इतने स्वादिष्ट और बढ़िया खजूर वहाँ इफरात मिलते थे। सड़कों पर खजूर के ढेर पड़े रहते और सभी उन फलों को मनमाना खाते थे। यह कोई नहीं जानता था कि इन फलों में हैजे की कीटाणुओं का डेरा पड़ा है।

एक डाक्टर ने यह आविष्कार किया और खजूर खाने की कानूनन मनाही कर दी गयी। जो खजूर खाते पकड़ा जाता, उससे चार आना जुर्माना वसूल किया जाता और जो इसकी खबर देता उसे वे चार आने इनाम के बतौर दे दिये जाते।

शिधू पूर्ण स्वस्थ हो गया था। एक-दो दिन में वह अपनी नौकरी पर अमारा जाने वाला था। लेकिन इसी समय उसकी अक्ल मारी गयी।

डाक्टर की इस नयी खोज से कि खजूर खाने से हैजा होता है शिधू को बड़ी भ्रमजनक मालूम हुई। हिन्दुस्तान में उपवास के दिन खजूर खाने का आम प्रचार है, पर उसके खाने से वहां तो हैजा कभी नहीं हुआ। उसे लगा, डाक्टरों का यह निरा पाखंड है। किसी भी चीज का कहीं भी सम्बन्ध जोड़कर अपनी धौंस जमाने का डाक्टरों का तरीका ही है।

वह जिद पर आ गया और एक दिन जान-बूझकर उसने बहुत से खजूर खा लिये। इस जिद का उसे फल मिला।

दूसरे ही दिन उसे हैजा हो गया और वह हैजा-अस्पताल में भरती कर दिया गया।

पहिले दिन वह जिन्दगी और मौत के बीच लटक रहा था। उसे लगातार दस्त हो रहे थे। हर क्षण उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी। वह सब देवी-देवताओं को याद करने लगा। उसकी माँ उसकी नजरों के सामने मूर्त हो उठी। रमा का आगे क्या होगा इस विचार ने उसे अत्यन्त व्याकुल कर दिया। विदेश में—फिर लड़ाई के मैदान में—तोप के गोले से नहीं, बन्दूक की गोली से नहीं, अथवा सुरंग या बम से भी नहीं, रणभूमि में मेरी मृत्यु हैजे से होगी! इस विचार के मन में आते ही उसे मरण से भी अधिक दुख हुआ।

अर्जुन उसके पास न था। माधवराव से भी मुलाकात न होती थी। अस्पताल के उन कर्मचारियों को जो डाक्टर नहीं थे इस अस्पताल में नहीं आने दिया जाता था, क्योंकि हैजा छूत की बीमारी है।

जहाँ कोई प्रिय व्यक्ति नहीं था— यहाँ तक कि कोई परिचित भी नहीं था—जहाँ मराठी भाषा के शब्द भी कानों में नहीं पड़ते थे, ऐसी

अस्पताल में वह पड़ा था। उसके दुर्भाग्य से महाराष्ट्रीय डाक्टरों में से एक भी डाक्टर इस अस्पताल में न था।

जैसे-जैसे उसकी शक्ति क्षीण होने लगी, वैसे-वैसे उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी बनने लगी। रणभूमि पर आने के लिए जिस समय वह तैयार हुआ था, उस समय उसे मृत्यु की चिन्ता न थी। उसने महसूस कर लिया था कि क्या लड़ाई में और क्या घर में, मृत्यु निश्चित ही है। यह महसूस करके ही उसने लड़ाई पर जाने का निश्चय किया था।

डाक्टर से उसने एक कागज माँगा और घर के लोगों को एक पत्र लिखा।

उसे लगा, मौत अब बिल्कुल नजदीक आ गयी है। दस्त बद हो रहे थे इसमें शक नहीं, पर शक्ति का बहुत अधिक ह्रास हो गया था। आँखें खोलने की शक्ति भी उसमें नहीं रह गयी थी।

उसे एक इंजक्शन दिया गया। वह उसने महसूस किया। उसके मस्तक पर ठंडे जल की पट्टी रखी गयी। उसे लगा दिमाग उसके कब्जे से निकला जा रहा है।

कोई बातें कर रहा था। डाक्टर की आवाज उसके कानों में पड़ रही थी। डाक्टर नर्स को हुक्म दे रहा था। वह नर्स डाक्टर से बातें कर रही थी।

उसे लगा मादेलीन बोल रही है। कोई भी यूरोपियन स्त्री बोलने लगती, तो वह मालेदीन ही है, ऐसा भ्रम उसे हो रहा था। सच पूछा जाय तो ऐसा भ्रम होने का कोई कारण नहीं था, क्योंकि अंग्रेज और फ्रेन्च मनुष्य के उच्चारण में बहुत अंतर होता है। त और ट, ड और द, इन अक्षरों के उच्चारण अंग्रेज और फ्रेन्च बिल्कुल भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। यही नहीं बल्कि अंग्रेजी में "त" और "द" अक्षरों का उच्चारण ही नहीं है—उच्चारण "त" और "द" के होने से ही उसे लगा जैसे मालेदीन बोल रही है। यही नहीं, बल्कि बोलने वाली की आवाज भी उसे मालेदीन जैसी ही लगी। वह मन-ही-

मन सोच रहा था, यहाँ मालेदीन कहाँ से आएगी ? होगी कोई दूसरी फ्रेन्च स्त्री ! उसे लगा जैसे वह जोर से मालेदीन को पुकार रहा है ।

सोचते-सोचते स्मृति पर से उसका अधिकार जाता रहा । वह मृत्यु थी या नींद, इसका वह निश्चय नहीं कर पाया । उस स्थिति में ग्लानि थी, पर यातनायें न थीं । मृत्यु के समय यातनायें होती हैं, ऐसा उसने सुना था । फिर इस समय मुझे यातनाएँ क्यों नहीं हो रही हैं ? क्या जो मैंने सुना था वह झूठ है ? भ्रम है ? सिर्फ कहने की ही बात है ? ज्ञान का अन्तर्धान होना ही क्या मृत्यु है ? या कि एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाग्रत होना मृत्यु है ?

उसे लग रहा था जैसे वह सो गया है । धीरे-धीरे स्मृति पर से उसका अधिकार अब सम्पूर्ण रूप से जाता रहा ।

वह जागा । उस समय रात थी । आसपास के रोगी कराह रहे थे । यह देखकर उसका जी ठंडा हुआ । उसे महसूस हुआ कि वह जीवित है । पूर्व-संस्कारानुसार उसने अपने कुलदेव की बन्दना की । उसे लगा भगवान की कृपा से ही मैं जीवित हूँ ।

उसने चारों ओर बड़े ध्यान से निगाह दौड़ाई । एक दीप टिमटिमा रहा था । किसी की कोई हलचल नहीं हो रही थी । प्राय: सभी रोगी नींद में थे । जो कराह रहे थे, वे भी शायद नींद में ही कराह रहे थे । अत्यन्त कोमल स्वर में उससे किसी ने पूछा—"अब आपको कैसा लगता है ?"

वह एकदम चौंक पड़ा । आवाज मालेदीन की थी । उसे लगा यह सारा भ्रम है । मेरी आँखें बन्द हैं । मैं जाग्रत हूँ, क्या यह भी भ्रम है ?"

वह दुविधा में पड़ गया ।

फिर वही आवाज उसके कानों से टकराई ! वही शब्द फिर उसके कानों में पड़े । बोलने वाली उसे दिख नहीं रही थी । यह सोचकर कि यह सारा भ्रम है, उसने आँखें नहीं खोली थी । परन्तु बोलने वाली के हाथ का जब उसे स्पर्श हुआ, नाड़ी पर रखे हाथ से जब उसका हाथ

संलग्न हुआ, तब उसने आँखें खोलीं, देखा तो सामने मादेलीन खड़ी थी ! वही उसकी नब्ज देख रही थी। वह आश्चर्य से बोल उठा. "कौन मादेलीन ! तुम ! या कि मैं भ्रम में हूं ?"

मादेलीन ने उसके मस्तक को सहलाते हुए कहा—"उत्तेजित न होइए, बोलिए नहीं। मैं मादेलीन ही हूँ परन्तु इस समय आपको अपना मस्तिष्क बिल्कुल शान्त रखना चाहिए। आंखें बन्दकर चुपचाप पड़े रहिए। अच्छा हुआ जो आपको नींद आई, अगर और अच्छी नींद आ जाए तो सुबह आपको और अच्छा लगेगा।"

अनजाने शिधू ने उसकी आज्ञा का पालन किया। फिर बोलने की कोशिश न की। वह उसका सिर सहलाती हुई उसके समीप बैठी थी।

शिवू के मस्तिष्क में विचारों ने कुहराम मचा दिया था। उस कुहराम के बीच वह कुछ ऐसे कल्पना-चित्र रंग रहा था कि उन्हें देखकर स्वयं उसे अपने पर आश्चर्य हो रहा था। उसे लगा लड़ाई बन्द हो गई है। हम जीत गये हैं। जय के उपलक्ष में एक वृहत जलूस निकला है। दो व्यक्ति जिनके कारण यह जय प्राप्त हुई है, बड़ी शान से जलूस के आगे आगे चल रहे हैं। जनता उन पर पुष्प-वर्षा कर रही है। वह जलूस उसे दिख रहा था। उसने देखा जलूस के आगे चल रहे दो व्यक्तियों में एक वह स्वयं है और दूसरी मादेलीन है।

वह आश्चर्य-चकित हो गया। मैं ही अपने आप को किस तरह देख रहा हूँ ? यह वह समझ न पाता। इस दृश्य का परस्पर संबन्ध क्या था, यह रहस्य वह सुलझा नहीं पाता। उसे लगातार दिख रहा था कि जलूस में के आगे एक वह स्वयं है और दूसरी मादेलीन है।

उसने अपने आप से पूछा—इन दोनों ने इस लड़ाई में ऐसे कौन से झंडे गाड़े हैं ? क्या मर्दानगी दिखाई है ? किस वीरता के बल पर इन दोनों ने यह लड़ाई जीती है ?

स्मरण करने का वह प्रयत्न कर रहा था। परन्तु वह प्रयत्न करते हुए ही वह दृश्य विलीन हो गया और साथ ही उसकी स्मृति भी गलगयी।

दूसरे दिन वह जागा। उस समय उसे काफी अच्छा लग रहा था। डाक्टर ने आकर उसकी जाँच की और यह कहकर कि वह रोग-मुक्त हो गया है, उसे वहाँ से हटाकर, दूसरे वार्ड में रखने का प्रबन्ध कर दिया।

वह जब जागा उस समय मादेलीन वहाँ न थी। जब उसने मादेलीन को वहाँ न देखा, तो उसके मन में विश्वास हो गया कि पिछली रात उसने जो कुछ देखा था, वह सब निरा भ्रम था। दूसरे वार्ड में जाने पर माधवराव से उसकी मुलाकात हु । दोनों एक दूसरे से मिले। उस समय उनके आनन्द क पारावार न था। बेचारा माधवराव शिधू के बीमार पड़ जाने के बाद से बिल्कुल हक्का-बक्का हो गया था। हैजे की अस्पताल में वह जा नहीं सकता था और उसे सिर्फ पूछताछ पर ही संतोष कर लेना पड़ता था। पूछताछ करने में भी उसे ठीक पता न चलता। इतने रोगियों में किसी विशेष रोगी के बारे में उससे कोई ठीक से कह भी क्या सकता था? डाक्टर सब, अँग्रेज मेमें थीं। फिर पूछता किससे?

माधवराव ने अपने मुँह की तोप शुरू की, "आखिर एक नर्स से तुम्हारा हाल मालूम हुआ। वह नर्स अच्छी मालूम होती थी वर्ना दूसरी यूरोपियन नर्सें बड़ी घमंडी होती हैं। अमीरों की बेटियाँ जो होती हैं। जनता को यह दिखानेके लिए कि हम कितना स्वार्थ-त्याग कररहीहैं, वे नर्स बनकरलड़ाई परआती हैं। वैसे वे काम अच्छा करती हैं इस में शक नहीं। कभी टाल-मटोल नहीं करतीं कभी थोड़ा भी आलस्य नहीं दिखातीं। हमारे हिन्दुस्थान की अंग्रेज नर्सों की तरह रोगियों के बारे में असावधानी या लापरवाही नहीं दिखाती। पर मेंमे आखिर मेंमे ही तो हैं। यदि उन से कोई मामूली बात पूछने जाएँ तो ठीक से जवाब भी नहीं देतीं। परन्तु जिसने तुम्हारा हाल बताया, वह छोकरी ऐसी नहीं थी। मैं तो पूछ रहा था डाक्टर साहब से, पर उस डाक्टर ने मुझे ठीक से कोई उत्तर नहीं दिया और बेटा बड़ी शान से अकड़ता हुआ चल दिया। यह देखकर

वह छोकरी आगे बढ़ी और बोली, 'आप कोई चिन्ता न करें। आप शायद जोशी पोस्ट-मास्टर के बारे में पूछ रहे हैं वे अच्छे हैं। अब बिल्कुल 'आऊट आफ डेन्जर' हैं। आज ही उन्हें दूसरे वार्ड में ले जाया जाएगा।' जब उसने यह कहा तब कहीं मेरा जी शान्त हुआ। यूरोपियन भी हों तो क्या हुआ, उनमें भी कुछ अच्छे लोग होते ही हैं। थोड़ी देर चुप रहकर माधवराव ने एक ठहाका मारा और फिर बोला "यार, उस लड़की की अंग्रेजी बड़ी विचित्र थी। कुछ अजीब-से उच्चारण करती थी। जाने उसे अंग्रेजी ठीक से आती भी है या नहीं, इसी का मुझे शक हुआ। दूसरी नर्सें जिस तरह उच्च कुल की हैं, वैसी यह नहीं मालूम होती। मुझे लगता है वह किसी देहाती परिवार की है।"

माधवराव के मुंह की तोप लगातार दग रही थी। पर शिधू का उस ओर ध्यान न था। माधवराव के मुँह से नर्स की बातें सुनते हुए उसे फिर मादेलीन की याद हो आई थी। रात को मुझे दृश्य दिखा वह क्या था ? भ्रम था, या सचमुच मादेलीन ही आई थी ? फ्रान्स को छोड़ कर क्या वह मेसोपोटामिया की समर-भूमि पर नर्स बनकर आई होगी।

माधवराव शिधू को हल्के-से झकझोरते हुए बोला—"मै जो कह रहा हूँ वह सुन रहे हो न ? बड़ी खुबसूरत लड़की है वह। बातें भी मीठी करती है। जैसी उसकी आवाज मधुर है, उसी तरह उसकी मुद्रा भी बड़ी सौम्य है। तुम्हारे बारे में जो बात कह रही थी, उन से ऐसा लगता था जैसे तुमसे उसका बहुत पहिले का परिचय हो ! बड़े प्यार से तुम्हारा हाल बता रही थी। तुम्हें क्या-क्या दवाएं दी ? कौन-कौन से इंजेक्शन दिये ? डाईट क्या दिया था ? यह सब उसने मुझे बताया।

"क्या उसने तुम्हें अपना नाम भी बताया था ?" शिधू ने पूछा।

माधवराव जोर से हँस पड़ा। बोला—"अब तुम्हें क्या बताऊँ जोशी ! अजी क्या कोई किसी नर्स का नाम भी कभी पूछता है ? नर्स याने नर्स ! उसके चेहरे से उसे पहचान लेते हैं या उसकी पोशाक से। हो सकता है उसका कोई नाम हो। पर मैं क्यों पूछता उसका नाम ? मुझे

क्या जरूरत थी उसका नाम जानने की ? मेरा उससे काम हो गया था। मैंने उसे थैंक्स दिये और तुम्हें ताज्जुब होगा शिधू ! उसने हाथ आगे बढ़ा दिया और मुझ से शेक हैंड किया।"

माधवराव बड़े रंग में आकर बोला—"यार कितना गोरा कोमल और सुन्दर हाथ था। जीवन में कम-से-कम एक बार तो ऐसे हाथ से हाथ मिलाने का मौका अवश्य आना चाहिए, वरना यह जिन्दगी बेकार है। कुछ गलत मत समझ लेना, मित्र ! वैसे मेरे मन में उसके बारे में कोई बुरा विचार नहीं आया था। पेड़ पर यदि सुन्दर फूल दिखाई दें, तो क्या मनुष्य को आनन्द नहीं होता ?"

बड़ी देर तक माधवराव शिधू से बातें करता रहा। पर उसकी बातों पर शिधू का ध्यान नहीं था। बार-बार उसे मादेलीन की याद आ रही थी।

माधवराव के जाने पर उसे बड़ा उदास-सा लगने लगा। नजदीक की चारपाई पर पड़े एक बीमार की ओर मुड़कर वह बोला—"कितने दिन से हैं आप यहाँ ?"

वह बीमार भी मराठा था। इसलिए उसने मराठी में ही उत्तर दिया। "दो-तीन दिन ही हुए हैं मुझे यहाँ आये। मैं आपसे सच कहता हूँ कि वह नर्स, जिसके बारे में आप के मित्र अभी आप से बातें कर रहे थे, एक विलक्षण स्त्री है, इस में शक नहीं। जिसको उसका हाथ छू जाता है, वह तुरन्त अच्छा हो जाता है। मेरी भी उसी ने सुश्रुषा की थी। वह स्त्री नहीं, देवी है।"

"अभी उसका सारा हाल आपने शायद सुना ?"—शिधू बोला।

"यहाँ आप ही के नजदीक तो पड़ा हूँ। इसलिए सहज ही सब बातें मेरे कानों में पड़ गयीं। बातचीत के सिलसिले में जब उस नर्स का हाल निकला, तो मेरा ध्यान सहज ही उस ओर आकृष्ट हो गया। उसका सिर्फ स्मरण होते ही हृदय भर जाता है। डाक्टर की दवा की अपेक्षा उसकी सुश्रुषा से ही मुझे अधिक लाभ हुआ और आपके मित्र ने जो

अभी कहा वह झूठ नहीं—वह नर्स सचमुच गुलाब का फूल है ! उसे देखते ही उसके प्रति हृदय में श्रद्धा जाग उठती है। वैसे बहुत-सी नर्सें मैंने देखी है। कोई-कोई तो इतनी छिनाल होती हैं कि सिपाहियों से भद्दे मजाक करने की भी उन्हे शर्म नहीं आती। पर यह उस मिट्टी की नहीं बनी है। उम्र भी उसकी कोई अधिक नहीं, परन्तु लगता है जैसे सच्ची माँ है।"

सिपाही उस नर्स की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा था। शिधू की जिज्ञासा जाग्रत हो उठी। उसे इस बात की जैसे रट ही लग गयी कि ऐसी नर्स मुझे एक बार अवश्य देखना चाहिए। उसने उस सिपाही से पूछा—"क्या इस वार्ड में भी वह आती है कभी ?"

"यहां वह क्यों आने लगी ?"—उसकी ड्यूटी उसी वार्ड में है। यहाँ बहुधा नर्सें आती ही नहीं ; क्योंकि जिनकी बीमारी ठीक हो जाती है वही इस वार्ड में कुछ दिन और रखे जाते हैं जिससे थोड़ा आराम कर लें।"

शिधू का मस्तक भ्रमण करने लगा, मादेलीन सचमुच यहाँ आई है क्या ? या कि भ्रम में मैंने किसी दूसरी भली लड़की को ही मादेलीन समझ लिया ? उसे माधवराव की बात याद आई। उसने कहा था कि वह ठीक से अँग्रेजी भाषा का उच्चारण नहीं कर सकती। फ्रेन्च लोगों के उच्चारण कैसे होते हैं यह माधवराव जानता न था। यदि यह उसे मालूम होता, तो वह एकदम कह देता कि वह फ्रेन्च स्त्री थी। इसलिए जब कि उसके अँग्रेजी उच्चारण में दोष था, तो वह जरूर फ्रेंच ही होगी। शायद मादेलीन ही हो, यह शंका भी उसके मन को छू गई।

उसकी जाँच के लिए जो डाक्टर आए वे महाराष्ट्रीय थे। इधर-उधर की गप्पें हांकते हुए वे बहुत देर उसके पास बैठे थे। उस समय उन्हें भी कोई खास जरूरी काम न था। शिधू ने सहज ही उनसे भी उस नर्स के बारे में पूछकर देखा।

पर निराशा ही उसके पल्ले पड़ी। उस वार्ड की नर्सों के बारे में

उस डाक्टर को कोई जानकारी न थी। यदि उसे कोई जानकारी होती भी तो भी वे उसका संशय दूर कर ही देते, इसका उसे भी विश्वास न था।

शिधू निराश हो गया। संशय के कारण उसकी अन्तरात्मा तड़प रही थी। उसे लगने लगा कि वह नर्स मादेलीन ही होगी और यह भावना जैसे-जैसे उसके हृदय में बल पकड़ने लगी, वैसे-वैसे उसका मन अधिक व्याकुल होने लगा।

शाम को माधवराव आया। फिर से गप्पों का सिलसिला आरंभ हुआ। उसने समाचार सुनाया कि छावनी अमारा से हटा दी गयी है और उसे शेखसाद ले गये हैं। कुतेर आमारा पर मोरचे लगाने है इसी की यह तैयारी है। शिधू का पोस्ट आफिस भी अमारा से शेखशाद ले जाया गया। कुरना की छावनी में जो पलटनें थीं उन्हे शेखसाद जाने का हुक्म हो गया था।

शिधू के सामने सवाल था कि अर्जुन का क्या हुआ होगा? क्या वह अभी तक पोस्ट-आफिस में डाकिया ही होगा या कि उसे मोरचे पर जाने का हुक्म मिल गया होगा? परन्तु इसका पता लगने का कोई जरिया न था।

छावनी में बड़ी गड़बड़ी मच गयी थी। अस्पताल के लिए जो सामान खरीदा गया था उसमें का बहुत-सा सामान गायब था। उसका कहीं हिसाब ही नही मिलता था। ऐसे प्रमाण मिले थे कि आटे के बहुत से बोरे जो गोदाम से गायब हो गये थे, वे नजदीक के बाजार में बेचे गये थे और इसकी बड़ी बारीकी से तहकीकात हो रही थी। सौभाग्य से माधवराव का इस गोदाम से कोई ताल्लुक न था, वरना इस घपले के चक्कर में वह बेचारा भी फँस जाता।

मिलटरी के अपराधियों की तहकीकात सिविल अपराधियों की अपेक्षा अधिक कड़ाई से होती है। वह तहकीकात किस प्रकार होती है इसके बारे में माधवराव शिधू से बातें कर रहा था।

पुनर्मिलन

मादेलीन को सामने देखते ही शिधू उठकर बैठने की कोशिश करने लगा। परन्तु उसने अपने हाथ से उसे बिस्तर पर उसी तरह पड़े रहने के लिए बाध्य कर दिया। वह बोली—"अब आपको कैसा लगता है ?"

"आप इधर कहाँ ? आपको देखकर मैं आश्चर्य-चकित हो गया। क्या आपका फ्रान्स का काम पूरा हो गया ?"

"शिधू ! क्या यही मादेलीन है ?"—माधवराव बोला।

शिधू की चारपाई के बिल्कुल निकट कुर्सी खींचकर मादेलीन उस पर बैठ गयी और बोली—"उस काम से मैं ऊब उठी थी। जो इच्छा लिये मैं लड़ाई पर आई थी, वह इच्छा डाक या तार विभाग में काम करने से पूरी नहीं होती थी। वह काम मुझे बिल्कुल बाबूगिरी लगता। उसकी अपेक्षा रणभूमि पर घायल होने वाले सैनिकों की सुश्रुषा करने का काम, जो मैं अब कर रही हूँ, मुझे अधिक उत्साहवर्धक लगता है। अब आपको कैसा लगता है ?"

"अब बहुत अच्छा लगता है।" शिधू बोला —"मेरा ख्याल है एक-दो दिनों में मैं घूमने-फिरने लगूँगा।"

मादेलीन हँस पड़ी। बोली—"इतनी जल्दी न कीजिएगा। इससे कोई लाभ न होगा। जब तक डाक्टर इजाजत न दें, तब तक बाहर जाना उचित नहीं। आप लाख कहें कि बाहर जाऊँगा, पर डाक्टर जाने दें तब न ? अच्छा, यह बताइए, आपको इस वातावरण में कैसा लग रहा है ? बेलजियम फ्रन्ट पर भी आप कुछ दिन रह लिए हैं और अब यहाँ रह रहे हैं। इन दोनों स्थानों में आपको कोई फर्क मालूम होता है ?

"बहुत ज्यादा फर्क है।" शिधू गंभीरता-पूर्वक बोला—"मुझे किसी

की निंदा या प्रशंसा नहीं करनी है। पर वहाँ से यहाँ आने पर फर्क जरूर महसूस हुआ। वहाँ के लोगों के उत्साह और यहाँ के लोगों के उत्साह में जमीन-आसमान का फर्क है। वह वातावरण अलग था और यह अलग है। खाने-पीने के इंतजाम में भी फर्क है और अफसरों के बर्ताव में तो बड़ा भारी फर्क है। वहाँ फौजी अनुशासन बड़ी कड़ाई से पाला जाता था, फिर भी 'प्राईवेट लाईफ' में ऊँच-नीच का भेद महसूस न होता था। वहाँ मुझे जितना अपनापन महसूस होता था, उतना यहाँ नहीं होता। यहाँ तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सब किराये के टट्टू हैं। वहाँ का जलवायु भिन्न था, सारा वातावरण ही भिन्न था। क्या आप भी ऐसा महसूस नहीं करतीं ?"

"मैं यह कभी सोचती ही नहीं, इस विषय की परवाह ही नहीं करती। मैंने सेवा-धर्म स्वीकार किया है। कौन स्थान कैसा है, वातावरण कैसा है, इसकी कोई परवाह न करती हुई मैं मन लगाकर अपना काम करती हूँ। हर मोरचे पर मुझे आत्मीयता ही महसूस होती है। किसी प्रकार के भेद-भाव का विचार ही मेरे मन में कभी पैदा नहीं होता।"

"क्या सभी नर्स इसी भावना से काम करती हैं ?"—माधवराव एकदम मादेलीन के सामने आकर बोला।

उस अचानक पूछे गये प्रश्न से मादेलीन चौंक पड़ी। क्षणभर वह माधवराव के चेहरे की ओर देखती रही और शिधू की ओर मुड़कर बोली—"ये आपके मित्र हैं शायद ? इन से मैं मिल चुकी हूँ।"

फिर माधवराव की ओर मुड़कर बोली—"आपका प्रश्न ठीक है। परन्तु दूसरे क्या सोचते हैं, उन्हें क्या लगता है या उनका बर्ताव कैसा है, इस विषय में मैं किसी से कभी कोई पूछताछ नहीं करती और यह जानने की मुझे परवाह भी नहीं होती। मै स्वयं अपना काम सचाई और तत्परता से करती हूँ या नहीं, यही प्रश्न मैं अपने मन से बार-बार पूछती रहती हूँ। दूसरे लोग यदि अपना काम ठीक से न करें, तो मैं उनके काम में किसी भी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करती, क्योंकि वह मेरा

अधिकार नहीं। कौन किस तरह बर्ताव करता है, यह देखने का जिन्हें अधिकार है वे ही इन बातों को देख सकते है।"

"पर आपको कैसा लगता है, कम-से-कम यह तो मुझे बताइये न ?"

"दूसरों के गुण-दोष दिखाना मैं पसंद नहीं करती।

"मिस्टर जोशी का इंतजाम तो यहाँ ठीक है न ?"

हाथ नचाता हुआ माधवराव बोला—"अब आप बात न उड़ाइए। साफ-साफ बताइए कि यहाँ की दूसरी नर्सो के बारे में आपका ख्याल है ? क्या उनका बर्ताव भी आप ही की तरह है ?"

मुँह फेरकर मादेलीन बोली—"मै अपने काम में इतनी व्यस्त रहती हूँ कि दूसरी नर्स अपने काम किस तरह करती हैं, यह देखने को मुझे अवकाश ही नहीं मिलता।"

माधवराव शिधू की ओर मुड़कर मराठी में बोला—'देखा शिधू, कितनी चालाक लड़की है ? मुख्य प्रश्न को किस तरह टाल रही है ?"

शिधू खिन्नता से हँसा। मादेलीन लगातार उसकी ओर देख रही थी। टकटकी लग गई थी उसकी। शिधू ने भी अपनी आँखें उसकी आँखों में डाल दी थीं। वे एक दूसरे की ओर बड़ी आत्मीयता से देख रहे थे। माधवराव उन दोनों को देख रहा था। वे दोनों जानते थे कि माधवराव उनके पास बैठा है, फिर भी वे एक दूसरे की ओर उसी भाव से देखते रहे। यह देख माधवराव को आश्चर्य हुआ।

मादेलीन की दृष्टि सहज ही शिधू के गले पर गयी। उसके द्वारा दिया गया लाकेट उसके वक्ष पर झूल रहा था। मादेलीन ने जब उसे स्पर्श किया तो शिधू का हाथ भी लाकेट के पास पहुँचा।

हाथ से हाथ मिल गये। हाथ से हाथ पकड़े दोनों उसी स्थिति में चुपचाप बैठे रहे।

हाथ अलग न करते हुए मादेलीन ने कहा—"सोच रही थी कि आप शायद हिन्दुस्तान लौट गए होंगे। यह भी आशा कर रही थी कि आप का पत्र आएगा। आपका पत्र आए बिना आपका क्या पता है, यह

जानना संभव न था। आपकी पलटन वहाँ से कहाँ गयी इसका भी पता वहाँ किसी को न था। क्या आपको मुझे पत्र भेजने की कभी इच्छा नहीं हुई ?"

"हाँ, यह सच है।" —शिधू बोला—"मैंने पत्र नहीं भेजा और न मेरे ध्यान में आया कि आपको पत्र लिखूं। याद जरूर बनी थी। हर क्षण आपकी याद हरी रहती थी। पर पत्र भेजने का विचार जाने क्यों नहीं आया

मादेलीन सिर्फ हँस दी। यह देखकर माधवराव बोला—"हम हिन्दुस्थानियों की यही आदत है। याद हमें बराबर आती है। पर पत्र भेजने का आलस्य आता है। आप लोगों की कुछ रीतियाँ मुझे बड़ी पसंद हैं। आप लोग अपने मित्रों की जन्म-तारीखें नोट कर लेती हैं और उन तारीखों पर आप हर वर्ष उन्हें बधाई के तार या पत्र भेजती हैं? हमें अपने रीति-रिवाजों पर कितना भी अभिमान हो, पर व्यक्ति-विषयक आदान-प्रदान में हम अभी बहुत पिछड़े हुए है।"

"तुम सच कहते हो, माधव!" शिधू बोला—"किस का जन्म-दिवस किस तारीख को है, यह हमें याद नही रहता। यही नहीं, बल्कि हिन्दुस्थान में ऐसे बहुत कम लोग मिलेंगे जो स्वयं अपने जन्म की तारीख जानते हों। मुझे याद है मादेलीन ने भी मुझे अपनी जन्म-तारीख एक दिन बताई थी और मैंने उसे अपनी डायरी में लिख लिया था। पर वह डायरी अब मेरे पास है या गुम गई, इसका आज मुझे पता नहीं।"

मादेलीन ने झट-से अपना हाथ अलग कर लिया और घड़ी की ओर देखकर बोली—"मुझे अब जाना चाहिए। फुरसत मिलने पर फिर आऊँगी।" दोनों से हाथ मिला कर वह चल दी।

"कितनी चालाक लड़की है? कोई बात सीधी तरह से कहती ही नहीं।" माधवराव बोला।

"तो क्या इसे तुम चालाकी कहते हो?"—शिधू ने पूछा।

"नहीं, यह बात नहीं। मेरे कहने का मतलब यह है कि घुमा-फिरा

कर उत्तर देने के बदले उसे स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहिए था कि मैं नहीं बताना चाहती। यहाँ की नर्सों को मैं आज कई महीनों से देख रहा हूँ। उनके बर्ताव से भी पूरी तरह परिचित हूँ। पर तुम्हारी मादेलीन् इन नर्सों के दोषों पर परदा डालना चाहती थी।

शिघू आवेश से बोला—"जो काम करनेवाले होते हैं, वे अपना काम करते हैं, दूसरों की ओर ध्यान नहीं देते। अपने काम से काम और राम से राम जैसा स्वभाव होता है ऐसे लोगों का। हम हिन्दुस्थानी ही हैं जो अपना काम छोड़कर दूसरों के कामों में दिलचस्पी लेकर मेख निकाला करते हैं। बेलजियम फ्रन्ट के अस्पताल मैंने देखे है। वहाँ के कर्मचारी अपने-अपने काम में इतने व्यस्त रहते हैं कि एक को दूसरे की खबर नहीं होती। यहाँ की अस्पताल में मैं रोगी की हैसियत से भरती हुआ और मुझे नर्स मिली मादेलीन। इसलिए मुझे यहाँ की कोई विशेष जानकारी न हो पाई। अब एक बार दर्शक की हैसियत से यहाँ का भी अस्पताल देखना चाहूँगा।"

"अच्छे होने के बाद ही न ?" माधवराव बोला—"पर अच्छे होने पर क्या तुम यहाँ एक दिन भी रह सकोगे ? अभी-अभी ही देखना चाहो, तो देख सकते हो। पर यह भी शायद न हो सकेगा! तुमने कहा, वह सच है। बेलजियम फ्रन्ट की बात अलग है और यहाँ की अलग।"

शिघू से बिदा लेकर माधवराव चल दिया। शिवू यूँ ही पड़ा रहा। मादेलीन से अचानक भेंट हो जाने के कारण उसे एक प्रकार की मानसिक शान्ति आ गयी थी। उसी शान्ति के नशे में उसे नींद आ गयी। जब किसी ने आकर खाने के लिए उसे जगाया, तब वह चौंक कर उठा। उसका हाथ गले के लाकेट की ओर गया। उसने लाकेट निकाला और उसे खोलकर बहुत देर तक उसके भीतर रखे मादेलीन के चित्र की ओर वह देखता रहा। उसके सामने खाने के लिए पतला साबूदाना एक प्लेट में रख दिया गया था। पर उसकी ओर उसका ध्यान न था। दूसरे कमरों से बर्तन बटोरकर जिस समय नौकर फिर से शिघू के कमरे आया

तब भी उसका साबूदाना वहाँ ज्यों-का-त्यों रखा था। नौकर की आहट पाकर शिधू का ध्यान टूटा और उसने जल्दी-जल्दी साबूदाना खाकर प्लेट नौकर के हवाले कर दी।

वह बेचैन हो गया था। सोच रहा था, इतने दिन मैं हिन्दुस्तान को कैसे भूला रहा? मेरी याद बेलजियम फ्रन्ट तक पहुँचकर आगे हिन्दुस्थान तक क्यों न बढ़ी। उस फ्रन्ट पर ही क्यों अटक गयी?

रमा की मूर्ति उसकी नजरों के सामने मूर्त हो उठी। उसे लगा मेरी याद में वह सूखकर काँटा हो रही होगी। उसने अपनी बीमारी का उसे न लिखने का निश्चय किया। बीमार हो जाने के कारण उसने बहुत दिनों से घर पत्र नहीं भेजा था। वार्ड के नौकर से उसने पत्र लिखने का एक फार्म मँगाया और अपनी कुशलता का समाचार उसने उसमें लिखा।

पत्र बन्द करके डाक में छोड़ने के लिए वह उसे वार्ड के नौकर को दे ही रहा था, तभी मादेलीन वहाँ आ पहुंची। इस समय माधवराव के वहाँ हाजिर न रहने से दोनों के बीच कोई परदा न रह गया था। बातें करते समय उसने अब सारा सकोच छोड़ दिया था।

वह जाकर शिधू की चारपाई पर उससे सटकर बैठ गयी और उसने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसके चेहरे की ओर देखते हुए उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। कुंठित स्वर मे वह बोली—"आप की यह कैसी हालत हो गयी है? जीभ पर क्या आप थोड़ा भी कब्जा न रख सके? थोडे से खजूर के लिए जान पर खेल गये। लड़ाई पर आने वाले वीर को अपने मन पर पूरा अधिकार रखना चाहिए।

शिधू झेंप गया। यह देख कर कि मेरा स्वास्थ्य देखकर मादेलीन का हृदय भर आया है, वह भी गदगद हो गया। "बोला मुझ से आप इतना स्नेह क्यों रखती हैं? इस अस्पताल में आये आपको बहुत दिन हो गये हैं। इस बीच आपने अनेक बीमार देखे होंगे, उनकी सुश्रुषा की होगी, पर सिर्फ मेरे लिए ही आप इतनी आत्मीयता क्यों दिखाती हैं।"

यह फ्रान्स की भूमि का सम्बन्ध है।" मादेलीन ने गम्भीरता से कहा—"मेरी मातृभूमि पर हम दोनों का परिचय हुआ। इंग्लैंड के साथ हिन्दुस्तान के वीरों ने आकर फ्रान्स की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया है। अगर इस के लिए हम लोग आप लोगों के कृतज्ञ न रहें, तो आपके देश के उपकार-भार से हम उऋण कैसे होंगे ? सिर्फ इसीलिए मैं मेसापोटामिया आई हूँ। फ्रेन्च और अँग्रेज सैनिकों की सुश्रुषा बहुत स्त्रियाँ कर रही हैं। परन्तु किसी भी प्रकार का स्वार्थ न होते हुए जिन हिन्दुस्थानियों ने फ्रान्स की रणभूमि पर अपना खून बहाया है, उन हिन्दुस्थानियों की सेवा करने के लिए मुझे इस रणभूमि पर आना पड़ा। आप यहाँ मिलेंगे, यह मैंने कभी न सोचा था। परन्तु आप मिल गये। और मिले भी मौत की घड़ियाँ गिनते हुए ! आप को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। कैसा विलक्षण संयोग ! इस लड़ाई के जमाने में जितने चमत्कार हो रहे हैं, उतने शान्ति-काल में कभी हुए हों, ऐसा नहीं दिखाई देता। यह लड़ाई न होती, तो आप का और मेरा परिचय भी कैसे होता ?"

आप की मातहती में एक टेलिग्राफिस्ट के रूप में मैं आई। उससे पहिले मैं एक अँग्रेज की मातहती में वही काम कर रही थी। उस अँग्रेज ने मेरी मातृभूमि के बारे में मुझ से कोई पूछताछ नहीं की। वह करता भी क्यों ? इंग्लैंड और फ्रान्स दोनों एक दूसरे के नजदीक जो हैं। उसे फ्रान्स की जानकारी है। फिर अँग्रेज है। अपना "बुलडागी" स्वभाव कभी नहीं छोड़ेगा। पर आपने मुझ से फ्रान्स के बारे में पूछा। हम लोगों का रहन-सहन, हम लोगों के आचार-विचार और हम लोगों का साहित्य यह सब आपने बड़ी दिलचस्पी और कुतूहल से जानना चाहा और मैंने आपको सब बताया। उसी से हम दोनों में यह आत्मीयता पैदा हुई। मैंने भी आप से हिन्दुस्थान के बारे में बहुत सी बातें पूछीं और आपने वे बड़े प्रेम और उत्साह से बतायीं। उनका प्रभाव मेरे मन पर पड़ा। अभी आपसे भेंट होती चाहे न होती, पर इस लड़ाई के खत्म होने के

बाद आपके उस अभागे देश को देखने के लिए मैं जानबूझकर वहाँ जाती। परन्तु जब मुझे पता चला कि हिन्दुस्थान के वीर मेसोपोटामिया की रणभूमि पर लड़ रहे हैं और वहाँ नर्सों की जरुरत है, तब अपने एक मित्र की सहायता से मैंने अपनी बदली इस रणभूमि पर करा ली। हमारे देश के लिए अपना खून बहानेवाले हिन्दुस्थानी वीरों की थोड़ी भी सेवा कर सकूँ और उपकार-भार से थोड़ी भी उऋण हो सकूँ इसीलिए मैं यहाँ आई। संयोग से ऐसी परिस्थिति में यहाँ आप से भी भेंट हो गई। डाक्टरों ने आशा ही छोड़ दी थी, पर अपनी पत्नी के सौभाग्य से आप बच गये। अब आप को कोई भय नहीं। शीघ्र ही आपको अपनी ड्यूटी पर वापिस जाना होगा और कौन कह सकता है हम फिर कब मिलेंगे?"

बातें करते-करते आखिर उसकी दृष्टि शून्यवत हो गयी थी। अज्ञात की मंजिल को निहारने के लिए अपने अन्तरंग में देख रही थी।

बात समाप्त होते ही वह स्तब्ध हो गयी। शिधू भी कुछ न बोला।

वह क्षण बड़ा गम्भीर था। शिधू का हृदय भर आया था। उसे लगा, स्वदेश-प्रेम की यह कितनी उज्ज्वल भावना है! हम हिन्दुस्थानियों के हृदयों में स्वदेशों-प्रेम की जड़ें क्या इतनी गहराई तक घुसी हैं?

उसका मन "हाँ" में उत्तर न देता।

मादेलीन का हाथ अभी तक शिधू के हाथों में था। मादेलीन ने उसे छुड़ाने का प्रयत्न न किया और न शिधू ने ही अपना हाथ पीछे हटाया। उसकी खाट पर उसके नजदीक बिल्कुल उससे सटी हुई वह बैठी थी। उस रुग्ण दशा में भी उसके मन की भावनाएँ हिल उठीं।

नजरों के सामने से एकदम दृश्य झूल गया। कलंबस्त गाँव का उसका घर, उसके खेत, उसकी मां, उसकी सहधर्मचारिणी रमा! वह मादेलीन को लक्ष्य करके बोला, "स्वदेश के प्रति आपका यह ज्वलन्त प्रेम देखकर मुझे बड़ा कुतूहल होता है। मैं हृदय से आपकी सराहना करता हूँ। मैं निर्लज्ज हो कर आपसे कहना चाहता हूँ कि हम हिन्दुस्थानी लोग

इस वृत्ति से अभी तक वंचित हैं।"

खिन्नता से हँसती हुई मादेलीन बोली—"इसीलिए आप लोग स्वतन्त्र देश के रूप में हमारी मदद करने नहीं आए। हम फ्राँसीसी लोग लोक-सत्तावादी हैं। राजभक्ति किसे कहते है यह हम नहीं जानते। प्रजातंत्र से हमारा राजशासन चलता है। देश के प्रति हमारा प्रेम, देश-भक्ति और राजभक्ति में नहीं बँट जाता। हिन्दुस्तान का इतिहास मैंने पढ़ा है। पहिले से ही आपके इतिहास में राजभक्ति का बड़ा महत्व रहा है। आपके पुराने उपदेशों में और ग्रन्थों में देश-प्रेम का नाम तक नहीं मिलता। हिन्दुस्थान जिस समय स्वतन्त्र था, उस समय यदि कोई विदेशी-आक्रमण उस देश पर होता, तो आप लोग अपने राजा के लिए लड़ा करते, देश के लिए नहीं। आपकी राष्ट्र-भक्ति राजभक्ति पर केन्द्रीभूत हो जाने के कारण जो भी राजा आता, आप उसे ही अपना राजा समझते, राजधर्म के अनुसार यह राजभक्ति क्या है, यही हम लोग नहीं समझ पाते। हमारी भक्ति केवल अपने देश के प्रति ही होती है। हमारा शासन चाहने वाला हमारे द्वारा चुना गया एक प्रेसीडेन्ट होता है। वह यदि हमेशा के लिए रहता, तो उसके प्रति हमारे हृदय में जो भावनाएँ आज हैं, उनका रूपान्तर राजभक्ति में हो जाता। परन्तु वह हमेशा बदलता रहता है। इसलिए हम प्रेसीडेन्ट-भक्ति के शिकार नहीं हुए और इसीलिए हमारी देशभक्ति विशुद्ध और एकतंत्र रही।"

प्रजातत्र राज्य-प्रणाली के बारे में वह बहुत देर तक बातें करती रही। वह वर्णन करते समय उसे जो उल्लास आया था, उसे देखकर शिधू के मन पर बडा विलक्षण प्रभाव पड़ा। सामाजिक विषयों पर उन दोनों में कोई चर्चा न हुई। व्यक्ति के लौकिक प्रपंच की अपेक्षा राष्ट्र के प्रपंच में ही उनका मन पूर्ण रूप में रंग गया था।

उसके सानिध्य से तात्कालिक उत्पन्न हुई वैयक्तिक वासनाएँ शिधू के हृदय से क्रम-क्रम से विलुप्त हो गयीं। जब उसे मालूम हुआ कि कृतज्ञता को महसूस करने के कारण ही वह उसके प्रति इतनी श्रद्धा

दिखा रही है, उस समय उसके हृदय में क्षण-भर के लिए जो वैयक्तिक वासना उत्पन्न हुई थी, वह सहज ही नष्ट हो गयी।

उससे विदा लेकर मादेलीन चली गई। इसी समय माधवराव आया। जा रही मादेलीन पर उसकी नजर पड़ गई थी।

"शायद फिर आई थी वह छोकरी !"—माधवराव बोला।

माधवराव के इन उद्‌गारों को सुनकर शिधू को दुख हुआ। वह बोला—"ऐसा क्यों कहते हो माधवराव ? अपना घर-बार छोड़कर घायल सिपाहियों की सुश्रुषा करने वह इतनी दूर अकेली आई है। क्या तुम्हारी दृष्टि में उसके इस स्वार्थ-त्याग का कोई मूल्य नही ? हम भी लड़ाई पर आये हैं। पर हम सेवा करने नहीं आये है। पैसा कमाने आये हैं, पेट के लिए आये हैं। वहां हमारा आधी रोटी से पेट नहीं भरता था, इसलिए उसे चौगुनी पाने के लिये आए हैं। लालची की तरह हम इस रणभूमि पर आये हैं। क्या यहाँ हम अपने देश के लिये लड़ रहे हैं ? लड़ाई शुरू हुई यूरोप में और उसकी आँच लगी एशिया को। पर हिन्दुस्तान से उसका क्या सम्बन्ध है ?"

माधवराव शर्मिन्दा हो गया और बोला—"सच है। कम-से-कम मेरे बारे में तो, यह जरूर सच है। मैं यहाँ सिर्फ पैसे कमाने की आशा लेकर आया हूँ। मुझे विदेशों में घूमने का भी शौक है। सरकार के खर्च से विदेश घूमने का यह मौका मिला, तो मैंने उसे हाथ से न जाने दिया। पर घर से इतनी दूर आने का जो साहस किया है, वह सिर्फ पैसे कमाने के लिए ही किया है। हिन्दुस्तान में पन्द्रह रुपये की नौकरी पाने के लिए मैं दो साल तक सिर पटकता रहा, पर नौकरी न मिली और यहाँ आते ही सवा सौ रुपये महीने की नौकरी मिल गई ! ऊपर से रहना-खाना-कपड़ा सब मुफ्त ! इसके लिए गाँठ से एक कानी कौड़ी भी खर्च नहीं करनी पड़ती। माफ करना, जोशी ! हमारी यह महाराष्ट्रीय वृत्ति स्त्रियों के बारे में हमेशा बड़ी संकुचित होती है। दुनियाँ के व्यवहार में निःसंकोच घूमने वाली स्त्री को जब हम कहीं देखते हैं, तो उसके बारे

में हम कुछ भी अनाप-शनाप उद्गार निकालने लगते हैं। आज तुम्हें वचन देता हूँ कि भविष्य में स्त्रियों के प्रति ऐसी संकीर्ण-हृदयता मैं कभी नहीं दिखाऊँगा।

छावनी की हलचलें शुरू थीं। उनके बारे में बातें करता हुआ माधवराव बहुत देर तक बैठा था। उसके जाने पर शिधू मादेलीन की बातों का विचार करता हुआ बिस्तर पर पड़ा रहा।

———

खून की धार

लगभग एक सप्ताह के पश्चात शिधू को अस्पताल से डिस्चार्ज मिला। उसे शेखसाद के फील्ड-आफिस जाने का हुक्म मिला था।

जाते समय जब वह माधवराव से विदा लेने गया, उस समय बेचारे माधवराव का कंठ एकाएक भर आया। जब तक शिधू अस्पताल में था, तब तक उन दोनों में काफी घनिष्ठता हो गई थी। दोनों का दर्जा एक ही होने के कारण माधवराव शिधू से सभी बातें दिल खोलकर कह सकता था। उस छावनी में जो अन्य महाराष्ट्रीय थे, वे प्रायः सभी आफिसर थे या डाक्टर थे। इसलिए माधवराव की उनसे घनिष्ठता होना संभव न था और इसीलिए शिधू जिस समय वहाँ से हमेशा के लिए जाने लगा, उस समय माधवराव को सूना-सूना सा लगने लगा।

मादेलीन से विदा लेने के लिए शिधू को जाना आवश्यक ही था। माधवराव भी उस समय उसके साथ था। उसे टालना शिधू के लिए संभव न था।

शिधू बड़े असमंजस में पड़ गया। मादेलीन से विदा लेते समय यदि फ्रान्स जैसा ही यहाँ भी हुआ, तो माधवराव अपने मन में क्या सोचेगा?

जी कड़ा करके वह मादेलीन से मिलने गया। मादेलीन को मालूम हो गया था कि शिधू को अस्पताल से डिस्चार्ज मिल गया है और अब वह अपने काम पर लौट रहा है। पहिले दोनों ने हाथ मिलाये। इसके बाद शिधू ने मादेलीन से कहा—"मैंने नहीं सोचा था कि अब हम कभी फिर मिल सकेंगे। पर हम मिल ही गये। आगे की क्या कह सकते हैं? मैं फील्ड आफिस जा रहा हूँ। वहाँ से जो समाचार आ रहे हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ बहुत ज्यादा खतरा है। किस पर कौन सी

आपत्ति आ जाए कोई कुछ नहीं कह सकता। अगर बचकर जिन्दा यहाँ लौट आए और तब तक आप भी यहीं रहीं, तो भेंट जरूर होगी। वरना…''शिधू को आगे शब्द नहीं सूझे।

" वरना हमारी मुलाकात मन-ही-मन में होगी या कि भावुक लोग जैसा कहते हैं, अगर कहीं स्वर्ग है तो फिर स्वर्ग में होगी।" मादेलीन बोली।

"ऐसा क्यों कहती हो मादेलीन!"– माधवराव बोला— "ऐसी अशुभ बात मन मे क्यों लाती है? हम यही क्यों न सोचें कि सब बातें ठीक ही होंगी। कुछ दिनों के बाद यह लड़ाई बन्द हो जाएगी। यहां की छावनियाँ उठ जायेंगी। और हमारा हिन्दुस्तान देखने के लिए आप भी हमारे साथ हिन्दुस्तान चलेगी। ऐसी बात हम क्यों न सोचें?"

"मैंने वह इसलिए कहा, क्योंकि यह लड़ाई है!"—मादेलीन ने कहा—"रणभूमि पर मृत्यु की याद हमें पहिले रखनी चाहिए जिससे हमें फिर निराश होने का भय नहीं होता। आप जैसा कहते हैं यदि वैसा हो जाए तब तो आनन्द ही है। पर यदि न हुआ खैर, छोड़िये भी ये बातें। विदा के वक्त इन विचारों की क्या जरूरत?"

तीनों की पलकें गीली हो गयी थीं। विदा लेकर शिधू जाने लगा तो उस समय उसका हृदय धड़क रहा था।

सौभाग्य से बेलजियम-फ्रन्ट की पुनरावृत्ति यहाँ नहीं हुई।

वह जहाज में बैठा। उस समय वह कुछ खिन्न हो गया। बेलजियम फ्रन्ट की पुनरावृत्ति की लालसा उसके हृदय में थी। पर वह माधव के कारण न हुई। उस समय यह उसे अच्छा लगा था, परन्तु बाद में, उस आकाँक्षा की पूर्ति न होने के कारण उसे दुख हुआ।

उसके सामने जो प्रश्न था, वह यही था कि क्या मादेलीन का स्वभाव बदल गया या कि उस तरह का स्वागत सिर्फ उसकी मातृभूमि पर ही संभव था? पराये मुल्क में आने के कारण क्या उसने अपने आचार-विचार बदल दिये या कि उसकी भावनाएँ भिन्न दिशा में मुड़

गयी ? या कि माधवराव उसके साथ था, सिर्फ इसीलिए यह बात न हुई ?

शेखशाद के फील्ड-ग्राफिस में ग्राकर जब वह दाखिल हुग्रा, तब यह देखते ही कि ग्रर्जुन ग्रब भी वहां है, उसका हृदय भर ग्राया। ग्रर्जुन दौड़ता हुग्रा ही उसके पास गया ग्रौर उसने कसमसाकर उसे ग्रपनी भुजाग्रों में भर लिया।

"मेरी जोखूमाई ने मेरा पटेल ग्रंत में लाकर मेरे हवाले फिर कर दिया।" ग्रर्जुन लगातार उसके चेहरे की ग्रोर टकटकी लगाये देखता हुग्रा बोला—"मैने यहाँ दिन कैसे काटे, इसकी तुम्हे कोई कल्पना नहीं हो सकती। यहाँ कौन था जो मुझे तुम्हारी खबर देता। ग्रपने गाँव की खबरें यहाँ मिल सकती हैं, परन्तु यहाँ से दो मील दूर उस ग्रस्पताल से खबर पाना बड़ा कठिन है। रोज मन-ही-मन छटपटाता था। व्याकुल हो रहा था। जोखूमाई की मनौती मानता था। ग्रन्त में मेरी माई ने मेरी पुकार सुन ली ग्रौर तुम ग्रच्छे होकर फिर यहाँ ग्रा गये। यहाँ तुम्हारे स्थान पर एक ईसाई बाबू ग्राया था। उसने मेरी नाक में दम कर दिया। मुझे इतना तंग किया कि तुम से क्या कहूँ। वह मेरी बोली नही समझता था ग्रौर उसकी भाषा मेरी समझ में नही ग्राती थी। कहता था कि मराठी जानता है। पर यह भी नहीं जानता था कि "श्री" क्या होती है। बड़ी धूम मचा रखी थी उसने यहाँ। ग्रगर किसी पत्र पर लिखा पता उससे पढ़ते न बनता, तो वह उस पत्र को ही फाड़कर फेंक देता। सिपाही बेचारे रणभूमि पर रहते है। रात-दिन मौत की छाया उन पर फैली रहती है। वे घर के पत्र के लिए कितने उत्सुक रहते हैं यह हमीं जानते हैं ग्रौर वह चांडाल यहाँ बैठकर जब उनके पत्र फाड़ने लगता तो मुझे ऐसा लगता जैसे कोई मेरा कलेजा ही फाड़ रहा है। खंदकों में पड़े सिपाही घर के पत्रों की ग्रोर कितनी ग्राशा लगाये बैठे रहते होंगे, इसकी उस दुष्ट को क्या कोई कल्पना ही न रही होगी?"

"ग्रजी, छोड़ो भी।" शिधू बोला—"ग्रब तो मै ग्रा गया हूँ न ?

अब सब ठीक हो जाएगा। अब किसी को कोई असुविधा न होगी।"

अर्जुन को अस्पताल का हाल सुनाने में शिधू का वह दिन गुजरा। दूसरे दिन से नित्य का डाकखाने का काम शुरू हो गया, वही पत्रों का, पार्सलों का और मनीआर्डरों का बँटवारा। उस रूखे जीवन से शिधू ऊबने लगा। उसे लगने लगा, इससे तो बीमार होकर अस्पताल में पड़े रहना ही अच्छा।

लड़ाई पर आये इतने महीने हो गये थे, पर उसके अन्तरतम की इच्छा पूरी होने का मौका अभी तक उसे नहीं मिला था। इस पर वह विचार करता। अर्जुन से एक दिन उसने कहा—"तुम पलटन में सिपाही थे, इसलिए लड़ाई पर आये। पर मैं यहाँ क्यों आया, यह मैं स्वयं नहीं समझ पाता। यह सच है कि यहाँ मुझे वहाँ की अपेक्षा वेतन अधिक मिल रहा है। पर सिर्फ अधिक वेतन पाने के हेतु से ही मैं यहाँ नहीं आया हूँ। मुझे प्रत्यक्ष लड़ाई पर जाना था इसलिए आया। पर यहां लड़ाई कहाँ है? लड़ाई के वर्णन पढ़कर मैंने अपने मन में उसकी कल्पना का जो चित्र बनाया था, वह चित्र मैं यहाँ नहीं देख रहा हूँ। तुम मोरचे पर गये थे। खंदकों में बैठकर लड़े थे। कम से-कम तुम्हें यह संतोष तो है।"

"मुझे संतोष है ?"—अर्जुन हँसता हुआ बोला—"वह कैसा संतोष कहाँ हैं, यह हमें आँखों से दिखता नहीं। बंदूक चलाने का हुक्म मिला कि बंदूक चला देते है। इसके परे हमारी मर्दानगी नहीं जाती। हवाई जहाज हमारे सिरों पर मँडराते रहते हैं। कभी-कभी ऊपर से बम भी बरसा देते हैं। परन्तु जब तक शत्रु अपने सामने न हो, तब तक लड़ाई में रंग नहीं चढ़ता। कोई कहते हैं कि आमने-सामने खड़े होकर भी हुई लड़ाई हुई थी। एक दूसरे के सीने में बागनेट घुसेड़े गए थे, ऐसा भी कोई कहते हैं। पर यह भाग्य मेरे हिस्से में नहीं आया। इसलिए मेरे शरीर में भी जो खुमखुमी है वह अभी तक शान्त नहीं हुई। और अब तो उन्होंने मुझे डाकखाने में डाकिया बनाकर भेज दिया है। यहाँ

तुम हो इसलिए खुश हूँ। वरना मैं तो भाग जाता एक दिन इस लड़ाई से ?"

अर्जुन बके जा रहा था। पर शिधू के कानों में उसकी बातें पड़ रही थीं या नहीं, उसका मन अन्यत्र ही भ्रमण कर रहा था। मादेलीन द्वारा बतायी गयी देश-भक्ति और राजभक्ति की परिभाषायें उसके मनः चक्षु के सामने झूल रही थी। देशभक्ति और राजभक्ति दोनों में जो भेद है उसके कारण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के मन में राष्ट्रीयता की प्रस्थापना किस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप में होती है, इसका वह विचार कर रहा था। बिना राजभक्त हुए कोई देशभक्त कैसे हो सकता है, इसका वह निराकरण न कर पाता। छत्रपति शिवाजी का जमाना उसकी नजरों के सामने मूर्त हो उठा। पेशवाओं का इतिहास तो अभी हाल ही का था। लोकमान्य तिलक द्वारा महाराष्ट्र में आरम्भ किये गये आन्दोलन का शिवाजी के नाम पर ही सूत्रपात हुआ था। यदि अत्यन्त प्राचीन काल की ओर दृष्टिपात किया जाए, तो हम देखते हैं कि जब महाराष्ट्र का शासन देवगिरी के यादव करते थे तब भी महाराष्ट्र की निष्ठा यादव, भोंसले और पेशवाओं के घरानों के प्रति थी। सिर्फ महाराष्ट्र के बारे में नहीं, बल्कि अखिल हिन्दुस्थान में राजभक्ति की बातें बोली जाती थीं। पर ये नाम अलबत्ता छोड़ दिये जाते थे। हिन्दुस्थान में हो या महाराष्ट्र में हो, किसी नये प्रकार की शासन-प्रणाली की निर्मिति के विषय एक अस्पष्ट-सौ कल्पना साधारण जनता के सामने थी।

प्रजातंत्र राष्ट्रों के बारों में हमें जो कुछ थोड़ी-सी जानकारी थी, उस में यह राष्ट्रभक्ति किस मध्य-बिन्दु पर केन्द्रित होती थी, इसकी निश्चय रूप से शिधू की कोई कल्पना करते न बनती थी। वह सब उसने सिर्फ इतिहास में पढ़ा था। अनुभव जन्य ज्ञान की थोड़ी भी झलक न होने के कारण प्रजातंत्र राज्य में राज्य-निष्ठा के लिए मध्यवर्ती संस्था कौन सी है, इसका निर्णय सामान्य जनता अभी तक नहीं कर पाई है, यही शिधू को लगा।

शिधू ने सोचा इन सब बातों का विचार करने की मुझे क्या जरूरत ? डाकविभाग के एक नौकर की हैसियत से मैं यहाँ नौकरी बजा रहा हूँ। हिन्दुस्थान लौटने पर भी यही काम करूँगा, प्रमोशन लूँगा और फिर बाद में पैंशन !

यह तनख्वाह कौन देता है,—प्रमोशन देना किस के हाथ में है, पैंशन किस की तिजौरी से आती है,—यह सब जानने की हमें आवश्यकता क्या है ? परिवार की परवरिश करना हमारा कर्त्तव्य है और इस कर्त्तव्य का पालन करने का साधन यह नौकरी है। जब तक तनख्वाह मिलती है, पैंशन मिलती, है तब तक देने वाला कौन है, यह जानने माथापच्ची हम क्यों करे ?

नौकरी के लिए ही मैं लड़ाई पर आया हूँ। लडाई पर आने के कारण मेरी तनख्वाह कुछ गुनी अधिक बढ़ गयी है। चार पैंसे बचाने का अवसर मिल गया है। फिर यह लड़ाई कौन, किस लिए और क्यों लड़ रहा है, इसकी पूछताछ करने की हमें जरूरत क्या ?

उसने विचार करना कुछ समय के लिए छोड़ दिया। पिछले आठ-दस साल से हिन्दुस्थान में चल रहे आन्दोलन उसकी नजरों के सामने मूर्त होने लगे—। उस समय के समाचार पत्र, उनमें छपे लेख, उन लेखों के लेखकों पर हुए राजनैतिक मुकदमें, उन लेखकों को मिली सजाएं, उन सजाओं के कारण अखबारों का प्रकाशन बंद हो जाना, बंग भंग का आन्दोलन, अलीपुर बम केस, कलकत्ता में चल रहे आन्दोलन, विलायती चीजों के बहिष्कार की धूम और लोकमान्य तिलक के जेल जाने के बाद आन्दोलन का ठंडा पड़ जाना—ये सब बातें उसे याद आने लगीं। मुझे एक नौकर को क्या जरूरत इन बातों से मन को इस तरह समझाने की कोशिश करने लगा। पर मन न सुनता था।

अपने देश के लिए खून बहाने वाले विदेशी लोग अपने संकट के समय अपनी मदद के लिए आये इस उपकार-भार से उऋण होने के लिए कोई तनख्वाह न लेकर, प्रमोशन की अपेक्षा न करके, पैंशन की

थोड़ी भी इच्छा न रखके, मादेलीन मेसोपोटामिया की समर-भूमि पर क्यों आई ? वह धनी नहीं थी। तुलना करके देखा जाए तो उसकी और शिधू की पारवारिक स्थिति प्रायः एक सी ही थी। ऐसा होते हुए भी वह इस व्यर्थ की झंझट में क्यों पड़ी ? नौकरी के हेतु से वह निश्चय ही लड़ाई पर नहीं आयी थी। कुछ समय तक वह सरकारी नौकरी कर रही थी इस में शक नहीं। पर वह करती थी"अपनी सरकार" की नौकरी। पेट के लिए नहीं। उसके स्वदेश पर संकट आ गया था, इस-लिए। पर उस नौकरी को भी छोड़कर इतने मील दूर आकर वह हिन्दुस्थानी सिपाहियों के जख्म क्यों धो रही हैं ? हैजा के रोगियों के दस्त के बेडपेन क्यों उठा रही है ?

उसने अपने मन से पूछा—क्या हिन्दुस्थान की कोई यमुना, सरला या गोदावरी इन कामों को करने के लिए तैयार होती ? मेसोपो-टामिया की समर-भूमि पर एक भी हिन्दुस्थानी स्त्री नर्स होकर नहीं आयी थी।

"क्यों नही आयी ?"—वह ओठ चबाता हुआ अपने आप से पूछने लगा। क्या हुआ हिन्दुस्थानी स्त्रियों को यहां न आने के लिए ? उन्हें क्यों नहीं आना चाहिए ? लड़ाई का अनुभव उन्हें भी क्यों नही लेना चाहिए ? आगे यदि लड़ाई हिन्दुस्थान में हुई तब वे क्या करेंगी ? क्या यूरोपियन नर्सो का मुंह ताकेंगी ? विलायत से नर्सें बुलाई जायेगी ? या कि मर्दों को ही ये काम करने होंगे ? हमारी हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ आलस्य में पड़ी हुई सिर्फ चूल्हा और चक्की सम्हालने में ही अपनी जिन्दगी काट रही है। क्या उन्हें ऐसी जिन्दगी पर शर्म नहीं आती ? मैं लड़ाई पर आया पर रमा को भी लड़ाई पर क्यों नहीं आना चाहिए ? अर्जुन पलटन में नौकरी करता है। सुभद्रा को भी आकर बैडपेन क्यों न उठाना चाहिए ?

शिधू को लग रहा था कि सब लोगों को सब करना चाहिए। पर हिन्दुस्थान में ऐसा कहाँ सोचा जाता था ? जिस समय शिधू हिन्दुस्थान की विलायत से तुलना करता हुआ बेचैन हो रहा था, उसी समय

हिन्दुंस्थान के लोग लड़ाई की खबरें पढ़ने में तल्लीन हो गये थे। "अच्छा सबक सिखाया जर्मनी को" कहकर कोई हर्ष से तालियाँ बजाते। किसने किसको सबक सिखाया इससे इससे हमारा क्या संबंध ? इस में हमने क्या किया ? इस माथापच्ची से हमें क्या वास्ता ?

लड़ाई बन्द होने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। नयी-नयी परिस्थियाँ उत्पन्न हो रही थीं। केरेन्स्की नाम के किसी नेता ने रूस के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी। इंग्लैंड और रूस की मित्रता भंग हो गयी थी। तुर्किस्तान से खलीफा को निकाल बाहर कर दिया था। किस राजनिष्ठा से प्रेरित होकर तुर्क लोग अब लड़ते ? किस खिलाफत के लिए वे अब अपने प्राण देते ?

शिधू को लगा क्या मजे की बात हो रही है। इस विशाल सिंधु में मैं एक बूंद के समान हूँ। दुनिया की इस उथल-पुथल में मैं क्या कर सकूँगा ?

पर मेरे जैसी अत्यन्त क्षुद्र करोड़ों बूंदें एक स्थान पर आकर यह सिंधु निर्मित हुआ था। उस तूफान में भी भिन्न भँवरे घूम रही थीं। उन भँवरों की गति एक दूसरे से भिन्न दिशा में जा रही थीं।—छोटे-छोटे बाल्कन राष्ट्रों की उथल-पुथल हो गयी थी। लड़ाई समाप्त होने पर आस्ट्रेलिया, रूमानिया और सर्विया के नाम भी रहेंगे या नहीं, इसकी शंका उत्पन्न हो गयी थी।

सारे विचार उसने अपने मस्तिष्क से निकाल डाले और मनी-आर्डर जनरल भरना शुरू किया।

जनरल टाऊनसेंड ने कुतेल अमारा पर आक्रमण कर दिया था। घमासान लड़ाई होने की संभावना थी। शेखसाद से वह मोरचा अधिक दूर न था। वहाँ क्या होगा और क्या नहीं होगा इसकी सभी को चिन्ता हो रही थी। जनरल टाऊनसेन्ड द्वारा बोले गये इस धावे के बारे में सेना में दो मत थे। बहुतों की राय में वह आक्रमण न करना चाहिए था।

समाचार आया था कि कुतेल आमारा घेर लिया गया है। पर वह समाचार किसी विश्वस्त सूत्र से प्राप्त नहीं हुआ था। सांकेतिक भाषा में तार धड़ाधड़ आ रहे थे। उनका अर्थ शिधू न समझ पाता। परन्तु इतना अंदाज उसे हो गया था कि परिस्थिति जरूर भयंकर है।

यह मालूम हो जाने के कारण कि कुतेल आमारा में भयंकर लड़ाई होगी, अर्जुन बिल्कुल बेचैन हो उठा था। उसके साथी सिपाही वहाँ लड़ेंगे और वह यहाँ पोस्टमैन बना बैठा था, इसे दुख हुआ।

मशीनगनों के फेरों और तोपों की गड़गड़ाहटें लगातार कानों से टकरा रहीं थीं शेखशाद की समूची छावनी पर अस्वस्थता के बादल छा गये थे। अंत में कुतेल आमारा को घेर लिये जाने का समाचार आ धमका। अब कोई शक ही न रहा था। दिन पर दिन बीत रहे थे और जनरल टाऊनसेन्ड के पास रसद पहुँचाना बन्द हो गया था।

शेखसाद से छावनी हटाने का हुक्म हो गया था और उसके अनुसार छावनी उखाड़ने का सारा प्रबन्ध भी हो चुका था। सर्वत्र गड़बड़ मची हुई थी। हर आदमी अपना-अपना सामान बाँधने में खो गया था। खीमें उखाड़े जा रहे थे। सिर्फ पोस्ट-आफिस का खीमा उखाड़ने को बच रहा था।

आफिस के सारे कागज-पत्र शिधू ने समेट कर इकट्ठे किये। अपना सामान भी बाँधकर उसने एक तरफ रख दिया था।

इसी समय "घर्रघर्र" आवाज कानों में पड़ी। ऐसा लगा किसी तरफ काफी घमासान मची है। अर्जुन दौड़ता हुआ शिधू के नजदीक आ रहा था। इसी समय एक बड़ा भारी बम उन दोनों के बीच में आ गिरा। शिधू की आँखों के सामने चिनगारियाँ उडने लगीं अर्जुन का क्या हुआ यह वह न समझ पाया। आँखें खोलने कि वह कोशिश करने लगा—पर सुधबुध खो गयी थी।

शिधू बेहोश होकर गिर पड़ा। उसके सिर से खून की धार बह रही थी।

आखरी धक्का

रमा बेचैन थी। करीब डेढ़ महीने से शिधू का कोई पत्र नहीं आया था। वही शिकायत सुभद्रा की भी थी। अर्जुन ने भी घर कोई पत्र न भेजा था।

समाचार पत्रों में जो समाचार आते, उनमें भय और आशा का बड़ा विचित्र मिश्रण दिखायी देता। किसी दिन अत्यन्त भयजनक समाचार आ जाता, तो उसके दूसरे ही दिन अथवा एक दो दिन के बाद एक बड़ी विजय प्राप्त करने का भी समाचार आ धमकता। यह चक्र इसी प्रकार घूम रहा था, जैसे उसे कोई नियमपूर्वक चला रहा हो।

जब फौज के सफलतापूर्वक पीछे हटने के समाचार आते, तो इस पीछे हटने के पार्श्व में कोई भारी पराजय छुपी होनी चाहिए, ऐसी प्रत्येक को शंका होती।

सुभद्रा अब काफी लिख-पढ़ लेती थी। अपने पति का समाचार जानने के लिए समाचार पत्रों की खबरें पढ़ने की उसे जो तीव्र उत्कन्ठा थी, उसके कारण उसने पढ़ना बहुत जल्द सीख लिया था। लिखना सीखने के लिए अलबत्ता उसे बहुत अधिक समय लग गया। सुभद्रा के लिखने-पढ़ने की गाँव में चर्चा हुआ करती। समूचे कलंबस्त गाँव में लिख-पढ़ सकनेवाली नीच जाति की महिला एक भी न थी।

लेकिन रमा से शिक्षा पाकर सुभद्रा जब पढ़ने लगी, तो आसपास के गाँव की स्त्रियाँ भी उससे केसरी पढ़वाकर लड़ाई के समाचार सुनने के लिए जानबूझकर उसके पास आने लगीं। बाभन के घर जाकर समाचार पत्र की खबरें सुनने की अपेक्षा सुभद्रा से अखबार पढ़वाकर खबरें सुनना उन्हें अधिक आत्मीयता का लगता। दूसरे भद्र लोग जगह-जगह इक्ठा

होकर रोज समाचार पत्र पढ़ते। पर जब गाँव के नीच जाति के लोग वहाँ आते, तो वे उन्हें वहाँ से भगा देते।

नीच जाति के लोगों को इस तरह भगा देने में उन भद्र पुरुषों का कोई खास उद्देश्य न होता। परन्तु पढ़ने के बाद उन समाचारों पर चर्चा करते। यह चर्चा वे नीच जाति के लोग सुनें और उस पर आलोचना करें, यह उन्हें अच्छा न लगता।

परन्तु जब से सुभद्रा समाचार पत्र सुनाने लगी, तब से आस-पास के गाँव के नीच जातिवाले छोटे-बड़े लोग यशोदा के घर आने लगे। यद्यपि यशोदा को यह पसन्द न था कि उसकी बहू लिखना-पढ़ना सीखे, पर अब यह देखकर कि उसके अखबार पढ़ने के कारण दूसरे गाँव के छोटे-बड़े लोग उसके घर आने लगे हैं, उसे इसका अभिमान होने लगा।

सुभद्रा को भी इस पर गर्व होता। समाचार पत्र पढ़कर उसे समझने और पढ़कर दूसरों को सुनाने की उसकी पूरी तैयारी हो जाने के कारण सुभद्रा को रमा की यद्यपि अब जरूरत न थी, फिर भी लिखना-पढ़ना उसे रमा ने सिखाया था और उसके इस उपकार को भूल जाने की कृतघ्नता सफेदपोशों की तरह सुभद्रा में न थी। इसलिए रोज कम-से-कम एक बार उसके घर जाकर वह रमा से जरूर मिल जाती। उससे लड़ाई के बारे में बातें करती।

शिधू के लड़ाई पर जाने के बाद से रमा की वृति बिल्कुल बदल गयी थी। शिधू की संगति से वह बड़ी बातूनी हो ग.ी थी। पर अब उसकी यह आदत साफ छूट गयी थी। घन्टों यू ही मौन साधे वह घर के एक कोने में बैठी रहती। जब गोपिका उसे इस तरह बैठी देखती, तो उस पर वह नाराज हो जाती। पर सास की इस नाराजगी का उसके मन पर कोई असर न होता। वह बिल्कुल एकान्त-प्रिय और कुढ़नी हो गयी थी। जरा-जरा-सी बात पर वह चिढ़ उठती। गोपिका के मुंह से यदि भूलकर भी कोई अनुचित या टेढ़ा शब्द निकल जाता, तो वह क्रोध से उठा-पटक करने लगती।

उसके इस बर्ताव पर गोपिका नाराज न होती। रमा की मनःस्थिति को वह जानती थी। लड़ाई पर जो गया था वह जिस तरह उसका बेटा था, उसी तरह रमा का पति था। परन्तु रमा कुढ़ती रहे और गोपिका के मन पर कोई खास परिणाम न हो, इसका कारण विचारवान लोग समझ सकते थे। रमा की अपेक्षा गोपिका ने कितने ही अधिक बसन्त देखे थे। सब प्रकार के प्रसंगों से वह गुजर चुकी थी। उसने विपत्तियों के अनेक धक्के खाये थे। आपत्तियों के उन आघातों से उसका कलेजा कड़ा हो गया था।

रमा की बात यह न थी। उसके जीवन का यह पहिला ही संकट था। वह यद्यपि अभी लड़की ही थी फिर भी जब से सयानी हुई थी तब से आपत्ति का एक भी धक्का उसे नहीं लगा था। उसे सास बड़ी सज्जन मिली थी। पति हमेशा खुशदिल था। पड़ोसी उससे स्नेह रखते थे। पति नौकरी करके कमाता था और उसके मनोरथ पूर्ण होते थे। इस तरह उसे सर्वत्र सुख ही सुख था इसलिए संकट को सह सके इतनी मजबूती उस कोमल लड़की के कलेजे में अभी तक नहीं आई थी।

उस जमाने के हिसाब से वह एक कार्यक्षम स्त्री समझी जाती थी। उसकी उम्र अभी कोई अधिक न थी। विवाह होने के बाद थोड़े ही समय में प्रसन्न-मन पति का सहवास उसे अखन्ड रूप से प्राप्त हुआ था और इसीलिए यह वियोग उसे अत्यन्त दुःसह हो गया था।

परिस्थिति का यह लेखा लेने लायक दूर-दृष्टि गोपिका में होने के कारण उसने रमा के स्वभाव में हुए इस परिवर्तन के लिए उसे कभी नहीं दुखाया। लड़ाई में घायल होकर कुछ लोग लौट आये थे। उन लोगों से लड़ाई का हाल उन दोनों परिवारों को मालूम हो गया था। पर उस पर से शिधू और अर्जुन का कोई अन्दाज नहीं लग सकता था। लड़ाई से लौटे हुए लोग, वहाँ उन्हें जो कष्ट होते हैं, उनके बारे में प्रायः कुछ नहीं बताते। ऐसे लोग शत्रुदल की महत्ता का वर्णन करने में जितनी उत्सुकता दिखाते हैं, उतनी ही अपने दल को जोरदार बताने के

लिए अनाप-सनाप गप्पें भी हाँकते हैं। पलटन के सिपाहियों और उनकी भाषा से जो लोग परिचित हैं, उन्हें इसकी कल्पना काफी अच्छी हो सकेगी।

पर उन गप्पों से रमा डर जाती। जब वह अपने मन में यह सोचती कि ये लोग जो वर्णन सुना रहे हैं उसमें सत्य का अंश कितना है और अतिशयोक्ति कितनी है और उसे अपने विवेक की कसौटी पर कसकर देखती, तो उसका कलेजा भय से काँप उठता। यह बताने के लिए कि उन्होंने लड़ाई में बड़ा जौहर दिखाया, वे प्रतिकूल परिस्थितियों के जो वर्णन करते, वे सचमुच बड़े भयानक रहा करते। वे भयानक वर्णन ही रमा और सुभद्रा के ध्यान में उलझ जाते।

एक तरफ अखबार की खबरें और दूसरी तरफ घायल होकर लौटे सिपाहियों की बातें, इन दोनों के कारण रमा और सुभद्रा दोनों के मनों पर एक ही प्रकार का असर पड़ता।

एक दिन कुतेल अमारा के घेर लिए जाने का समाचार अखबार में आया। शिधू और अर्जुन दोनों वहीं आसपास कहीं हैं, ऐसा दोनों का अनुमान था। इसलिए अखबार में जब उन्होंने पढ़ा, तो उनका हृदय हिल गया। और ऊपर से कोई डेढ़ महीने से उनके कोई पत्र भी नहीं आये थे। दोनों को पक्का विश्वास हो गया कि जरूर कोई नई विकट विपत्ति उन पर आ पड़ी है। उस दिन से उन्होंने अपने खाने-पीने पर ध्यान देना छोड़ दिया। सच बात क्या है इसकी यथार्थ कल्पना यशोदा को न थी और गोपिका को भी न थी, परन्तु अपनी बहुओं को पहिले की अपेक्षा अधिक बेचैन देखकर वे भी मन-ही-मन घबरा उठी थीं।

उस समय के लगभग उन्हें पता चला कि एक सिपाही बसरा से बीमार होकर वापिस अपने गाँव आ गया है। उनके गाँव के नजदीक के ही एक गाँव में वह आया था। उसे बुलाने की उन्होंने कोशिश की। पर स्वास्थ्य अच्छा न होने का उसने बहाना बना दिया। बहाना कहने का मतलब यही कि वास्तव में वह इतना बीमार न था कि आ ही न

सकता। मामूली थकावट थी उसे, पर अच्छा हो गया था। दोनों सासें और बहुएँ उससे मिलने उसके गाँव गयीं।

पहिले तो इधर-उधर की दून झाडने लगा। अपनी बातों पर वह काफी नमक-मिर्च लगा रहा था। किसी भी तरह मुख्य बात पर न आता। उसने शिधू ने भेंट होने की बात बताई। पर यह बताना कि वह कहाँ है और किस हालत में है, वह टालने लगा। इस विषय में जब उससे सीधा प्रश्न पूछा जाता, तो वह दूसरी ही बात छेड़ देता। अर्जुन से उसकी भेंट कभी नहीं हुई थी। यह देखकर कि मुख्य बात बताने में वह टाल-मटोल कर रहा है, पहिले से ही भयभीत हुई बेचारी वे औरतें और भी अधिक भयभीत हो गयीं।

बहुत दिनों तक अस्पताल में था। उसे हैजा हो गया था। उस समय का हाल वह बता रहा था। अस्पताल में सामान की जो चोरी हुई थी, उसकी जैसी तहकीकात हुई थी और उसमें किन-किन अफसरों को क्या-क्या सजाएँ मिली थीं उन सब बातों के बारे में वह बड़े विस्तारपूर्वक बताकर. जब शिधू का हाल बताना टालने लगा, तब गोपिका ने उससे बिल्कुल सीधा प्रश्न पूछा।

वह बोली—"अब अस्पताल की बातें बस करो। मेरा शिधू तुम्हें कहाँ मिला था, कब मिला था और किस हालत में मिला था, यह पहिले बताओ।"

वह बोला—"तुम सुनकर घबरा जाओगी, इसीलिए मैं टाल कर रहा था। वैसे घबराने की कोई खास बात नहीं है। मैं जिस तरह हैजे से बीमार था, उसी तरह शिधू भैया को भी हैजा हो गया था। वहाँ का खजूर बड़ा खराब होता है। यही बात उनके साथ भी हुई। पर वे हैजे से बच गए। जब वे अच्छे हो गए, तो उनके बीमार पड़ने का हाल क्यों कहूँ, इसलिए मैं यह बताना जानबूझकर टाल रहा था। तुम्हारी बातों से ऐसा नहीं प्रतीत हुआ कि तुम उनकी बीमारी के बारे में जानती हो। इसीलिए मैंने अभी तक टाला।

"अब तो अच्छा चलने-फिरने लगा है न ?"—गोपिका ने पूछा ।

"चलने-फिरने लगे हैं ?" —वह सिपाही दाँत निपोरकर बोला—"अजी माता राम, यह क्या पूछती हो कि चलने-फिरने लगे हैं ? वे तो अब उससे भी आगे बढ़ गये हैं।" इतना कहकर हँस पड़ा ।

उसकी हँसी पर गोपिका चिढ़ उठी । बोली—"ठीक से क्या नहीं बताते ? जो भी सो साफ-साफ कह डालो न । मुझ को दुख न होगा और न उसकी घरवाली को भी को दुख होगा । कुशल से हो, तो हमें पूरा संतोष है । लड़ाई पर जाने के बाद आखिर मनुष्य अधिक करेगा क्या—अंडे खाएगा, माँस-मछली खाएगा, इससे अधिक और क्या चैन करेगा ? बहुत ही हुआ तो शराब पीने लगेगा । यही न ? पीता होगा शराब ? पिये, मुझे इसका कोई दुख न होगा ।"

'नहीं-नहीं ! ऐसी कोई बात नहीं है, बूढ़ी माँ !" वह सिपाही बोला—"पहिले जब वे फ्राँस में थे तब वहाँ माँस-मच्छी खाते थे। बीमार हो कर जब अस्पताल में भरती हुए तो उनकी वह आदत छूट गयी । डाक्टरों ने ही छुड़वा दी । बात यह थी कि फ्राँस में मच्छी खाना ठीक था । वहां इसका इंतजाम भी बढ़िया था । उन्हें पीने की आदत भी नहीं लगी । मैं जो कहता हूँ, वह बात ही दूसरी है ।"—ऐसा कह कर वह मन-ही-मन हँसता हुआ चुप हो गया ।

सास और बहू दोनों यह सुनकर घबरा-सी गयीं । माँस-मच्छी नहीं खाता, शराब भी नहीं पीता, तो फिर और क्या बात है ?

"अब भैया जो कुछ भी हो, सो साफ-साफ बता दो । हमें क्यों परेशान करते हो ? हमारे प्राण बिल्कुल गले तक आ गये हैं ।"

वह सिपाही सिर खुजाता हुआ बोला—"बात यह है । जब वे बीमार पड़े थे, तब उनकी सेवा के लिए एक नर्स आती थी । नर्स तो तुम समझती हो न ? नर्स याने दवा देने वाली स्त्री जिसे हम दायी कह सकते हैं । वह हिन्दुस्तानी नहीं थी । यूरोप की एक गोरी लड़की थी, याने मेम थी । उसने शिधू भैया की बड़ी सेवा की । डाक्टर कहा करते कि

उस गोरी लड़की की सेवा से ही उनकी जान बची, वरना उनकी हालत बहुत खराब थी। उनके बचने की आशा ही डाक्टरों ने छोड़ दी थी। पर उस मेम ने कमाल कर दिया। शिधू भैया को अपनी सेवा से मौत के मुँह से खींच लिया। जब शिधू भैया अच्छे हो गये, तो उस मेम को अपने साथ लेकर रोज घूमने जाने लगे। अँग्रेजी में जाने उससे क्या-क्या बातें करते। मै तो समझता नहीं था। मेमों की आदत ही होती है, चाहे जिस मर्द के गले पड़ जाना, उसके साथ अकेली घूमने जाना। हाथ में हाथ डाले सब के सामने घूमने जाते। इसमें चोरी से या छिपकर कुछ न होता। वहाँ आखिर चोरी थी किसकी? पहचान का कोई था ही नहीं। दोनों खूब हँसते-खेलते और मौज करते। हमारा शिधू भैया अच्छा सुन्दर तगड़ा जवान है और फिर उसे मिल गयी सुन्दर गोरी जवान मेम। थोड़ी देर खेला उसके साथ तो क्या हो गया? मेरी भी इच्छा होती, पर मुझ जैसे काले-कलूटे की ओर वे मेमें कैसे आकर्षित होतीं? वहाँ की आबहवा में शिधू भैया साहब की तरह गोरे हो गये हैं। इसलिए वह उन्हें साहब ही समझती। अच्छे होने के बाद जब उन्हें शेखसाद जाने का हुक्म मिला, तब मैं भी था उसी अस्पताल में। मेरी उनसे पहिले की कोई जान-पहचान न थी। वे भी मुझे नहीं पहचानते थे। इसलिए मैंने सोचा अपना परिचय व्यर्थ क्यों दूँ। उस समय उन दोनों को एक-दूसरे की बिदा लेते देखा, बस। अब और क्या बताऊँ? उसे कहने की भी क्या जरूरत? ऐसा तो होता ही रहा है। इसलिए मैं नहीं कह रहा था। शिधू भैया अब चले गये हैं अपनी नौकरी पर और वह छोकरी अस्पताल में नर्स का काम कर रही है। कौन उसे शिधू भैया के साथ जाने देता? शेखसाद में अगर अस्पताल होता तब जरूर वह अपनी वहाँ बदली करा लेती। उनके जाने के बाद उनके पलंग की ओर देख-देखकर वह अपना रूमाल निकालकर आँखें पोंछती रहती। मैं भी यह देखकर मन-ही-मन हँसता। ऐसा तो चलता ही रहता है बूढ़ी अम्मा! आप लोग इसके लिये दुःख न करें। यह सच है

कि मैंने अपने सामने उन्हें पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर नौकरी पर जाते देखा। मुझे छः महीने की छुट्टी देकर यहाँ भेजा इसीलिए मैं यहाँ आया। यदि मुझे छुट्टी न दी जाती, तो मुझे भी शेखसाद ही जाना पड़ता।"

एक ही बात को वह बार-बार दोहरा रहा था। इसी बात को बताने के लिए वह पहिले इतनी आनाकानी कर रहा था। पर अब उसी बात को अन्य बातों की तरह खूब नमक-मिर्च लगाकर विस्तारपूर्वक वर्णन करके कहने लगा।

अर्जुन के बारे में कोई जानकारी न मिलने के कारण यशोदा और सुभद्रा उदास हो गयीं और शिधू का समाचार इस रूप में प्राप्त होने के के कारण गोपिका और रमा उद्विग्न हो गयीं।

रमा तो पगली जैसी ही हो गयी। पहिले वह बात उसे सच ही न लगती थी। जब यशोदा ने कहा कि यह पलटनवाला गप्पें हाँक रहा है, उस समय उसने अपने आप का उस समय तक के लिए समाधान कर लिया था।

गोपिका का शिधू पर पूर्ण विश्वास था। वह बचपन से अत्यन्त धर्मभीरु था। पर कौन कह सकता है, भिन्न-भिन्न परिस्थिति में मनुष्य में क्या परिवर्तन हो जाएँगे। इस के बारे में छाती पर हाथ रखकर कोई कुछ नहीं कह सकता।

गोपिका को थोड़ी देर के लिए बुरा लगा और थोड़ी ही देर में वह उन सब बातों को भूल भी गयी। माता की ममता को परिस्थितियों के कारण ऐसी बातों का कोई महत्व नहीं मालूम होता।

परन्तु रमा के मन को काफी धक्का लगा। शिधू के स्वभाव से वह परिचित थी। उसकी वृत्ति को ठीक से वह पहचानती थी। इतना लंबा विछोह, पत्नी से भेंट की आशा कम, इस परिस्थिति में उसकी एक मेम से भेंट हुई और वह मुझे भूलकर उसके पाश में फँस गया। यह सोच-कर वह अत्यन्त उदास हो गयी। इस बात पर विश्वास रखूँ या न रखूँ, यही वह बार-बार सोचती, परन्तु जवान आदमी का क्या भरोसा ? यह

शंका मन में पैदा हुई और वह पुनः उद्विग्न हो गयी ।

कुतेल अमारा के घेर लिये जाने का अखबार में वर्णन आया। थोड़े ही दिनों में कर्नल टाऊनसेन्ड शत्रु की शरण गया और बहुत-सी सैनिक टुकड़ियाँ कैद कर ली गयीं । अनेक सैनिक मार डाले गये । कई पलटनें भी खत्म कर दी गयीं । ऐसी भयानक खबर अखबार में छपकर आयी ।

अंत में एक दिन पत्र भी आया । पत्र आये, पर वे शिधू और अर्जुन के पास से नहीं आये थे । वे पत्र आये थे कमांडिग आफीसर के आफिस से—

उन में सरकार ने यह सूचना भेजी थी कि बम का विस्फोट होने होने से शिधू और अर्जुन की मृत्यु हो गयी ।

पुनरागमन

विस्फोट होते ही सब तरफ धूल धूयें के घने बादल छा गये और एक दूसरे को देखना असम्भव हो गया। कुछ समय के बाद दो तीन आदमी छिन्न-भिन्न दशा में पड़े हुए दिखायी दिये। डेरे नष्ट हो गये थे। ढेर लगाकर रखा हुआ सैनिकों का सामान नेस्तनाबूद हो गया था।

थोड़ी देर के बाद उड़ी हुई धूल नीचे बैठी और धूयें का बादल भी साफ हो गया। जो आदमी बच गये थे, वे एक दूसरे को अब देख सके। अर्जुन काफी होश मे था। उसके हाथ में जख्म हो गया था। खून लगातार बह रहा था। वह जैसे-तैसे उठकर खड़ा हुआ और लड़खड़ाता हुआ शिधू जहाँ पड़ा था वहाँ गया।

शिधू बेहोश था। उसके सिर से खून की धारा बह रही थी, अर्जुन ने उसकी नब्ज देखी, हृदय की जाँच की और उस समय उसका कलेजा टूट गया। उस धक्के से वह स्वयं बेहोश होकर उसी के नजदीक गिर पड़ा।

कहीं से दौड़ते हुए डाक्टर आये। रेड-क्रास की गाड़ी भी आई। जल्दी-जल्दी डाक्टर गाड़ी से उतरे और जख्मियों की जाँच करने लगे। जो जीवित थे, उन्होंने जख्मियों की पहचान कराई। सब को देखने के बाद डाक्टर ने निर्णय किया कि अर्जुन और शिधू दोनों मृत हो गये हैं।

लाश ढोनेवाली गाड़ियों में लाशे लादी गयी। उसी गाड़ी में शिधू और अर्जुन के मृत शरीर भी लाद दिये।

जैसे ही गाड़ी रवाना हुई, वैसे ही अर्जुन होश में आया। उसी के निकट शिधू का निष्प्राण दिखनेवाला शरीर पड़ा था। अर्जुन से पुनः उसकी जांच की। उस समय उसे लगा कि अभी उसके हृदय में धड़कन

हो रही है। वह चिल्लाने लगा, पर उसकी चिल्लाहट को सुनने के लिए वहाँ था कौन ? ड्राईव्हर ने सुना तो एकदम चीख उठा—"अरे बापरे, ये मुर्दे कैसे बोल उठे ? कहीं भूत तो नहीं हो गये ?"

अर्जुन ने ड्राईव्हर से चिल्लाकर कहा,—"मैं मुर्दा नहीं हूँ। बिल्कुल जिन्दा हूँ। तुम गाड़ी रोको।" ड्राईव्हर जोर से हँस पड़ा। पर उसने गाडी रोकी नहीं वह बोला, "पहिले कबरस्तान पहुँचने दो, फिर देखा जायगा। अभी तुम मुर्दे की हैसियत से ही मेरे हवाले हो। जहाँ तुम्हें ले जाने का मुझे हुक्म मिला है, वहीं में ले जाकर तुम्हें छोड़ूँगा। वहीं मेरी गाड़ी रुकेगी। अब अधिक गड़बड़ मत करो। चुपचाप मुर्दे की तरह पड़े रहो।"

अर्जुन बेचारा हताश हो गया। वह बार-बार शिधू की नबज देखता। उसकी गति और शक्ति धीरे-धीरे बढ़ रही थी। हृदय की धड़कन भी स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। पर अभी तक वह आँखें नहीं खोल रहा था।

आखिर एक जगह गाड़ी रुकी और मुर्दाफरोश लाशें निकालने केलिए गाड़ी के पास आये। उनसे अर्जुन ने कहा—मैं जिन्दा हूँ। और शिधू को भी बड़ी सावधानी से नीचे उतारने की उनसे विनम्र प्रार्थना की।

ड्राईव्हर की अपेक्षा मुर्दाफरोश अधिक दयालु थे। उन्होंने शिधू को बड़ी सावधानी से उठाकर एक तरफ रख दिया। एक आदमी डाक्टर की खोज में चल दिया।

डाक्टर के आने तक अर्जुन की जान में जान न थी। वह बार-बार शिधू की नबज देखता, हृदय की धड़कन देखता और नाक के पास सूत रखकर देखता कि साँस चल रही है या नहीं।

अन्त में डाक्टर आये। उन्होंने दोनों की जाँच करके जीवित होने का निर्णय दिया और दोनों को अस्पताल में भरती करने के लिए एक जहाज पर चढ़ा दिया गया।

जहाज पर जो डाक्टर था उसने प्राथमिक इलाज करना शुरु किया। तब शिधू ने आँखें खोलकर चारों तरफ देखा। पर शक्ति उसमें न थी।

यह देखकर कि शिधू ने आँखें खोल दी हैं, अर्जुन के आनन्द का पारावार न रहा। इस खुशी मे वह स्वयं अपना दुख भी भूल गया। उसी समय उसका जख्म भी बाँधा जा रहा था।

इलाज हो रहे थे। शिधू धीरे-धीरे होश में आ रहा था। आँखें खोलकर वह इधर-उधर देखता, परन्तु उसकी आँखों में जैसे प्राण नहीं थे। वे शून्य-सी लग रही थीं। उनसे कोई सूचना नहीं मिलती थी। दृष्टि सन्न हो गयी थी। अर्जुन उसके कान के पास अपना मुँह ले गया और जोर-जोर से चिल्लाया। उस समय शिधू उस की ओर सिर्फ देखने लगा। उसकी मुद्रा से यह नहीं लग रहा था कि उसने अर्जुन को पहचान लिया है।

बेचारे अर्जुन के एकदम छक्के छूट गये। बसरा की अस्पताल में जल्दी पहुँचने के लिए वह उत्कंठित हो गया था।

अन्त में जहाज मुकाम पर पहुँचा।

दोनों अस्पताल ले जाए गये। अर्जुन का जख्म ठीक से बाँध दिया। दूसरे जख्मियों की भी सुश्रुषा उसी समय की जा रही थी।

शिधू को अलबत्ता आपरेशन थियेटर में ले गये। उसके सिर का जख्म काफी गहरा था। चोट उसके मस्तिष्क तक पहुँची थी। उसकी खोपड़ी को भी धक्का लग गया था। जख्म सी कर खोपड़ी जहाँ की तहाँ जमा दी गयी। शिधू को जिस समय वार्ड में लाकर रखा गया, उस समय मादेलीन वहाँ आयी। शिधू की यह हालत देखकर उसके छक्के छूट गये। अर्जुन ने शिधू से मादेलीन के बारे में सुना था। अन्दाज से उसने उसे पहचान लिया। परन्तु अर्जुन अँग्रेजी नहीं जानता था। वह हिन्दी में बोलने की कोशिश करने लगा। परन्तु मादेलीन हिन्दी नहीं जानती थी। मादेलीन को यह बताने के लिए कि शिधू को जख्म कैसे हो गया, वहाँ कोई न था।

यह सुनते ही कि शिधू जख्मी होकर फिर अस्पताल में भरती हुआ है, माधवराव एकदम दौड़ता हुआ आया। अर्जुन जोर-जोर से चिल्ला

रहा था—"अरे यहाँ कोई मराठी बोलने वाला नहीं है क्या ?"

"मैं हूँ न।" ही कहकर, जब माधवराव आगे बढ़ा, तब अर्जुन ने उसे अपनी बाहों में ही भर लिया।

बीती हुई सारी घटना अर्जुन ने माधवराव को कह सुनाई और माधवराव ने फिर वह सब हाल अँग्रेजी में मादेलीन से कहा। वह सन्न हुई उसकी ओर लगातार देखती रही थी। माधवराव भी अस्वस्थ हो गया था।

शिधू ने आँखें खोलीं और एक बार सब की ओर निगाह फैंकी। परन्तु उस दृष्टि में पहचान न थी। अब अर्जुन ने उसे पुकारा, तब वह उसकी ओर ऐसा देखने लगा जैसे वह उसे कुछ पहचान-सा रहा है।

मादेलीन ने अर्जुन को इशारे से एक तरफ हट जाने के लिए कहा और अपने हाथों से शिधू की आँखें बन्द कर दीं। फिर वह माधवराव से बोली—"इस समय इन्हें थोड़ी भी तकलीफ न दीजिए। मेरा ख्याल है कि विस्फोट का उनके मन पर असर हो गया हैं। इन्हें पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। कृपाकर इन्हें अभी कोई कष्ट न दें,"

दिन पर दिन बीत रहे थे। परन्तु शिधू होश में न आ रहा था। अर्जुन का जख्म करीब-करीब अच्छा हो गया था। उसका हाथ काट दिया गया था। उसका एक हाथ इसलिए बिल्कुल बेकार हो गया। पलटन से उसे डिसचार्ज दे दिया गया और उसे हिन्दुस्तान वापिस भेज देने का हुक्म भी आ गया।

अर्जुन पागल सा हो गया। यदि मुझे वापिस हिन्दुस्तान भेज दिया गया और मेरा पटेल अकेला रह गया, तो उसकी यहाँ चिन्ता कौन करेगा ?

अर्जुन के बिल्कुल ठीक होने तक शिधू भी मामूली ठीक हो गया था। वह उठता था, खाता-पीता था और कभी-कभी घूमने जाता था। अर्जुन को तो वह कुछ-कुछ पहचान लेता, पर और किसी को भी वह न पहचान पाता। माधवराव जब उसके सामने आकर बैठता, तो शिधू

उसकी ओर सिर्फ टकटकी लगाये देखता रहता। उसकी वह स्थिति देख कर, माधवराव की आँखें छलछला आतीं। मादेलीन ने भी उससे बातें करने की कोशिश की, पर उसे भी वह न पहचान पाया।

अर्जुन बेचैन था कि वह अब शीघ्र ही हिन्दुस्तान वापिस भेज दिया जाएगा। परन्तु चाहे शिधू के सौभाग्य से हो चाहे स्वयं उसके सौभाग्य हो जख्मी लोगों को हिन्दुस्थान वापिस ले जानेवाला जहाज तैयार नहीं था।

इसलिए और कुछ दिन गुजरे। अब शिधू काफी अच्छा हो गया था अर्जुन को वह जब काफी अच्छी तरह से पहचानने लगा था। कभी-कभी वह उससे बातें भी करता। परन्तु उन बातों में असंगतता रहती। माधवराव को वह पहचान न पाता था। उसी तरह वह मादेलीन को भी नहीं पहचानता था।

शिधू की यह स्थिति देखकर मादेलीन को बड़ा धक्का लगा। वह फिर से आया, उससे मुलाकात हुई, अत्यन्त बड़े संकट से उसके प्राण बच गये। अर्जुन साथ न होता, तो मृत समझकर उसकी लाश ठिकाने लगा दी जाती ऐसी विलक्षण आपत्ति से वह बचकर यहाँ आया है, पर वह मुझे नहीं पहचान सकता। यह देखकर मादेलीन का कलेजा टूट गया। उसकी ओर देखती हुई लगातार आँसू बहाती।

डाक्टर साहब से जब मादेलीन ने पूछा तो वे बोले— "यह बड़ा अजीब केस है। यह तो भाग्य समझो जो यह आदमी अर्जुन को पहचान लेता है। मुझे तो भय था कि इसकी स्मरण-शक्ति बिल्कुल ही नष्ट हो जाएगी। पर उस शक्ति की थोड़ी-सी धड़कन उसके मस्तिष्क के किसी कोने में अब भी शेष है। इसी तरह का कोई दूसरा जबरदस्त धक्का अगर कभी उसे लगे, तो उसकी पूर्व-स्मृति फिर ठिकाने आ जाएगी और सब को पहचान लेगा।"

पहिले उसे अपना नाम भी याद नहीं आ रहा था। अर्जुन ने बहुत कोशिशें करके उसके नाम की उसे याद दिला दी। यह देखकर कि वह

अपना नाम पहचानने लगा, अर्जुन को आनन्द हुआ।

आखिर जख्मी सिपाहियों को हिन्दुस्तान वापिस ले जानेवाला जहाज तैयार होकर आ गया और दोनों उस जहाज पर भेज दिये गये। शिधू को जब जहाज पर ले जाया गया, उस समय उसे देखकर मादेलीन फूट-फूटकर रो पड़ी। अर्जुन से भी अपने आँसू न रोके गये। माधवराव का भी कंठ भर आया।

जहाज का सफर शुरू हुआ। समुद्र की हवा लगने से शिधू के स्वास्थ्य पर असर हो रहा था। वह काफी होश में आने लगा था। उसकी हलचल में भी बहुत कुछ सुसंगतता आ गयी थी। पहिले भोजन की थाली आगे रखी जाती, फिर भी वह उसे छूता न था। किसी दूसरे को उसे जबरदस्ती खिलाना पड़ता था। वह यह भी भूल गया था कि खाना कैसे खाया जाता है। पर जब वह अपने हाथ से खाने लगा तो पानी माँगता। पाखाना और पेशाब के बारे में भी वह अब ठीक से सावधान हो गया था। उसमें हो रहे इस फर्क को देखकर अर्जुन का आनन्द बढ़ रहा था। जहाज पर उसे सम्हालना अर्जुन को कठिन हो रहा था क्यों कि उसका एक हाथ ठूँठ हो गया था। फिर भी एक हाथ से सम्हालकर वह उसे जहाज पर घुमाता। जहाज पर जो बहुत से जख्मी लोग थे, अर्थात ऐसे जख्मी हो रहे थे, उनमें शिधू जैसा एक भी केस न था। एक सिपाही ने कहा कि लड़ाई के दिनों में इस प्रकार का केस यह कोई पहिला ही नहीं है उस सिपाही के एक साथी की भी इसी तरह स्मरण-शक्ति खो गयी थी और उसे हिन्दुस्तान भेज दिया गया था। पर उस का खत आया था कि अब वह बिल्कुल ठीक हो गया है। उसकी स्मरण शक्ति लौट आयी है और वह सब को भली-भाँति पहचानने लगा है।

यह बात जब अर्जुन ने सुनी, उस समय उसकी जान में जान आयी। आज नहीं तो कुछ दिनों के बाद उसका पटेल पूरी तरह होश में आ जाएगा, सब को पहचान सकेगा, इस आशा से वह उल्लसित हो हो उठा। शिधू कम-से-कम उसे पहचान लेता था इतनी ही बात उसकी

दृष्टि में बड़े महत्व की थी। परन्तु घर पहुँचने पर जब रमाबाई और गोपिकाबाई मिलेंगीं और शिधू ने अगर उन्हें नहीं पहचाना, तो क्या होगा ?

आखिर जहाज बम्बई पहुँचा। वहाँ सब मुसाफिर उतार लिये गये और वहाँ के मिलिटरी आफिस ने उन्हें घर भेजने का प्रबन्ध कर दिया।

विस्फोट में उनका सारा असबाब जलकर राख हो चुका था। अस्पताल के कपड़े ही पहिनने पड़ते थे। वहाँ से जख्मियों को जहाज पर चढ़ाते वक्त जो दूसरे फौजी कपड़े उन्हें दिये गये थे, वे सब मिलटरी आफिस में उतारकर वापिस कर देने पड़े थे। बम्बई में कपड़ों का इन्तजाम करके अर्जुन शिधू को लेकर अपने गाँव के लिए रवाना हुआ।

शिधू बम्बई को भी नहीं पहचान सका था। जब वह यह पूछता कि हम कहाँ आ गये हैं और अब कहाँ जा रहे हैं, तो अर्जुन का कलेजा धक-से हो जाता। उसे एक नन्हें बच्चे की तरह सम्हालते अर्जुन परेशान हो रहा था।

पहिले सरकारी रिपोर्ट जो गाँव में पहुँची थी उसमें दोनों की मृत्यु हो जाने का समाचार था। इस कारण बेचारी रमा और सुभद्रा को कम-से-कम कुछ दिनों के लिए तो अकारण ही वैधव्य सहन करना पड़ा। उसके कुछ ही दिन बाद दूसरी रिपोर्ट आई और उसमें दोनों के जिन्दा होने की खबर थी। उस समय उन्हें जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन करना किसी भी लेखक की शक्ति के बाहर है। मृत मनुष्यों के जीवित होने के चमत्कार साधु-सन्तों द्वारा किये जाने के कारण उन साधु-सन्तों को जो महत्व प्राप्त होता है, उसी प्रकार का महत्व उस दूसरी रिपोर्ट को लानेवाले पोस्ट-मैन को प्राप्त हुआ। उस महारुद्र अभिषेक आदि की बड़ी धूम रही। अर्जुन की माँ ने जोखूमाई को मुर्गियां चढ़ाई और बकरे का भोग लगाया। इस तरह उस दूसरी रिपोर्ट के आने पर दोनों परिवारों में अनेक धार्मिक विधियाँ और उत्सव हुए थे।

किस स्थिति में वे दोनों लौट रहे थे इसकी उन्हें कोई कल्पना न थी। दूसरी सरकारी रिपोर्ट में लिखा था कि मुर्दे समझकर वे गाड़ दिये जाने वाले थे। परन्तु सौभाग्य से उनमें थोड़ी साँस चलती मालूम हुई। उनकी उचित सेवा की गई। इलाज किया गया। अब वे अच्छे हो गये है और हिन्दुस्थान भेजे जा रहे हैं।

इसके सिवा उस रिपोर्ट में और कुछ नहीं लिखा था इसलिए वे किस स्थिति में लौट रहे हैं उसकी उन्हें कुछ भी कल्पना न थी।

पर जख्मी होकर ही क्यों न आ रहे हों, पर वे आ रहे हैं इसी का उन्हें आनन्द हो रहा था। उस आनन्द के आवेश में वे अपने आप को भूल गयी थीं।

अंत में अर्जुन और शिधू गाँव पहुँचे। पहिले दोनों शिधू के घर गये। शिधू को देखते ही गोपिका दौड़कर बाहर आई! शिधू ने उसे नहीं पहचाना।

रमा आगे बढ़ी, पर शिधू ने उसे भी नहीं पहचाना। वह अर्जुन की ओर मुड़कर बोला—अर्जुन, ये कौन औरतें हैं? यहाँ यों आयी हैं?"

शिधू के ये शब्द सुनकर उन दोनों को जबरदस्त धक्का लगा। गोपिका ने कहा—' अरे अर्जुन, यह क्या हुआ? यह तो हमें पहचानता भी नहीं!"

"माँ, ये यहाँ जिन्दा लौट आए हैं, इसी को आप अपना भाग्य समझिए!" अर्जुन बोला—"इनकी स्मृति बिल्कुल विलुप्त हो गई है। सिर्फ मुझे भर पहचानते हैं। आप लोग भी धीरे-धीरे कोशिश करके देखिए। मेरा ख्याल है जिस तरह उन्होंने मुझे धीरे-धीरे पहचान लिया —पहिले तो मुझे भी नहीं पहचानते थे,—परन्तु बाद में पहचानने लगे उसी तरह तुम्हें भी वे पहचान लेंगे।"

ये लोग बातें कर रहे थे इसी समय यशोदा और सुभद्रा भी वहाँ आ पहुँचीं। यशोदा ने दोनों को हाथ से सहलाकर अँगुलिया चटखायीं। जब उसे शिधू की स्थिति का पता चला, उस समय वे दोनों भौंचक्की हो गयीं।

पहचानने का प्रयत्न

शिधू से किस तरह पेश आया जाए, गोपिका के लिए यह एक समस्या हो गई। वह उसका हाथ पकड़कर उसे नहाने के कमरे में ले गई। उसके हाथ-पाँव धो दिये। गोपिका के बिना कहे ही उसने खूँटी से तौलिया उठाई और अपने हाथ-पाँव पोंछ लिये। यह देखकर गोपिका को बड़ा समाधान हुआ।

"अब चलो घर में।"—गोपिका ने उससे कहा—"चाय बनाती हूँ। तब तक यहाँ बैठो।"

"अर्जुन कहाँ गया ?"—दयनीय स्वर में शिधू बोला।

"अपने घर गया है—अभी थोड़ी देर में आता है।"

"मुझे छोड़कर क्यों चला गया ?"—कहकर शिधू सिसक-सिसक रोने लगा।

गोपिका का भी गला भर आया। अपने ढंग से वह उसे समझाने लगी। जैसे-जैसे वह समझाने के स्वर में बोलने लगी, वैसे-वैसे शिधू अधिक जोर-जोर से रोने लगा। बेचारी गोपिका यही न समझ पाती कि क्या किया जाए।

इधर उसे समझा रही थी और उधर चूल्हे पर चढ़े चाय के पानी को देख रही थी। जैसे-तैसे उसने चाय बनाई और लाकर उसके सामने रखी। पर वह पीता न था। लगातार "अर्जुन ! अर्जुन" कहकर चिल्लाने लगा।

बुढ़िया के छक्के छूट गए। रमा अभी तक घर में नहीं आई थी। गोपिका ने बाहर जाकर देखा तो रमा उसी तरह बुत जैसी अकड़ी हुई दीवाल से टिकी खड़ी थी।

बेचारी गोपिका स्तंभित हो गई। वह डरी, कहीं इसका भी तो सिर नहीं फिर गया ? धीरे-से उसके पास जाकर बोली—"रमा, भीतर जाकर उससे कुछ कहकर देखो न ? लगातार अर्जुन को पुकार रहा है वह। मैं जाकर अर्जुन को लिए आती हूँ। तब तक तुम उस पर नजर रखना। चाय पिलाने की कोशिश करना। देखो पीता है या नहीं ?"

गोपिका की बात रमा के कानों में पहुँची या नहीं, इसी का पता न चलता। वह ज्यों की त्यों स्तब्ध खड़ी थी दीवाल से टिकी हुई। गोपिका ने उसे पकड़ कर हिलाया, अच्छी तरह झकझोरा। तब कहीं वह होश में आई और चौंककर एक ओर खड़ी हो गई।

गोपिका की जान में जान आई। वह बोली—"मैने क्या कहा, सुना तुम ने ? वह भीतर बैठा है। चाय नहीं पी रहा है। जरा नजर रखना उस पर। मैं जाकर अर्जुन को लिये आती हूँ।"

रमा कुछ न बोलकर, चुपचाप भीतर चली आई। यह देखकर, गोपिका अर्जुन को लाने घर से बाहर निकल पड़ी।

चाय का प्याला आगे रखे किसी छोटे बालक की तरह अर्जुन को पुकारता हुआ शिधू बैठा था। रमा जाकर सामने खड़ी हो गयी। फिर शिधू ने उसकी ओर न देखा। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या कहे और क्या करे। वह धीरे-से जाकर उसके सामने बैठ गयी। और जैसा कि पहले कहा करती थी, उसी लहजे में वह बोली—"चाय ठन्डी हो रही है। अब पी लो न।"

शिधू की सिसकियाँ एकदम बन्द हो गयीं। आँखें फाड़कर वह उस की ओर देखने लगा। वह मन-ही-मन हँस रही थी—"चाय पी लीजिए न ?"

"मुझे क्यों सता रही हो ?"—शिधू चिल्ला उठा—"अभी वह कौनसी एक औरत आयी थी। यह प्याला मेरे सामने रख गयी। अब यह एक और आयी है और कहती है चाय पी लो। और अर्जुन तो यहाँ कहीं दिख नहीं रहा है"

वह फिर आँखें विस्फारित कर उसकी ओर निहारने लगा। देखते-देखते उसकी मुद्रा बदल गयी। घबराहट की स्पष्ट झलक उसके चेहरे पर फैली दिखाई देने लगी। क्रम-क्रम से उसकी मुद्रा का रंग बदलता जाता था। मुद्रा बदलते-बदलते उस का चेहरा भयानक हो गया और "अर्जुन ! अर्जुन !" चिल्लाता हुआ वह एकदम घर से बाहर निकल पड़ा।

रमा समझ नहीं पा रही थी कि क्या करे ? अगर उसके पीछे दौड़ती है तो लोगों के लिए वह एक तमाशा हो जाएगा। वे क्या कहेंगे, इस का उसे भय था। अगर उसका पीछा नहीं करती है, तो वह न जाने कहाँ चल देगा, इसकी चिन्ता थी।

जी पक्का करके रमा ने उसका पीछा किया। वह निरुद्देश्य कहीं भी चला जा रहा था। रास्ते की उसे कोई सुध न थी।

रमा के मन में यह विचार उठा सही कि दौड़कर उसे पकड़कर ले आऊँ, परन्तु हिम्मत नहीं होती थी। दूसरों के सामने वह उससे कभी बोली तक न थी। फिर आम सड़क पर जाकर उसका हाथ पकड़ने की हिम्मत उसे कैसे हो सकती थी।

इसी समय गोपिका और अर्जुन आ पहुँचे। रमा की चिन्ता दूर हो गयी। अर्जुन दौड़ता चला आ रहा था। गोपिका जैसे-तैसे उसके पीछे-पीछे कदम बढ़ाती चली आ रही थी। अर्जुन को देखते ही शिधू एकदम उसकी ओर दौड़ पड़ा और उसके गले के आसपास उसने अपनी बाहें डाल दीं। वह बोला—"देखो अर्जुन, ये दोनों औरतें मुझे किस तरह तंग कर रही हैं ?"

बड़ी मुश्किल से समझा-बुझाकर अर्जुन उसे फिर से घर में ले आया। अर्जुन की आँखों में आँसू छलछला आये थे, परन्तु वह यह कोशिश कर रहा था कि वे किसी को दिखें नहीं। गोपिका ने प्याले में अँगुली डालकर देखा। चाय ठन्डी हो गयी थी। प्याला उठाकर वह चली गयी। रमा अलबत्ता वहाँ आकर खोयी-खोयी-सी खड़ी थी।

"अब इन्हें ही सँभालना होगा, भाभी !" अर्जुन बोला—"मैं कौन

यहाँ चौबीसों घन्टे हाजिर रह सकूँगा।"

"पर वे तो मुझे पहचानते ही नहीं हैं।"—रमा ओंठ चबाती हुई सिसकी को भीतर-ही-भीतर निगलकर बोली।

अर्जुन शिधू को समझाने की कोशिश कर रहा था। पुरानी बातें बता रहा था। उसके विवाह की घटनाओं का वर्णन करके उस समय की उसकी स्मृतियाँ जागृत कर रहा था। पर उसका कोई असर न होता। शिधू अर्जुन को छोड़कर और किसी को भी नहीं पहचानता था।

"भैया, अब तुम यहाँ से जाओ मत।"—गोपिका बोली—"यहीं रहो और इस पर नजर रखो। तुम चले गये और इसने कहीं खाना-पीना छोड़ दिया तो मैं क्या करूँगी? रमा को भी वह नहीं पहचानता और अगर पहचान भी ले, तो वह बेचारी अकेली क्या कर सकती है? तुम उसे अपनी बाहों में भरे बैठे हो, इसीलिए वह शान्त है। उसे इस तरह लेकर रमा थोड़े ही बैठ सकती है? कुछ भी करो, बेटा! जैसा मेरा शिधू वैसे ही तुम। मैं जाकर कहे देती हूँ तुम्हारी माँ से। पर जब तक यह थोड़ा राह पर नहीं आ जाता, तब तक तुम इसका साथ न छोड़ना।

अर्जुन के साथ शिधू को साथ लिये अर्जुन नहाने के कमरे में गया। उसी ने उसे नहलाया और नजदीक वाले एक कमरे में ले जाकर बिठा दिया। किसी छोटे बालक की तरह शिधू की स्थिति हो गयी थी।

अर्जुन को भी खाना वहीं खाना पड़ा। एक अछूत के साथ बैठकर मेरा बेटा भोजन कर रहा है, वह बीच-बीच में उसे अपने हाथ से खिला भी रहा है, यह बात गोपिका के ध्यान में भी न आयी। दोनों भोजन करके उठ गये और जब रमा शिधू की जूठी थाली लेकर भोजन करने बैठी तब कहीं गोपिका के ध्यान में यह बात आई। वह बोली—"बहू, यह थाली मत लो। दूसरी थाली लेकर उसमें अपना-भोजन परोस लो और फिर खाओ। उस थाली में छूत लग गयी है। तुम्हें घर में काम करने पड़ते हैं। भगवान की पूजा करनी पड़ती है। चूल्हा सँभालना पड़ता है। तुम अगर उसकी थाली में खाओगी, तो घर का काम कैसे

चलेगा ?"

"नहीं। मैं इसी थाली में खाऊँगी। आप मुझे इसी में परोसिये। मैं भी अछूत की तरह बाहर ही रहूँगी। आपके घर की कोई चीज नहीं छुऊँगी। पहिले भी तो इनके साथ बाहर रहती थी न। समझ लीजिए इस समय भी उनके साथ बाहर चली गयी हूँ। कितने दिनों से हृदय में आस लगाये बैठी हूँ, अगर उन्होंने मुझे नहीं पहचाना तो क्या हुआ? पर इससे जूठी थाली पर से मेरा अधिकार चला नहीं जाता। अगर उन्हें छूत लगी है, तो मुझे भी लगी है।"—बोलते-बोलते उसकी आँखों में आँसू छलछला आए।

गोपिका का भी कंठ भर आया। वह बोली—"ठीक है। जो तुम्हारी इच्छा, वही करो। छुआछूत करके कितने दिन बैठी रहोगी? भगवान की यही क्या कोई कम कृपा है कि लड़ाई से जिंदा लौट आया? भगवान सब जानता है। उसके राज्य में सब अपराध माफ हैं। ले लो वही थाली—"

दोनों भोजन करके उठीं और देखा तो शिघू सो गया था। किसी बालक को सुलाते समय जिस तरह थपकियाँ देते हैं, उसी तरह अर्जुन उसे थपकियाँ दे रहा था। उन दोनों को द्वार पर देखते ही उसने उन्हें बाहर जाने का इशारा किया।

दोनों गालों पर हाथ रखे रमा को बाहर दीवाल से टिकी बैठे देखकर, गोपिका ने कहा, "बहू, क्या सोच रही हो? जिंदा लौट आया है, यही सोचकर खुश रहो। विचार करने से क्या होगा? पुनः तुम्हारी माँग भर गयी, यही अपना भाग्य समझो, वरना उस वक्त तो ऐसा लगता था जैसे हम पर आसमान ही टूट पड़ा है। बिल्कुल मत सोचो। अब यही सोचना चाहिए कि वह राह पर कैसे लाया जाए?"

बेचारी बहू सास को क्या जवाब देती? कोई हमजोली होती, तो उसके सामने हृदय खोलकर रख सकती थी। वह प्रसंग उसे याद आ रहा था। हवाई जहाज से बम गिरने के कारण पोस्ट आफिस के

नजदीक विस्फोट हुआ और उससे शिधू की मृत्यु हो गयी। यह समाचार सरकार के जरिये जब उसके घर पहुँचा था, उस समय का प्रसंग उसकी नजरों के सामने मूर्त हो उठा। उसके विधवा हो जाने की सारी विधियाँ उसे करनी पड़ी थीं। माँग का सिंदूर पोंछना पड़ा था। चूड़ियाँ फोड़नी पड़ी थीं आदि। यदि शिधू के जीवित रहने का समाचार कुछ दिन और न आता, तो गाँव वाले सख्ती से उसके बाल भी कटवा देते।

वैसे देखा जाए तो उसकी उम्र ही कितनी थी। परन्तु सिर्फ इसलिए कि वह एक छोटी लड़की है, धार्मिक विधियाँ पूरी करने के बाद में गाँव के विद्वानों के हृदय कम-से-कम उस जमाने में तो नहीं पसीजते थे। सिर मुड़वाकर सन्यासिनी बना दी गयीं पन्द्रह सोलह वर्ष की बाल-विधवायें उस जमाने में जगह-जगह दिखाई देती थीं। यह तो रमा का भाग्य था। दूसरे ही सप्ताह में शिधू के जीवित होने का समाचार आ गया। जब पत्र पढ़ा जा रहा था, तभी वह दौड़कर कुंकुम की डिबिया ले आई थी और उसे सास के हाथ में देकर उसने कहा था—"माँ, मुझे पहिले कुंकुम लगाओ"—वह उस समय यह भी भूल गयी थी कि उसकी सास विधवा है, वह सधवा को कुंकुम कैसे लगा सकती थी। उस वक्त गोपिका ने पड़ोस की एक सुहागिन को बुलाकर उससे बहू को कुंकुम लगाने के लिए कहा था। मंगलसूत्र पुनः तैयार करवाकर पाँच सुहागिनों के हाथ से उसके गले में बँधवाया था। वस्त्र और नारियल से उसकी गोद भरी थी—ये सब प्रसंग उसकी आँखों के सामने से सिनेमा की रील की तरह घूम गये।

वे आठ दिन—और उन आठ दिनों के बाद का वह सुहाग का दिन और आज उस सुहाग के धनी का घर लौट कर आने का दिन, इन तीनों स्थितियों की वह अपने मन-ही-मन तुलना कर रही थी।

सुहाग मिला। सुहाग का धनी भी मिल गया, पर वह इस स्थिति में मिला! उसके सुहाग की उसे कोई कद्र नहीं, ऐसी मनःस्थिति में वह घर आया! उसके सुहाग का धनी हूँ। इसका उसे कुछ ज्ञान न होने के

कारण रमा को वापिस मिले हुए इस सुहाग में कुछ कमी प्रतीत होने लगी। पहिले भी भरपाई हो गई थी, उससे वह इस कमी की तुलना कर रही थी। यह देखकर कि वह मौन है गोपिका बोली—"गरीब बेचारी! अरी, गया हुआ सुहाग फिर से पा गयी, यही क्या कम हुआ ? उस समय क्या हो गया था ? आज आ गया है। इसी तरह घर में रहेगा। ईश्वर की दया आ गयी, तो फिर पहचानने भी लगेगा। अगर नहीं पहचाना, तो नयी पहचान करने की कोशिश करनी चाहिए। तुम्हारी माँग भर दी। फिर से मंगलसूत्र बाँध दिया। तुम दोनों का विवाह अभी हुआ है, ऐसा समझ लो और फिर उससे पहचान करो। इसकी अपेक्षा मैं सास तुम बहू से और अधिक क्या कह सकती हूँ ?"

गोपिका चली गई। फिर भी रमा उसी तरह बैठी थी। पुनः पहचान कर लूँ—इसका क्या मतलब ?

सुहागरात की उसे याद हो आयी। पराये आदमी से बिल्कुल आत्मीयता का परिचय होते समय की उस मनःस्थिति का उसे स्मरण हुआ। मन पर पड़ा उस समय का प्रभाव भी उसे याद हो आया।

वही क्या फिर होगा ?—क्या यह पुनर्विवाह है ?—पराये से नहीं, उसी मनुष्य से ! दकियानूसी मेरी सास मुझे पुनर्विवाह की अनुमति क्यों दे रही है ? "फिर से पहचान कर ले !" इसका क्या मतलब समझूँ ? क्या उसी प्रकार से न ? सुहागरात की तरह ही न ? और अगर मान लो उस समय भी उन्होंने नहीं पहचाना तो ?

शिधू के स्वभाव से वह परिचित थी। वह बड़ा पाप-भीरु था। अत्यन्त निर्मल मन का था, एकनिष्ठ था।

परन्तु जख्मी सिपाही द्वारा कही गई वह बात ! वह बात उसे याद हो आई। क्या वह सच थी ? उसे लगा अर्जुन से पूछना चाहिए। यद्यपि उसका मन उससे कहता कि वह बात सच नहीं हो सकती, पर उसका दूसरा मन कहता कि आज की परिस्थिति में उस बात का सच होना ही अच्छा। यदि शिधू की एक-निष्ठा समाप्त हो गयी तो तभी आज की

परिस्थिति में पुन: परिचय होने की आशा थी।

शिधू सोया था। उसके कमरे के द्वार में जाकर वह खड़ी हो गई। अर्जुन चुपचाप उसके बिस्तर के पास बैठा हुआ था। रमा को उससे ईर्ष्या हुई। ऐसी परिस्थिति में उस स्थान पर बैठने का अधिकार उसका था। उस अधिकार के खो जाने का उसे दुख हुआ।

उसने धीरे-से अर्जुन को इशारा किया। वह भी बात समझ गया। दबे पाँव वह धीरे-से बाहर आया और रमा जाकर उसके स्थान पर बैठ गई।

धीरे-धीरे वह उसके बालों में अँगुलियाँ चलाने लगी। आँखें खोल कर शिधू ने उसकी ओर देखा। एक क्षण-भर वह उसकी आँखों में आँखें डाले टकटकी लगाये उसकी ओर देख रहा था।

—वह तड़ाक से उठकर बिस्तर पर बैठ गया। रमा को अपने मन का संतुलन रोकना असम्भव हो गया। उसने अपनी दोनों बाहें उसके गले में डाल दीं और वह सिसक-सिसककर रोने लगी।

शिधू घबरा गया। उसकी स्मृति यद्यपि विलुप्त हो गई थी, फिर भी मन की पाप-भीरुता जाग्रत थी। उसे वह अपरिचित स्त्री लग रही थी। पुरानी याद हो आई और वह चिल्ला पड़ा—"अर्जुन! अर्जुन! अरे क्या हम फ्रान्स में आ गये?"

अर्जुन दौड़ता हुआ कमरे के द्वार पर आया। उस दृश्य को देखते ही वह पीछे हट गया। परन्तु शिधू रमा के पाश से मुक्त होकर अर्जुन की ओर भागने की कोशिश करने लगा। पर रमा अपना पाश नहीं छोड़ रही थी और अर्जुन आगे नहीं बढ़ रहा था। उसे संकोच हो रहा था, परन्तु शिधू को छोड़कर वह जा भी नहीं सकता था।

रमा के हृदय से सारी लाज-शर्म जाती रही थी। जब वह एक बार उससे मिल गयी, तो उसका आलिंगन उससे छोड़ा नहीं जाता था। शिधू कह रहा था—

"अर्जुन! अर्जुन! यह क्या है? फ्रान्स की स्त्रियाँ पराये पुरुषों

का आलिंगन करती हैं, पर यह स्त्री तो हिन्दू मालूम होती है। ब्राह्मणी दिख रही है और यह कैसे मुझे आकर चिपट गयी ?"

"यह क्या कहते हो ?" अर्जुन बोला—"ये रमा भाभी हैं न ? आपकी पत्नी हमारी छोटी मालकिन।" उसका कंठ भर आया।

शिधू अपने गले से उसकी बाहें छुड़ाने की कोशिश कर रहा था और वह गिड़गिड़ाकर कह रही थी, "मुझे दूर न कीजिए !"

उसकी चिल्लाहट सुनकर गोपिका दौड़ती हुई आई। फिर भी रमा ने अपना पाश न छोड़ा। आवेग चरम सीमा को पहुँच गया था और उसी का यह प्रभाव था। क्या किया जाए यह कोई भी नहीं समझ पा रहा था।

गोपिका आगे बढ़ी और उसने रमा की बाहों को छुड़ाया।

परायी स्त्री के स्पर्श से घबराये हुए किसी निष्पाप की तरह शिधू अपना अंग सिकोड़ रहा था।

बड़ी मुश्किल से गोपिका ने रमा का पाश छुड़ाकर उसे दूर हटाया।

यह भूलकर कि वह उसकी सास है, रमा ने गोपिका के गले में अपनी बाहें डाल दीं और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

"बेचारी गरीब लड़की !" शिधू बोला—"क्यों रो रही है वह ?"

उसके ये उद्‌गार सुनकर गोपिका का हृदय टूट गया। उसकी आँखों के सामने अंधकार छा गया। रमा को सँभालती हुई वह उसी तरह चुपचाप बैठ गयी और रमा उसकी गोद में सिर रखे रोती रही।

"इसे नहीं पहचाना तुमने ?" एक बुजुर्ग की तरह अर्जुन बोला—"यह देखो, ये गोपिका चाची हैं—हमारी पटेलन, तुम्हारी माँ। कम-से-कम इन्हें तो पहचानते हो या नहीं ?"

"यह क्या बेसिर पैर की उड़ा रहे हो अर्जुन ?"—शिधू हँसता हुआ बोला—"क्या तुम पागल हो गये हो ? अजी, मेसोपोटामिया में कहाँ से आयी तुम्हारी चाची और पटेलन ?" पुनः वह विचारों में खोया सा दिखायी दिया। विचार करते-करते वह बोला—

"कौन हैं ये गोपिका चाची ? यह नाम मैंने कहीं सुना था शायद ?"

अर्जुन के हृदय में थोड़ी आशा उत्पन्न हुई। उसे अपने सीने से लगाकर उसकी पीठ को सहलाता हुआ वह बोला—"हाँ, अब याद तो करो भला ! ये हैं तुम्हारी माता जी। यह है तुम्हारा घर। ये हैं तुम्हारी पत्नी, रमा बाई। तुम जब डाकखाने में बाबू थे उस समय ये तुम्हारे साथ रहती थीं। करो याद, करो याद !"

हर वाक्य पर शिधू नकारात्मक गर्दन हिला रहा था।

अर्जुन हताश हो गया। पुनः पुनः वही वही शब्द उच्चारण कर, शिधू की स्मृति को जाग्रत करने की वह लगातार कोशिश कर रहा था। उसकी कोशिश देखकर रमा उत्साहित हुई और आँखें पोंछकर हँसती हुई शिधू के सामने जाकर खड़ी हो गयी।

शिधू लगातार घूमकर उसकी ओर देख रहा था। पर उस दृष्टि में स्थिरता न थी। आँखों की पुतलियाँ लगातार थरथरा रही थीं। देखते-देखते उसकी मुद्रा बदल गयी। गम्भीरता विलुप्त हो गयी और घबराहट की झलक उसकी आँखों में चमकने लगी।

एकदम चिल्लाकर अर्जुन को उसने अपनी भुजाओं में कस लिया। —"देखो-देखो। वह मेरे गले पड़ना चाहती है। उसे लाज भी नहीं आती। ये औरतें हैं या चुड़ैलनें ? चलो, मुझे यहाँ से कहीं दूर ले चलो।"

अर्जुन ने आँख से इशारा किया। रमा और गोपिका कुछ भी न बोल कर जड़ कदमों से कमरे से बाहर चल दीं।

उस दिन अर्जुन वहीं रहा। रात को उसी ने उसे खाना खिलाया अर्जुन से दूर होने के लिए शिधू एक क्षण के लिए भी तैयार न था। उन स्त्रियों के प्रति उसके हृदय में एक प्रकार का भय समा गया था।

यह देखकर कि पुनः परिचय करने का वह प्रयत्न असफल हुआ यद्यपि रमा हताश हो गयी थी, फिर भी उसने धीरज नहीं छोड़ा और पुनः प्रयत्न करने का उसने निश्चय किया।

बंबई आने पर

लड़ाई से लौटा हुआ शिधू जिस समय पहली बार दिखाई दिया था, उस समय रमा के हृदय-सागर में आनन्द की जो तरंगे उमड़ रही थीं, वे उसी दिन सायंकाल तक बिल्कुल विलुप्त हो गयीं। उसे लगा मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है जिसके लिए मुझे यह दंड मिला। किसी भूखे के सामने परोसी हुई थाली रख दी जाए, पर उसे वह भोजन खाने की मनाही कर दें तो उस समय उसके मन की जो स्थिति होगी, वही स्थिति उस समय रमा की हो गई थी।

उस रात वह बिस्तर पर सिर्फ तड़प रही थी। क्या उपाय करूँ जिससे मेरा पति मुझे पहचान ले, इसी विचार में वह खो गयी थी। उसकी बाल-बुद्धि के अनुसार उसे अनेक उपाय सूझे। पर उन सब के बारे में जब वह थोड़ा और विचार करती, तो अंत में हर उपाय उसे करीब-करीब असंभव ही प्रतीत होता।

गोपिका के मन में भी अस्वस्थता के बादल छा गये थे। उसे भी नींद नहीं आ रही थी। उसे इसी पर समाधान हो गया था कि उसका बेटा जिंदा लौट आया। वह किसी को पहचाने या न पहचाने, पर अब तक हट्टा-कट्टा सामने दिख रहा है तब तक उसके मातृ-हृदय को, थोड़ा कम ही क्यों न हो, समाधान मालूम होता था। यद्यपि उसके मन में यह तीव्र उत्कंठा थी कि उसका बेटा उसे पहिले की तरह माँ कह कर पुकारे, फिर भी उसके हृदय में उतनी बेचैनी न थी जितनी रमा महसूस कर रही थी। कभी-न-कभी उसकी पूर्व-स्मृति जाग्रत होगी, यह आशा लिये भगवान पर भरोसा रखकर, भगवान का नाम लेते हुए शान्त रहने का प्रयत्न वह कर रही थी।

गोपिका और रमा की अस्वस्थता में यह अन्तर था।

इधर यशोदा और सुभद्रा भी अपने-अपने ढंग से छटपटा रही थीं। यशोदा को इसका आनन्द हो रहा था कि इतने दिनों के बाद उसका लड़का घर लौट आया है। वह हट्टा-कट्टा है और उसका दिमाग भी दुरुस्त है। शिधू की परिस्थिति से जब वह अपने बेटे की परिस्थिति का मिलान करती तो उसका यह आनंद द्विगुणित हो जाता। पर यह देखकर कि आये दिन से उसे अपने घर में एक कौर खाने का भी मौका न आया और सारे दिन उसे पटेलन के घर ही रहने के लिए मजबूर होना पड़ा, उसे दुख भी हो रहा था।

सुभद्रा बेशक बिल्कुल बेचैन हो गयी थी। रमा के बराबर ही बेचैन हो गयी थी। बीच की अवधि में रमा की परिस्थिति में कोई भी फ़र्क नहीं हुआ था। पर यह बात सुभद्रा की न थी। उसने इस अवधि में लिखना-पढ़ना सीख लिया था। वह अपने दिल में यह उमंग सजाये बैठी थी कि पति के आते ही उसे केसरी पढ़कर सुनाऊँगी और आश्चर्य-चकित कर दूँगी। परन्तु घर में अर्जुन की इस अनपेक्षित अनुपस्थिति के कारण वह निराश हो गयी। यह सच है कि हताश न हुई, पर वह तात्कालिक निराशा भी उसे बड़ी दुखदायी मालूम हुई।

सुभद्रा को आशा थी कि वह वियोग उसी दिन तक रहेगा। पर दिन बीतने लगे। शिधू को छोड़कर अर्जुन घर नहीं जाता था। यह देखकर सुभद्रा बोल उठी।

रमा और सुभद्रा की परस्पर मुलाकातें होने लगीं। दोनों समदुःखी थीं। दोनों के कारण जरूर अलग-अलग थे। परन्तु वस्तुस्थिति बेशक एक सी ही थी।

पांच-छः दिन गुजरे और यह देखकर कि अर्जुन घर नहीं आ रहा है, सुभद्रा रमा से बोली—"मुझे क्या लग रहा है, इसकी क्या तुम्हें कोई कल्पना है ? घर में जाने कितने खत आकर पड़े हैं। पर उन्हें खोलकर पढ़ने वाला कोई नहीं। मराठी में होते तो मैं पढ़कर सुना देती। पर वे हैं

अंग्रेजी में। क्यों मेरे घर वाले को तुमने अपने घर में रोक रखा है ?"

"क्या मैंने रोक रखा है ?"—झल्लाकर रमा ने कहा। अगर तुम अपने घरवाले को घर ले जाओगी, तो मुझे समाधान ही होगा। वह हम दोनों के आड़े आ रहा है। एक क्षण के लिए भी वह "उन्हें" अपने से दूर नहीं करता। मुझे तो इतना गुस्सा आता है कि क्या बताऊँ ! लगने लगता है कि हाथ पकड़ कर बाहर निकाल दूँ तुम्हारे घर वाले को। कैसी खराब हालत हो गयी है "उनकी"। असल में "उनकी" चिन्ता मुझे करनी चाहिए। सेवा-सुश्रूषा मुझे करनी चाहिए। मेरे स्थान पर जाकर बैठने वाला तुम्हारा घरवाला कौन होता है जी ? लड़ाई पर जाते वक्त लगता था कि वहाँ से बड़ा नामा कमाकर लौटेंगे। पर यह क्या हो गया ? मेरी पहचान भी भूल गये। क्या लाभ हुआ लड़ाई पर जाने से ? किस के लिए लड़ी उन्होंने यह लड़ाई ? किसने कहा था उन्हें जाने के लिए ? तुम्हारे घर वाले की बात ठीक है। वह पहिले से ही पलटन में था। इसीलिए लड़ाई पर जाने के लिए मजबूर था। वह गया और हाथ खोकर आ गया। पर उसका दिमाग तो दुरुस्त है। पर इन्हें क्या मिला। इन्हें क्या जरूरत थी जाने की ? क्या किसी ने इन पर जबरदस्ती की थी ? मुझ से बड़ी-बड़ी बातें करते थे। कितनी बड़ी-बड़ी आशायें मन में सँजोये मैंने दिन काटे थे। पर अब यह क्या देख रही हूँ !"

यह सुनकर सुभद्रा की आँखों में आँसू भर आये थे। रमा करीब-करीब अपने आप से ही बोल रही थी। इसलिए सुभद्रा की सिसकी के सुनाई देने तक उसकी ओर रमा का ध्यान न था। अकारण उसे जो क्रोध आ गया था, सुभद्रा की आँसुओं से वह धुल गया। रमा गद्गद् होकर बोली—"मुझे माफ कर दो, सुभद्रा ! मैं तो कुछ भी बक रही थी ! इस में तुम्हारा क्या कसूर ? अर्जुनराव भी क्या करें ? इतने दिनों के बाद घर आये हैं, पर माँ और पत्नी से ठीक से मिले भी नहीं।

जी कड़ा करके मेरे घर रह रहे हैं और मेरे उन्हें सँभाल रहे हैं। सच पूछा जाए तो मुझे उनके उपकार मानना चाहिए। पर यह तो मैने किया नहीं और तुम्हें भला बुरा कह दिया। कैसी चाँडालनी हूँ मैं ?"

"ऐसा न कहो, छोटी मालकिन !" सुभद्रा बोली—'जैसा तुम सोचती हो वैसा ही मै सोचती हूँ। मालिक का सिर फिर गया, पर उसके कारण हम दोनों एक समान हो गयीं। कारण भिन्न है, पर हम दोनों का दुख एक समान ही है।"

क्या किया जाए, यह दोनों को भी नहीं सूझ रहा था। जब रमा ने सुभद्रा से अपने घर का सारा हाल कहा, तब सुभद्रा को भी रमा पर दया आए बिना न रही। रमा को आशा थी कि आज नहीं तो कल पति से भेंट अवश्य होगी। पर पति के पास होते हुए भी वह पति से वंचित हो गयी थी। वह उसे परायी स्त्री मानता था। आँख उठाकर उसकी ओर देखता भी न था। जब सुभद्रा को ये सब बातें मालूम हुई तब उसका भी रमा की तरह कंठ भर आया। जाति-भेद भूलकर दोनों एक दूसरे के गले में हाथ डाल रोने लगीं।

उस रोने से उनका दुख थोड़ा शान्त हुआ। उन्हें थोड़ा अच्छा लगा। उनके हृदय का भार कुछ हल्का हुआ।

दिन के बाद दिन बीत रहे थे। पर कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। गोपिका ने गाँव की पद्धति के अनुसार मन्नतें मानकर देखीं। झाड़-फूँक कराई और अर्जुन के आग्रह करने पर अपनी जाति भूलकर जाखू-माई को मुर्गियां भी चढ़ाई।

वैद्यों का भी इलाज हो ही रहा था। परन्तु किसी से कोई फायदा होता नजर न आता। गोपिका का एक दूर का भाई बंबई में डाक्टर था। उसे पत्र लिखकर उसने सारा हाल बताया।

उसने उत्तर दिया कि शिधू को बम्बई लाये बगैर कोई इलाज नहीं हो सकता। इसलिए जितना भी रुपया मिल सकता था उतना लेकर

गोपिका, शिधू, अर्जुन और रमा बम्बई गये।

गोपिका के डाक्टर भाई ने एक हाल में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया। बड़े डाक्टर की फीस देने की उनकी ताकत न थी। परन्तु गोपिका के भाई के वसीले से एक प्रख्यात विशेषज्ञ से शिधू की जाँच कराई गयी। पर ये महाशय भी कोई निदान नहीं कर सके।

सब हताश हो गये थे। उन्हें बम्बई बुलाने वाला डाक्टर भी निराश हो गया था। शिधू को सिवा इसके उसकी स्मृति गायब थी, और कोई बीमारी न थी। वैसे वह पूर्ण स्वस्थ, अच्छा हट्टा-कट्टा और काफी तगड़ा था। खाता-पीता भी ठीक था। वह किसी को कोई तकलीफ न देता था पागल जैसा बर्ताव न करता था। उसमें कमी यही थी कि पूर्व-परिचित मनुष्यों को वह पहचान न पाता था। उसे लगता कि वह अभी तक रणभूमि में ही है।

आशा की एक किरण दिखाई दी। लड़ाई पर गया हुआ बम्बई का एक यूरोपियन डाक्टर इसी समय के लगभग लड़ाई पर से बदलकर फिर अपनी नौकरी पर बम्बई आया था। उससे शिधू के डाक्टर की भेंट हो गई। उसने फ्रान्स में लड़ाई के अस्पताल में काम किया था। इसलिए शिधू को वह पहचानता था।

यह देखने के लिए कि शिधू कम-से-कम रणभूमि के मनुष्यों को भी पहचानता है या नहीं, उसे उस डाक्टर के पास ले गये।

उस डाक्टर को देखते ही शिधू ने उसे पहचान लिया। तब डाक्टर को बड़ा आश्चर्य हुआ।

उस गोरे डाक्टर ने पुरानी बातें कहना आरंभ किया।

सूत्र जुड़ने लगे। बेलजियम फ्रन्ट की सारी बातें शिधू को धीरे-धीरे स्मरण होने लगीं। मांश्यू लेग्रां की उसे चट-से याद आ गयी और साथ ही—

मादेलीन की याद आते ही उसका चेहरा खिल उठा।

"क्या आप से मादेलीन की मुलाकात हुई थी?" शिधू ने पूछा—

"आजकल वह कहाँ है ?"

"शायद वह मेसोपोटामिया में है।" गोरा डाक्टर बोला—"पर ठीक किस स्थान पर है, यह मैं नहीं जानता। पूछताछ करके तुम्हें बता दूँगा।"

गोरे डाक्टर के आश्वासन से शिधू उल्लसित हो उठा। घर आते ही बड़े उल्लास से याद कर-करके वह बेलजियम फ्रन्ट की बातें कहने लगा। गोपिका और रमा को लक्ष्य करके उनसे वहाँ के हाल बताने लगा। मादेलीन से उसका परिचय कैसे हुआ, वियोग कैसे हुआ, उससे फिर से भेंट कैसी हुई, इसका हाल जब वह कहने लगा, उस समय रमा के हृदय को गहरी चोट पहुँची। मेरी याद नहीं आती और याद आती है एक यूरोपियन लड़की की! उसे लगा उस गाँव के जख्मी सिपाही ने जो कहा था, वह शायद सच ही जान पड़ता है।"

अर्जुन ने उससे बार-बार वही बातें पूछना शुरू किया। शेखसाद की स्मृतियाँ ताजी कीं। अमारा की बातें निकालीं। हैजे से अच्छे होकर पुन: पुन: डाकखाने में काम पर जाने की बातें शुरू कीं। और जब वह पूछने लगा कि आगे क्या हुआ तब अलबत्ता शिधू घबड़ा गया।

"आगे क्या हुआ······? आगे क्या हुआ ?" कहकर वह बड़ा व्याकुल हो गया। फिर जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

उसे शान्त करते-करते अर्जुन की आफत हो गयी। और दूसरी बातें निकालकर उन यादों को पुन: बुझाने की उसे कोशिश करनी पड़ी। शिधू सो गया था। पर नींद में भी "आगे क्या हुआ! आगे क्या हुआ!" कहकर बर्रा रहा था।

यह देखकर कि जहाँ से शिधू की विस्मृति शुरू हुई वहाँ तक उसकी स्मृति आ पहुँची है, उस यूरोपियन डाक्टर को बड़ा संतोष हुआ। शिधू की वह छटपटाहट देखकर उसके आत्मीय बेचैन हो उठे थे। पर डाक्टर को उसी छटपटाहट से आनन्द हो रहा था। डाक्टर, रोगी और रोगी के आत्मीय, इन तीनों के मनों में इसी प्रकार की भिन्नता होती

है, यह हमें पद-पद पर दिखाई देता है। जब कोई न समझ में आनेवाली बीमारी होती है, तब रोगी और उसके आत्मीय घबरा जाते हैं। पर डाक्टर को प्रयोग करने के लिए एक नया रोगी मिलने का आनन्द होता है।

उस अंग्रेज डाक्टर ने भी शिधू के बारे में काफी दिलचस्पी दिखाना शुरू कर दिया था। वह स्वयं उसके घर आकर उससे घंटों बातें करता बैठा रहता। लड़ाई के मैदान पर उसने सुख और दुःख दोनों का आत्मीयता से अनुभव किया था। लड़ाई पर जाकर जो ठूँठे, लंगड़े और अंधे हो गये थे, उनका उसने इलाज किया था। लड़ाई में अकारण हुई हत्यायें देखकर, उसका हृदय टूक-टूक हो रहा था। लड़ाई में जो मृत हो गये थे, उनके लिए उसे जितना दुःख हो रहा था, उसकी अपेक्षा लड़ाई पर जाकर घायल हुए लोगों के प्रति उसे अधिक दया लगती। उस पर भी अंधे लोगों की अपेक्षा शिधू का केस बिल्कुल ही भिन्न था। कोई आदमी लूला, लंगड़ा या अंधा भी हुआ, फिर भी उस मनुष्य का होश ठीक रहता था। परन्तु सारे अवयव ठीक से यथास्थान होते हुए यदि किसी की बुद्धि या स्मृति ही पंगु हो गयी हो, तो उस मनुष्य के दुर्भाग्य की परिसीमा लड़ाई पर गये डाक्टर ही महसूस कर सकते थे।

शिधू जैसे केस विलायत में भी थे। वहाँ के डाक्टरों को लगता कि लगन से ऐसे केसों की जाँच और निदान करके लड़ाई से लौटे हुए ऐसे विचित्र केसों की सेवा करना अपना कर्तव्य है।

इस अँग्रेज डाक्टर को लगता था कि हिन्दुस्तान में भी ऐसे घायल हुए लोगों के लिए हिन्दुस्तानी डाक्टरों की विलायती डाक्टरों की तरह आस्था और दया क्यों नहीं दिखानी चाहिए? वहाँ की सरकार ऐसे घायलों की बड़ी आस्था से और आत्मीयता से पूछताछ करती थी। ऐसे घायलों के अस्पताल में जाकर स्वयं इंग्लैंड का राजा उन लोगों को अपने आश्वासनों से हिम्मत देता था।

हिन्दुस्तान में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। लड़ाई पर कौन गया,

कितने गये, कैसे गये, कितने घायल हुए, इसकी किसी ने भी कोई पूछ-ताछ नहीं की। सरकार ने शिधू और अर्जुन की भी क्या कद्र की? यह समझकर कि वे घायल हो गये हैं, उन्हें दो दमड़ी की पेंशन देकर छुट्टी पा ली। उन दो दमड़ियों पर क्या उनकी गुजर होने वाली थी? एक का हाथ जाता रहा था। दूसरे का तो होश ही गायब हो गया था। उन लोगों के परिवार थे। हाथ बेकाम हो जाने के कारण बेचारा अर्जुन जीवन में आगे कौन-सी नौकरी कर सकता था? होश गायब हो जाने के कारण शिधू जिंदा होते हुए भी मृत जैसा ही हो गया था।

यह अग्नि-परीक्षा उन्होंने किस के लिए दी? जिनके लिए उन्होंने इतना जबरदस्त त्याग किया, उन्होंने पेंशन देने के बाद उनकी और क्या खबर ली? अर्जुन अधिक पढ़ा-लिखा न होने के कारण अधिक समझता न था पर यदि वह बुद्धिमान होता, तो अपने आप से पूछता कि किस के लिए मैंने अपनी जान खतरे में डाली? इसमें मुझे क्या मिला? क्या देश की सेवा के लिए? किसके देश की सेवा? जिन के देशों की सेवा करने के लिए उसने इतनी कठिन परीक्षा दी, उनके देशों ने इस देश के लिए क्या किया?

अंग्रेज डाक्टर ने हिन्दुस्थानी डाक्टर से कहा—"ऐसी मेरी विचार-धारा है। तुम्हें यह महसूस नहीं होती, क्योंकि तुम लड़ाई पर नहीं गये। वहाँ जो अनर्थ हुए हैं, वे तुमने नहीं देखे। एक दूसरे पर गोलियाँ बरसाता था। प्राण लेता था। क्या वे परस्पर शत्रु थे? किस के लिए वे एक-दूसरे की हत्या कर रहे थे? अंग्रेज हो या जर्मन, डाक्टर की दृष्टि में सब बीमार बराबर होते हैं। दोनों का इलाज और सेवा मैंने की है। अंग्रेज अच्छा होकर अपने घर जा रहा था। और जर्मन अच्छा होते ही जेल भेज दिया जाता था। उस जर्मन ने इंग्लैंड का क्या अप-राध किया था? जिन्होंने लड़ाई की यह आग लगाई, उन्हें इस आग की कोई आँच न लगी। इधर रणभूमि पर खून की नदियाँ बहती थीं, परन्तु इस लड़ाई को शुरू कराने वाले राजनीतिज्ञों की अँगुलियों में

आलपीन गड़कर खून की बूंद नहीं निकलती थी। अपने देश के लिए मरने वाला अँग्रेज, अँग्रेजों की दृष्टि में "हीरो" था। फिर यही अँग्रेज अपने देश के लिए मरनेवाले जर्मन को क्यों जेल भेजते थे? मुझे आश्चर्य होता है इसी बात पर कि ये यूरोपियन एक-दूसरे के बैरी होंगे, पर वहाँ जाकर ये हिन्दुस्तानी क्यों मरे? अब इसी केस को लो। इस नौजवान का जीवन बरबाद हो गया है। उसकी जवान औरत उसके लिए तड़प रही है। वह उसके प्रेम के स्पर्श के लिए भूखी है और यह उसे पहचानता नहीं है! उसी तरह उसकी माँ को देखो। पुत्र है, पर जैसे उसका कोई नही! उन दोनों की वेदनाओं की कल्पना कौन कर सकता है? कल शायद कोई कुछ रुपये देकर इसकी भरपाई करना चाहे, पर जहाँ जीवन का ही सत्यानाश हो गया है, वहाँ यह कमी रुपयों से कैसे पूरी हो सकती है?

शिघू के उस रिश्तेदार डाक्टर को अँग्रेज डाक्टर की ये बातें जँची या नहीं, यह नहीं कह सकते। परन्तु शिघू के लिए जितनी दया, आस्था और प्रेम वह अँग्रेज डाक्टर दिखा रहा था, उतना प्रेम, उतनी आस्था, और उतनी दया हिन्दुस्थानी और रिश्तेदार होते हुए भी इस डाक्टर ने दिखाई हो, ऐसा दिखाई नहीं दिया।

रणभूमि पर खून के दर्शन से उसकी आँखें खुल गयी थीं। इसीलिए वह शिघू के लिए इतना चिन्तित था। फुरसत के समय शिघू के घर आकर वह उससे बातें करता और उसे मनुष्यों में लाने की कोशिश कर रहा था, परन्तु उसके प्रयत्न सफल होते नहीं दिख रहे थे। पास में जो पूँजी इन लोगों के पास थी वह समाप्त हो रही थी। अब सिर्फ गाँव का निजी घर बेचना ही रह गया था। गोपिका बाई ने सोचा कि गाँव लौट चलें और भाग्य को दोष देते हुए चुप बैठें।

परन्तु आशा बड़ी कठिन है—और फिर प्राणों की आशा! उस आशा का सूक्ष्म तंतु हाथ में पकड़े, अँग्रेज डाक्टर के आश्वासन पर गोपिका गाँव का घर बेचने को भी तैयार हो गयी।

विशाल बम्बई नगर में ये चार दुःखी प्राणी, एक को छोड़कर, एक दूसरे के मुँह की ओर ताक रहे थे। यह देखकर कि गोपिका घर बेचने का इरादा कर रही है, अर्जुन दुःखी हुआ। मेरा प्रिय पटेल—रणभूमि के भयंकर तूफान में मेरा साथी—मेरा प्राणों से भी प्यारा मित्र—उसके पास उसका निजी घर भी न रहे—यह उससे बरदाश्त न होता।

नौकरी के लिए वह द्वार-द्वार भटकने लगा। टूँठे को नौकरी कौन देता ? पलटन से मिले सर्टीफिकेटों को दिखाता हुआ वह हर आफिस में जाता। पर लड़ाई से घायल होकर वह आया था और उसके पास एक हाथ नहीं था। ऐसी स्थिति में इस व्यापारी दुनिया में दया से प्रेरित होकर उसे कौन नौकरी देता ?

अंत में अर्जुन को यही लगने लगा कि अब घर बेचे बिना कोई चारा नहीं। परन्तु किसी की भी किस्मत का सितारा चमका। एक मिल के मैनेजर को दया आयी और अर्जुन को उसने अपनी मिल के फाटक पर दरबान की नौकरी दे दी।

लड़ाई की चक्की में पिसे हुए वे चार आदमी गिरगाँव का घर छोड़-कर वरली की मजदूर-बस्ती में एक सीमेन्ट की चाल में रहने आये। वहाँ वे एक कमरे में रहने लगे।

———

जबरदस्ती का वानप्रस्थाश्रम

अर्जुन को पच्चीस रुपया माहवार वेतन मिलता था। इतनी सी तनख्वाह में चार आदमियों की गुजर होना कठिन हो गया था। इसलिए जब-जब जरूरत पड़ती तब-तब छोटा-मोटा एक-एक जेवर बेचकर गोपिका गुजर चलाने की कोशिश करती थी।

रमा ने सुभद्रा को भी बंबई ले आने का आग्रह पकड़ा। सुभद्रा की मनःस्थिति ठीक से उसी को महसूस हो रही थी। अर्जुन की नौकरी लग गई है, यह खबर गाँव पहुँच चुकी थी। नौकरी करने वाले मनुष्य की पत्नी को पति से अलग गाँव में रहना जन-दृष्टि में अनुचित था यह सिर्फ रमा ही समझती थी।

सुभद्रा को ले जाने के लिए अर्जुन के पास यशोदा के पत्र भी आ रहे थे। पर अर्जुन कहता था कि अभी जितने यहाँ हैं उनकी ही ठीक से गुजर नहीं हो रही है। फिर एक मनुष्य और क्यों व्यर्थ बढ़ाया जाए? पर रमा कहती—चाहे जो हो, हम लोग थोड़े-थोड़े भूखे रह जायेंगे, पर सुभद्रा को यहाँ लाना ही चाहिए। वह जिद करने लगी। तब बड़ी मुश्किल से अर्जुन उसे बम्बई बुलाने के लिये राजी हुआ।

वे लोग एक ही कमरे मे रहते थे और वह कमरा भी बहुत छोटा था। एक छोटे-से कमरे में पाँच आदमी कैसे रहें? और फिर उनमें भी दो अछूत और तीन ब्राह्मण! ऊपर से दम्पति भी! परम्परा और परिस्थिति से लड़ने वाला वह एक विचित्र परिवार था। कौन से दुख सहें, कैसे दिन कटें, जाति-भेद के नियम कैसे निभावें, ऐसी विचित्र परिस्थिति में ये लोग फँसे थे। उन्हें क्या तकलीफ हुई होगी इसकी कल्पना ही कर लेना अच्छा।

गोपिका को इस बात का बड़ा दुख हो रहा था कि हमारा एक आसामी कमा कर लाता है और उसकी कमाई हम खा रहे हैं। पर इसका कोई उपाय न था। नातेदार समझकर जिसके भरोसे वे सब बम्बई आये थे, वह डाक्टर भी, उनकी ऐसी गिरी हालत देखकर अब खबर लेने को भी नहीं आता था। बम्बई में उनका कोई दूसरा निकट का नातेदार न था।

गोपिका के मन में घर बेच देने की बात बार-बार उठती। गाँव का घर था। उसे खरीदने के लिये ऐन मौके पर कौन ग्राहक मिलता? अगर कोई खरीदता भी तो उन्हीं के भाई-बन्दों में से कोई खरीदता। एक तो वे भाई-बन्द पहिले से ही शिधू के परिवार से जलते थे। ऊपर से यह देखकर कि उन पर अचानक आपत्ति आ पड़ी है, वे उनके घर को बहुत सस्ते दामों में खरीदने की कोशिश करते। फिर घर बेंचने के बाद भी आवश्यक रुपये प्राप्त न होते।

गोपिका ने सोचा—अपना घर वैरी के हाथ में जाये इससे तो यदि वह गिर पड़े, तो क्या बुरा है। जी कड़ा करके यदि आज घर बेच भी दूँ, तो उससे जो रकम मिलेगी, उस रकम से भी हमारी गुजर आखिर कितने दिन चलेगी? होगा यह कि घर शत्रुओं के हाथ में चला जायगा और हम जैसे गरीब आज हैं, उसी तरह आगे भी बने रहेंगे। इससे अच्छा तो यही है कि घर न बेचूँ। कम-से-कम एक जायदाद तो है। बनी रहेगी। आज विपत्ति के जो बादल हम पर छाये हैं, वे कभी-न-कभी दूर होंगे ही। इसीलिये हमें विपत्ति का डटकर मुकाबला करना चाहिये। तब तक अपने आसामी के उपकार के नीचे दबा रहना ही श्रेयस्कर है।

पाँचों को जैसे-तैसे एक जून भोजन मिल पाता। दो-दो तीन-तीन महीने का कमरे का किराया चढ़ जाता और जब घर मालिक उनके पीछे तकाजा लगा देता तब तो सभी के दिलों पर गहरी चोट पहुँचती। बम्बई में उनकी पहचान का कोई भी न था जिससे कुछ रुपये उधार

ले आते। यह आशा भी करीब-करीब जाती ही रही थी कि शिधू अच्छा हो जायेगा, काम करेगा और कमाने लगेगा। ऐसी परिस्थिति में निराशा की ओर आँखें लगाये दिन काटना गोपिका के लिये बड़ा कठिन हो गया था।

जब-जब अर्जुन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करती, तब अर्जुन उसे बोलने ही न देता। वह कहता—"माँ, आपके लिये जैसे छोटे मालिक, वैसे ही मैं हूँ। अपना दूसरा ही बेटा समझ लें मुझे और खामोश रहें। भगवान अन्धा नहीं है। कभी-न-कभी उसे दया आयेगी ही। मेरा पटेल अच्छा हो जायगा।"

सब से अधिक दुखी था रमा। स्वयं तो दुखी थी, पर उसे अपना दुख स्पष्ट रूप से बताते नहीं बनता था। दूसरों के दुख के लिये मैं कारणीभूत हो रही हूँ, यह महसूस करके उसका मन पागल हो उठता। पति से उसका अलगाव हो ही गया था। पर कोई कारण न होते हुये अर्जुन और सुभद्रा का अलगाव सिर्फ मेरे ही कारण हो रहा है, यह महसूस करके उसे बड़ा दुख होता।

सदा अपनी आँखों के सामने रहने वाले पति का जबरदस्ती का वियोग सुभद्रा को भी महसूस हो रहा था। गोपिका कमरे के बाहर गैलरी में सोने का हठ करती। रमा और शिधू भी गैलरी में सोने की कोशिश करते। पर यह बात अर्जुन को जँचती न थी। शिधू को छोड़ना अर्जुन के लिये असम्भव हो गया था। यह विचित्र परिस्थिति गोपिका के मातृ-हृदय को मर्म में दाग देने की तरह महसूस हुए बिना न रहती।

एक दिन अर्जुन जब काम पर से घर लौटा तो बड़ी खुशी में था। उसकी मिल के एक विभाग में एक-दो जगहें खाली हुई थी। उसके मैनेजर ने एक जगह पर सुभद्रा को लगा देने की स्वीकृति दे दी थी और इसी कारण वह खुश था। यह देखकर कि हमारी आमदनी अब थोड़ी और बढ़ जाएगी सभी को खुशी हुई थी। अर्जुन और सुभद्रा दोनों का वेतन और अर्जुन की पेंशन, इससे बहुत कुछ कठिनाई दूर

हो सकती थी। शिधू फौज में नौकर नहीं था। दूसरे विभाग के जो लोग लडाई पर गये थे और वहाँ जाकर घायल हुए थे उन्हें पेंशन नहीं दी जाती थी। ग्रेच्यूटी के रूप में दो-चार महीने की तनख्वाह दे दी जाती थी। इस नियम के अनुसार उसे कुछ ग्रेच्यूटी मिलनी थी। पर उसे प्राप्त करने के लिए जो प्रयत्न करने चाहिए थे। उन्हें करने के लिये वह असमर्थ था। इसलिए दोनों परिवारों के खर्च का सारा भार अर्जुन और सुभद्रा को ही उठाना पड़ता था।

सुभद्रा को नौकरी मिल जाने का सब को आनन्द हुआ। दुख हो रहा था सिर्फ रमा को। उसका मन कहने लगा—"सुभद्रा नौकरी करती है। मैं भी नौकरी करूँ।" वह अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थी। ब्राह्मण की औरत के योग्य नौकरी मिलने के लिए कम-से-कम वर्नाक्यूलर फाईनल परीक्षा पास होने की आवश्यकता थी। ऐसी कोई परीक्षा वह पास न थी। इसीलिए उसे लगा कि मैं भी मिल में जाकर नौकरी करूँ।

मिल में जाकर नौकरी करने का विचार सिर्फ उसके मन में आ रहा था परन्तु प्रत्यक्ष वहाँ जाकर नौकरी करने के लिये उसका मन तैयार नहीं होता था। मिल में जाकर काम करने वाली स्त्रियाँ उसके मुहल्ले में बहुत सी थीं। वे कैसी होती हैं, यह वह रोज देख रही थी। उसे तो यह भी लगता कि उन औरतों के साथ सुभद्रा को भी न जाना चाहिये। पर वह सोचती, नीच जाति की औरतों को यही नौकरी अच्छी लगती है। इसलिये जहाँ तक सुभद्रा का सवाल है, उसे मिल में नौकरी करना ठीक है। उसके लिए वह कोई बुरा नहीं। सुभद्रा को मिल में नौकरी करते देख उसके जाति वाले उसे बदनाम नहीं करेंगे। सुभद्रा भी नौकरी मिल जाने से खुश थी। परन्तु ब्राह्मण परिवार की कोई बहू या लड़की मिल के विशाल यंत्रों के भीड़-भड़क्के के बीच जाकर इन अछूतों के साथ कैसे काम करेगी ?

नौकरी करने की मन में इच्छा होते हुए भी हर जगह उसका ब्राह्मण होना रुकावट पैदा कर रहा था। ब्राह्मणों को लगता है कि वे

श्रेष्ठ दर्जे के लोग हैं। अगर नौकरी करनी है, तो तनख्वाह चाहे कम मिले, पर वह नर्स या मास्टरी जैसी श्रेष्ठ दर्जे की नौकरी होनी चाहिए।

दूसरे ही क्षण उसके मन में आता—मेरा दर्जा श्रेष्ठ है न ? फिर एक अछूत के सहारे जीवन बिताना क्या मेरे लिए शोचनीय नहीं है ? उसे लगता, यह देखने कौन आता है कि हम अछूत का दिया खा रहे हैं। परन्तु मैं यदि मिल में नौकरी कर लूँ, तो दुनिया भर में बात फैल जाएगी और मेरी बदनामी होगी। यह सच है कि मेरे परिचित अन्य रिश्तेदार वैसे मुझे कभी नहीं पूछते। परन्तु यदि ऐसा कुछ हो जाय, तो इतनी ही बात उनकी नजरों में भर जायगी और वे मेरी बदनामी करने लगेंगे। फिर मुझे मुँह दिखाने की भी दुनिया में कहीं स्थान न रहेगा।

जब तक उसके परिचितों और नातेदारों को यह नहीं मालूम हुआ है, कि उनकी गुजर कैसी हो रही है, तब तक जो परिस्थिति उपस्थित हो गयी है उसके आगे गर्दन झुकाकर, अछूत का अन्न खाकर, जिंदा रहना ही उसे भला लगा।

खाना रमा ही पकाती थी। कभी-कभी गोपिका भी चूल्हा सँभालती। इसलिए यह कल्पना करके कि हम दोनों अर्जुन की रसोईदारिनें हैं और इसीलिए वह हम तीनों को पोस रहा है, वह अपने संकोचित मन को धोखा देना चाहती थी।

परन्तु रमा और गोपिका के खाना पकाने से अर्जुन को क्या कोई सुख था ? वह ब्राह्मण नहीं था। मांस-मच्छी खाने वाला था। परन्तु रमा और गोपिका को कोई कष्ट न हो, इसलिए वे पति-पत्नी निरामिष भोजन पर पेट भरने की कोशिश करते थे। कोशिश करते थे इसलिए कहता हूँ कि जिन्हें मांसाहार की आदत होती है उन्हें हमेशा निरामिष भोजन पर रहना बहुत कठिन हो जाता है। इस विषय में अर्जुन कभी-कभी सुभद्रा का मजाक भी उड़ाता। किसी दिन सुभद्रा यदि कुछ कम खाती, तो वह ठिठोली करके यह बात महसूस करा देता और तभी वह

बात रमा और गोपिका की समझ में आती। एक दिन सुभद्रा ने कह ही दिया—"झूठ क्यों बोलूं ? जब तक सालन नहीं होता, मैं खा ही नहीं सकती। यहाँ ताजी मछलियां कहाँ मिलें ? मुझे कोंकण की जो आदत पड़ी है। और ये इतने दिन पलटन में रहे हैं। तुम नहीं जानतीं माँ। वैसे देखा जाए तो हमारा खाना बड़ा सीधा होता है। भात और मछली की दाल बना ली कि हमें और किसी चीज की जरूरत नहीं होती। दाल, घी, सब्जी, छाछ इन सब का काम सिर्फ मछली से चल जाता है। रोटी बनाने की भी हमें जरूरत नहीं पड़ती। वैसे कहते भी है कि मछली में बड़ा सत्व होता है। तभी तो थोड़ी-सी तनख्वाह में ही हमारी गुजर हो जाया करती है।"

रमा की आँखें एकदम छलछला आयीं। उसे लगा हम न होते तो इतनी तनख्वाह में ये दोनों बड़े मजे में रहते। इसके सिवा अर्जुन अपनी माँ के लिए भी ५-६ रुपया गाँव भेज सकता।

दूसरे दिन से रमा ने दाल और घी की छुट्टी दे दी। छाछ और भात पर ही गुजर चलाना शुरू किया। कभी दाल बनाती भी, तो उसमें दाल कम और पानी अधिक रहता। मसाला और मिर्च अधिक डाल देती। अर्जुन और सुभद्रा इसे समझ न पाये। उन्हें यह बदलाहट महसूस भी हुई। पर दाल और घी के बिना गोपिका के गले के नीचे कौर ही नहीं उतरता था।

फिर दाल, भात, सब्जी खट्टी दाल, छाछ आदि पर जाना पड़ा। रमा को लगा हमारे लिए उन दोनों ने मांस और मछली का खाना छोड़ दिया और हमारे खातिर दिन-रात खपनेवाले उन दोनों के लिए घी दाल और सब्जी का स्वाद हमें क्यों न छोड़ देना चाहिए ? अपनी सफेदपोशी से उसे घृणा हुई। रमा सोचने लगी—किसे, किस के लिए, कितना स्वार्थ-त्याग करना चाहिए ? त्याग करने का सारा हिस्सा अर्जुन ने, एक अछूत ने, ब्राह्मण से तुलना करते समय जो गाँव में एक कीड़े की तरह माना जाता है ऐसे एक नौकरी करने वाले अछूत ने, उठाया है।

लड़ाई से घायल होकर वह वापिस आया, पर एक घंटे के लिए भी सुभद्रा से उसका एकान्त न हुआ। अपनी जन्मदात्री माँ के हाथ का एक कौर भी उसने नहीं खाया। वह नौकरी करता है, पैंशन पाता है, उसकी औरत ने भी नौकरी कर ली है और उनकी आमदनी पर उसके मालिक पटेल कहलाने वाले तीन आदमी खा रहे हैं। नौकरी करने के बाद जो समय बचता है, उस समय में वह शिघू को संभालता है। उसे कभी फुरसत ही नहीं मिलती। रमा के सामने प्रश्न खड़ा हुआ थोड़ी भी शिकायत न करके ये अछूत इतना स्वार्थ-त्याग क्यों करते हैं।

वे दोनों पति-पत्नी एक कमरे में रहते थे। पर दोनों एकान्त में नहीं मिल सकते थे। वे बूढ़े नहीं हो गये थे। दोनों तरुण थे—बल्कि उनकी जवानी हाल ही में आरम्भ हुई थी। एक ही घर में एक दूसरे से पराये हुये थे पति-पत्नी एक दूसरे के लिए छटपटा रहे थे। फिर भी एकान्त में एक दूसरे की भेंट होना असम्भव हो बैठा था। रमा को लगा यह कैसा भाग्य का खेल है ? यह खेल कब खत्म होगा ?

अँग्रेज डाक्टर बीच-बीच में आता रहता था। नये-नये इंजेक्शन के शिघू पर प्रयोग करके देख रहा था। अर्जुन के सिवा और किसी की न सुनने वाला शिघू इस अँग्रेज डाक्टर की बात बिल्कुल चुपचाप मान लेता। इसलिए रमा की आशा का अंकुर अभी सूखा न था।

किसी न किसी उपाय से उसके पति की स्मृति लौट आवे इसलिए व्रत करती। पर व्रत पूरा होने पर ब्राह्मण को दक्षिणा देने के लिए उसके पास एक कानी कौड़ी भी न थी। गोपिका को किसी भी व्रत की याद आती तो वह रमा को वही व्रत करने के लिए कह देती और रमा चुपचाप परिक्रमा पूजा और व्रत शुरू कर देती।

पुनः-पुनः रमा के मन में आता कि वह भी नौकरी करे। जब उसने सुभद्रा से कहा कि वह भी नौकरी करना चाहती है, तब सुभद्रा बोली—"क्या तुम मिल की नौकरी करोगी भाभी ? मिल की नौकरी क्या होती है इसकी तुम्हें कोई कल्पना भी है ? किस तरह मैं वहाँ दिन काट रही

हूँ, सो मैं ही जानती हूँ। सुबह से शाम तक खड़े-खड़े इधर-उधर घूमते रहना पड़ता है। खाने के लिए भी पूरा वक्त नहीं मिलता। मुकादम और जमादारिन का कड़ा पहरा रहता है हमारे सिर पर। ऐसी हालत में क्या तुम काम करोगी ? यहाँ आठों पहर लगातार मशीनों की घरघराहट होती है जिसके कारण कानों के परदे फट जाते हैं। एक दिन तुम देखने तो आओ, एक मिनट भी वहाँ नहीं ठहरोगी। तुम से ठहरा ही नहीं जाएगा। फिर तुम मिल में काम कैसे करोगी ? जन्म से तुम सुख में पली हो। घर के आँगन की धूप को छोड़कर बाहर की धूप कभी नहीं देखी तुमने। पानी के घड़े के सिवा कोई बोझ नहीं उठाया तुमने। भाग्य से सास भी तुम्हें बड़ी ममतामयी मिली है। किसी की कड़ी बात सुनने का भी मौका तुम्हें कभी नहीं आया। ऐसी स्थिति में तुम क्या मिल में काम करोगी ? फिर ब्राह्मण की लड़की हो। जिन मिलों में ब्राह्मण कभी बाबूगीरी भी नहीं करते, वहाँ तुम ब्राह्मण की बहू क्या मरने-खपने जाओगी ?"

"तो फिर क्या करूँ ?"—रमा बोली—"इस प्रकार दूसरे का अन्न खाना मुझे विष खाने जैसा लगता है।"

"यह कैसी बात कह रही हो, छोटी मालकिन ?" सुभद्रा भर्राये हुए स्वर में बोली—"कह नहीं सकते कितनी पीढ़ियों से हम तुम्हारा अन्न खाते आये हैं। तुम्हारी जमीनें जोतकर हमारे बच्चे जिंदा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में मौका आने पर तुम्हारी सेवा हम न करें, तो कौन करेगा। इसे तुम दूसरे का अन्न क्यों कहती हो, भाभी ! यह क्यों नहीं कहती कि पीढ़ियों से तुम लोगों ने हम पर जो उपकार किये हैं, उसका यह थोड़ा-सा बदला हम चुका रहे हैं ? खैर, पटेल और आसामी का नाता थोड़ी देर के लिए हम भूल जाएँ। फिर भी विपत्ति में इन्सान की मदद क्या इन्सान को ही नहीं करनी चाहिए ? आज का यह वक्त कभी-न-कभी जाता रहेगा। आगे जब हमारे बुरे दिन कभी आएँगे उस वक्त हमें तुम चाहो तो एकाध जागीर दे देना !"

रमा आगे कुछ न कह सकी। सुभद्रा से ऐसा कोई उत्तर प्राप्त होगा, ऐसी उसे कल्पना थी ही परन्तु मन की बात बाहर निकाल देने के उद्देश्य से ही उसने सुभद्रा से वह प्रश्न किया था।

शिधू के स्वास्थ्य में कोई फर्क नहीं हो रहा था। अर्जुन कहीं से बहुत सी पुस्तकें लाकर उसके पास रख देता जिससे वह खाली न बैठा रहे। कम-से-कम कुछ पढ़ता ही रहे। शिधू का मन पढ़ने को करता, पर पढ़ने की कोशिश करना भी उसके लिए असंभव हो गया था। वह पढ़ता, पर जो पढ़ता था उसका मतलब उसके दिमाग में नक्श न होता। अक्षरों पर से आँखें फिर जातीं। फिर भी उस लिखावट का अर्थ उसके दिमाग को महसूस न होता। उलटे उसे कष्ट होते। जब अर्जुन ने यह देखा तब उसने उसके लिए पुस्तकें लाना बंद कर दिया।

गोपिका पुनः-पुनः प्रयत्न करके देखती, परन्तु शिधू ने उसे नहीं पहचाना। एक ही जगह रहने के कारण किसी परायी स्त्री से जिस तरह पहचान हो जाती है, उसी तरह की पहचान गोपिका ने कर ली थी। माँ के नाते वह उसे नहीं पहचान पाता था। वह घंटों शिधू के पास गप्पें करती बैठी रहती थी। बातचीत के सिलसिले में पुरानी स्मृतियों को दोहराने की कोशिश करती। पर उन पुरानी बातों की शिधू को याद ही न आती।

रमा ने अलबत्ता उससे बात करने का कोई प्रयत्न न किया। वह स्वयं परायी तरुणी से बोलने में हिचकिचाता था, उसे संकोच होता था। वह झेंपता था। वह तत्कालीन प्रथा थी। तत्कालीन तरुण समान-वय की अथवा साधारणतः तरुणी मानी जाने वाली स्त्री से बातें करता तो वह सभ्यता का लक्षण नहीं समझा जाता था। गोपिका ने जिस तरह शिधू से एक प्रकार से नयी पहचान कर ली थी, उसी तरह मैं भी कर लूँ, ऐसा सोचकर, एक दिन रमा ने उससे बातें करना आरंभ किया, तब वह बिल्कुल मुँह फेर कर ही बैठ गया। उसके सामने चाय रखते समय जब वह पूछती—"क्या चीनी कम है—क्या दूध और

लाऊँ ?" तो वह 'हाँ' और 'ना' के सिवा उसे दूसरा कोई उत्तर न देता। सुभद्रा ने भी बड़े अदब से एक बार उससे बातें करने की कोशिश की, परन्तु उसके मन पर कोई प्रभाव न पड़ता था। वह अगर सबसे अधिक बातें किसी से करता था, तो सिर्फ अर्जुन से। और उसने नयी पहचान कर ली थी गोपिका से। सिर्फ इसलिए कि वह बूढ़ी थी।

पर वह बेचारी क्या बातें करती? बोलने के लिए उसके पास ऐसा कौनसा विषय था? अर्जुन से वह लड़ाई की बातें करता। वही-वही बातें बार-बार दोहराता और अर्जुन बिन ऊबे उन्हें सुन लिया करता। लड़ाई की बातों को छोड़कर, उसे और किसी बात की याद ही न थी। इसलिए गोपिका जिस समय उस से बातें करती उस समय वह उन्हें सिर्फ सुना करता।

गोपिका ने अपनी जिंदगी में अनेक प्रसंगों का अनुभव किया था। कई संकटों का सामना किया था। वह बूढ़ी हो गयी थी और अब मृत्यु की ओर दृष्टि लगाये बैठी थी। इसलिए इस परिस्थिति में वह स्थितप्रज्ञ होकर शान्त रहने लगी थी। पर रमा के जीवन में दुःख का यह धक्का पहला ही था। सास और बहू दोनों हताश हो गयी थीं। परन्तु दोनों की परिस्थिति भिन्न-भिन्न होने के कारण दोनों की हताशता पर भिन्न-भिन्न प्रकार की छटायें आ रही थीं। गोपिका उदास हो चली थी। रमा की बेचैनी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ रही थी। दोनों को आगे की राह नजर नहीं आ रही थी। परन्तु आगे की राह को खोजने के बारे में गोपिका जिस तरह निराश हो गयी थी, उसी तरह रमा की आशा उस राह को खोजने के लिए दशों दिशाओं में बिना रुके दौड़ रही थी।

रमा शिधू से पहचान करने का बार-बार प्रयत्न कर रही थी। एक बार उसने जी कड़ा करके उससे बड़े लाड से लागलपट करने की कोशिश की, तो वह चिल्लाकर भाग उठा। अच्छा हुआ जो अर्जुन उस वक्त था। वह उसे पकड़ कर वापिस ले आया।

रमा ने वैसा प्रयत्न फिर कभी न किया।

एक रविवार को छुट्टी होने के कारण अर्जुन शिधू के पास बैठा बातें कर रहा था। शिधू को उस समय मादेलीन की याद हो आयी थी। मादेलीन के बारे में बातें करना जिस समय उसने आरम्भ किया, उस समय बैठक के नजदीक बैठी रमा को अर्जुन ने गैलरी में जाकर बैठने के लिए मजबूर किया।

बड़े कष्ट से वह चली गयी। मादेलीन का नाम सुनते ही उसका हाल जानने के लिए यद्यपि वह उत्सुक हो गयी थी, फिर भी शिधू के बारे में उस घर में अर्जुन के हुक्म को न मानने की किसी की भी हिम्मत न होने के कारण रमा को बाहर जाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

शिधू बड़े रंग में आकर मादेलीन का हाल सुना रहा था। परन्तु उसमें अर्जुन को ऐसा एक भी प्रसंग सुनाई नहीं दिया जिसके कारण शिधू के प्रति किसी के मन में कोई अनादर पैदा हो। शिधू में उस समय अपनी बुद्धि पर इतनी पकड़ न थी कि वह कोई बात जान-बूझकर छिपाने की कोशिश करता। वह बार-बार उन्हीं शब्दों में मादेलीन की प्रशंसा कर रहा था। वह प्रशंसा उसकी राष्ट्र-भक्ति के विषय में थी और उसकी वे बातें अर्जुन बड़े भक्ति-भाव से सुन रहा था।

इसी समय तोप की गड़गड़ाहट की तरह अचानक एक जोर की आवाज कानों में पड़ी।

शिधू चौंक पड़ा। एकदम रुका और बोला—"क्या लड़ाई इतने नजदीक आ गयी, अर्जुन ?"

"ठहरो। मैं देखकर आता हूँ।"—कहकर अर्जुन ने बाहर जाकर गैलरी में से झाँककर देखा।

पुनः आवाज आई। उस आवाज के आते ही शिधू कमरे से उठकर बाहर गैलरी में आया और आनन्द से थरथराता हुआ बोला—"लड़ाई! लड़ाई!! आ गये! दुश्मन बिल्कुल नजदीक आ पहुँचे!"

आवाज़ काहे की है, यह कोई भी न जान पाया। चाल के सब लोग एकत्रित हो गये और आश्चर्य-चकित होकर देखने लगे। अर्जुन बाहर जाकर कुछ पूछताछ करने का विचार कर रहा था, परन्तु शिधू को अकेला छोड़कर जाने की उसे हिम्मत न होती थी। आवाज सुनकर शिधू बेचैन और बेकाबू हो गया था। क्या करूँ, इसके बारे में सिर्फ विचार करता हुआ वह गैलरी में उसी तरह खड़ा रहा।

———

वरली के सुरंग

वे दोनों गैलरी में खड़े थे। गोपिका, रमा और सुभद्रा उन दोनों के पीछे खड़ी हुई देख रही थीं। दो आवाजों के बाद फिर कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ी। यह देखकर, चाल के अन्य लोग, जो अपने-अपने कमरे से बाहर आकर गैलरी में खड़े हो गये थे, फिर से अपने-अपने कमरों में चले गये।

अर्जुन ने भी शिधू को कमरे में लाकर बिठा दिया। शिधू बार-बार वही प्रश्न पूछ रहा था और कुछ भी उत्तर देकर अर्जुन उसे समझाने का प्रयत्न कर रहा था।

उसका ध्यान दूसरी तरफ आकर्षित करने के लिए अर्जुन ने मादेलीन की बात निकाली और मादेलीन का स्मरण होते ही किसी छोटे बालक की तरह लड़ाई की बात करना छोड़कर, वह उसी की बातें करने लगा।

यदि उस समय कोई उसे बातें करता हुआ सुनता, तो उसे यह शंका भी न हुई होती कि वह अपनी स्मृति खो बैठा है। मादेलीन ने उसे फ्रेंच लोगों की देश-भक्ति के बारे में जो बातें बताई थीं, उन्हें वह बड़े उल्लास से कह रहा था। अर्जुन उन बातों को समझता था या नहीं, इसका जरा शक ही था। फिर भी वह ऐसा अभिनय कर रहा था, जैसे उन बातों के रंग में वह पूर्ण रूप से रंग गया है। रमा और गोपिका अलबत्ता उन बातों को बड़े चाव से चोरी-से सुन रही थीं। शिधू की बातें लगातार शुरू थीं। मांश्यूलेग्रां और मादेलीन ने फ्रेंच साहित्य से उसका किस तरह परिचय कराया ? उन्हें पढ़कर उसके मन पर क्या प्रभाव पड़ा ? यह सब बड़े उत्साह से बता रहा था।

उन बातों को सुनते समय अर्जुन का ध्यान दूसरी तरफ आकृष्ट

हो गया था। वे आवाजें काहे की हैं, और कहाँ से आयीं, यही वह सोच रहा था। वह सिपाही था। रणभूमि पर दागी जानेवाली बंदूक की गोलियाँ और गड़गड़ाहट के साथ गिरनेवाले तोप के गोले उसने प्रत्यक्ष देखे थे। दशों दिशाएँ गुँजा देने वाली रणभूमि की आवाजें कई दिनों से उसने नहीं सुनी थीं। जो दो आवाजें उसने अभी सुनी थीं, वे निश्चिय ही मामूली बंदूक की न थी। उसने सोचा कोई लड़ाकू जहाज तो नहीं आ गया है! उस जहाज से वरली के पहाड़ पर तोप के गोले तो नहीं बरसाये जा रहे हैं!

इसी शंका ने उसे अस्वस्थ कर दिया था। उसे लगा कोई लड़ाकू जहाज ही आया है। क्या हुआ यह जाकर देखे बिना उसे चैन न था और इधर शिधू अपनी बातें खत्म करने का नाम नहीं ले रहा था।

अर्जुन ने धीरे-से गोपिका को इशारा किया और उसे अपने पास बुलाया। गोपिका उसके पास जाकर बैठ गयी और शिधू की बातें सुनने लगी। जब शिधू ने गोपिका को सामनेदेखा तो अर्जुन पर से अपनी नजर हटाकर उसने गोपिका पर जमा दी। फ्रान्स की स्त्रियों की अलौकिक निर्भयता की और उनके अनुपम स्वार्थ-त्याग की बातें उसके हृदय में स्फुरित होने लगीं और जरा भी न घबराकर वह फ्रान्स की तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन करने लगा।

यह देखकर कि शिधू की नजर अब उस पर नहीं है और गोपिका की ओर मुड़ गई है, अर्जुन धीरे-से वहाँ से सटक दिया और चाल से बाहर निकल पड़ा।

वह सड़क पर आया। उस आवाज की किसी ने विशेष परवाह नहीं की थी। कोई कहता, कौवों को मारने के लिए किसी ने बंदूक चलाई होगी। कोई कहता, किसी आतिशबाज ने कोई बड़ा पटाखा छोड़ा होगा। परन्तु बंदूक और पटाखे की आवाज में जो सूक्ष्म अंतर होता है, उसे पहचाने की अर्जुन के कानों में आदत थी। इन दोनों आवाजों की अपेक्षा वह भिन्न थीं। तोप की आवाज से उस आवाज की थोड़ी-बहुत

समानता थी।

हाल ही में एमडन नामक एक क्रूजर आया था। उसने मद्रास के किनारे पर गोले बरसाये थे। इस घटना से सभी परिचित थे। कुछ लोग यह भी कहते थे कि उन्होंने उस जहाज को बम्बई के किनारे से जाते देखा था। कहीं वही लड़ाकू जहाज फिर से तो नहीं आ गया? कहीं उसने तो ये गोले न बरसाये हों?

वह आधी दूर तक गया था कि वही आवाज फिर आई।

वह एकदम पहाड़ की ओर दौड़ पड़ा। पहाड़ के कगार टूटकर इतस्ततः फैले हुए दिख रहे थे। वरली के पहाड़ के उस पार समुद्र है यह वह जनता था। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि क्रूजर ने ही ये गोले बरसाये हैं। वह जोर से वरली के पहाड़ की तरफ भागने लगा।

इधर फ्रान्स की ललनाओं के स्वार्थ-त्याग की बातें सुनने में खोये हुए शिधू के कानों से भी वही आवाज आकर टकराई और वह एकदम चौंक उठा। तड़ाक से उठकर वह खड़ा हो गया और अर्जुन को पुकारता हुआ गैलरी में आया।

फिर एक और आवाज हुई।

अब शिधू बेकाबू हो गया और "अर्जुन! अर्जुन!" चिल्लाता हुआ जल्दी-जल्दी जीना उतर कर सड़क पर जा पहुँचा। गोपिका, रमा और सुभद्रा उसके पीछे दौड़ पड़ीं।

शिधू बिल्कुल बेकाबू हो गया था। वह आगे-आगे भागा जा रहा था और वे तीनों औरतें उसका पीछा करके उसे पकड़ने की कोशिश कर रही थीं।

चाल के लोगों को सिर्फ इतना ही पता था कि उनके चाल में कोई एक पगला रहता है। यही सोचकर कि वही पगला भागा जा रहा है किसी ने उस ओर विशेष ध्यान न दिया। किसी-किसी ने उसे रोकने की कोशिश भी की, पर वह इतना बेकाबू हो गया था कि उसे रोक रखने की किसी में ताकत न थी। एक रोकने वाले व्यक्ति के हाथ को तो उसने

कसमसाकर काट भी खाया था।

वह इतने वेग से भाग रहा था कि थोड़े ही समय में उसने बहुत सा फासला तय कर डाला। अर्जुन ने अब दौड़ना बंद कर दिया था। टूटे हुए पत्थर जिस तरफ से आते हुए दिखाई दिये थे, उसी तरफ वह तेजी से चला जा रहा था। शिधू ने अर्जुन को देख लिया। अर्जुन को देखते ही उसके दौड़ने का वेग बढ़ गया। अर्जुन को पुकार-पुकारकर शिधू का गला बंठ गया था। अब अर्जुन को सामने देखते ही वह उसी की तरफ बेतहाशा भागता हुआ उसके नजदीक पहुँचने की कोशिश करने लगा।

गोपिका, रमा और सुभद्रा तीनों जितना संभव था उतना दौड़ने का प्रयत्न कर रही थी, परन्तु वेकाबू होकर भागन वाला शिधू इतनी दूर निकल गया था कि दोनों के बीच करीब एक फर्लांग का अन्तर हो गया।

अर्जुन भागे जा रहा था और शिधू उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ उससे मिलने की कोशिश कर रहा था। जिस तरफ से पत्थर उड़ते हुए आते दिखे थे उस स्थान के बिल्कुल नजदीक अर्जुन जा पहुँचा और शिधू पीछे-पीछे दौड़ता हुआ चला आ रहा था।

पुनः एक बड़े जोर की आवाज हुई और पत्थर के छोटे-बड़े टुकड़े चारों ओर उड़ पड़े। एक छोटा-सा टुकड़ा अर्जुन के पैरों के नजदीक आ गिरा—

इसी समय उन तीन औरतों की चीखें अर्जुन के कानों में पड़ीं। उसने मुड़कर पीछे देखा और वह पीछे की ओर दौड़ पड़ा।

उसके पीछे थोड़ी ही दूर पर लहूलुहान होकर शिधू जमीन पर बेहोश पड़ा हुआ था।

अर्जुन की आँखों के सामने अंधकार छा गया। उसने यह कभी सोचा ही न था कि शिधू उसके पीछे आ रहा होगा।

थोड़ी देर में वे तीनों औरतें भी उस स्थान पर आ पहुंचीं। शिधू को वहाँ उस स्थिति में पड़ा हुआ देखते ही एकदम उसे बाहों में भरकर

रमा फूट-फूटकर रोने लगी। गोपिका तो पगली जैसी ही हो गयी थी। आँखों के सामने अँधेरा छा जाने के कारण सुभद्रा को लगा जैसे उसे गश आ रहा है। इसलिए वह झट से जमीन पर बैठ गयी।

बात-की-बात में आसपास के लोग वहाँ जाकर इकट्ठा हो गये। आस-पास किसी प्रकार की डाक्टरी मदद मिलने का कोई साधन नहीं था। आस-पास कहीं टेलीफोन भी न था।

रमा को बड़ी मुश्किल से हटाकर अर्जुन देखने लगा कि शिघू को क्या हो गया है। शिघू के सिर में गहरा घाव हो गया था। आस पास पत्थर के टुकड़े पड़े हुए थे। सब ने अंदाज लगया कि उड़े हुए पत्थर के टुकड़ों में से ही एकाध पत्थर उसे जोर से लग गया होगा।

शिघू के सिर से खून की धारा बह रही थी। इसी समय कोई दौड़ कर गया और नजदीक के होटल से बहुत सी बर्फ ले आया।

बर्फ सिर पर रखा गया। फिर भी खून का बहना बन्द न हुआ। नज़दीक कहीं कोई गाड़ी भी नहीं थी। सड़क से एक साईकल वाला आ रहा था। वह आगे जाकर कहीं से एक विक्टोरिया ले आया।

गोपिका और रमा रोती-चिल्लाती हुई उस गाड़ी में चढ़ रही थी। उन्हें दूर करने की सबने कोशिश की। गाड़ी लानेवाले मनुष्य ने और अर्जुन ने बड़ी सावधानी से शिघू को उठाकर गाड़ी में बिठाया।

जब गाड़ी चलने लगी तब अर्जुन चिल्लाकर बोला—"तुम लोग अब घर लौट जाओ। कोई चिन्ता करना। मैं इनके साथ हूँ।"

चलती गाड़ी को पकड़कर उसके साथ दौड़ती हुई रमा जबरदस्ती गाड़ी में चढ़कर बैठ गयी। अर्जुन कुछ न कर सका।

गाड़ी अस्पताल जा रही थी। तभी सामने से एक अंबुलेन्स कार आती दिखाई दी। किसी ने फोन करके शायद उसे मँगा लिया था।

विक्टोरिया रोक दी गई और उसमें से शिघू को उठाकर अंबुलेन्स में चढ़ा दिया गया। अर्जुन और रमा दोनों उसके साथ थे ही।

कार अस्पताल पहुँची। स्टेचर पर रखकर शिघू को भीतर ले गये।

अर्जुन ने उसे देखा। उसे भी लगा, स्मृति लौट आवे और वह सब को पहचान ले तो क्या ही मजा आ जाए ? मन-ही-मन उसने संगमेश्वर की जाखूमाई की मनौती मनाई।

उधर लोगों ने किसी तरह समझा-बुझाकर गोपिका और सुभद्रा को घर पहुँचाया। दोनों गैलरी में खड़ी होकर रास्ते की ओर देख रही थीं। नजदीक के कमरों वालों से उनका परिचय नहीं हुआ था। इस कारण कोई पड़ोसी आकर उन्हें संतोष दे, यह भी सम्भव न था।

दोनों एक दूसरे के मुंह को ताक रही थीं। देखते-देखते गोपिका को एकदम दुख का आवेग आया और वह फूट-फूटकर रोती हुई एकदम नीचे बैठ गयी। सुभद्रा अपने ढंग से उसका समाधान कर रही थी। पर जहाँ उसी के मन को धक्का लग गया था, वहाँ वह भी किन शब्दों में उसे सान्त्वना देती ?

एक-एक क्षण उन्हें युग की तरह लग रहा था। परन्तु देखते रहने के सिवा दूसरा कोई उपाय ही न था। रंभा के चले जाने के कारण गोपिका बिल्कुल निरुत्साहित-सी हो गयी थी और मैं नहीं गयी, यही उसके मन को चुभ रहा था। अधिक ममता किसकी ? शिधू ने मेरी कोख से जन्म लिया है, उसे मैंने नौ मास अपने पेट में रखा, वह मेरे पेट का गोला है अँतड़ियों का खिचाव बड़ा विलक्षण होता है, पर उस के साथ गयी वह, मैं नहीं गई। फिर अधिक आकर्षण किसका ? मा का या पत्नी का ?

उसने अपने मन को समझा लिया *वह जवान लड़की है इसलिए कूदकर गाड़ी में बैठ गयी। मैं बूढ़ी हूँ इसलिए पीछे रह गयी। मेरे वहाँ न जाने से मेरी ममता कोई कम नहीं हो जाती। परन्तु बूढ़ी होने की अपेक्षा उसे यदि किसी बात का दुख हुआ था तो वह था अपनी गरीबी का। उसके पास पैसे होते तो दूसरी गाड़ी करके उसके पीछे-पीछे वह भी जा सकती थी। इतने बड़े दुख का पहाड़ गिरा। लड़ाई पर रहते

वह जवान

समय क्या हुआ था, यह उसने अपनी आँखों से नहीं देखा था। पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर वह हैरान हो गयी थी मृत्यु का वह समाचार झूठ सिद्ध हो जाने के कारण दुगने आनन्द का भी उसे अनुभव हुआ था—

आगे ये कष्ट आये। लड़का प्रत्यक्ष सामने दिख रहा है, पर पहचानता नहीं है। एक तरह से वह उससे वञ्चित ही हो गयी थी। वह प्रच्छन्न विरह उसने अनुभव किया, परन्तु मन की शान्ति डगमगाने न दी। नहीं पहचानता था तो न सही, पर लड़का सामने तो दिख रहा था इस अधूरे आनन्द में ही उसने हँसते हुए दिन काटे थे। पर अब यह ऐसा हो गया! उसका कलेजा धड़कने लगा। इस बार कहीं उसकी जान पर ही न आ जाए!

मन बड़ा खराब होता है। अशुभ विचार ही मनमें पहिले आता है। अशुभ के उस अमंगलकारी विचार से उसकी हिम्मत टूट गयी और वह रोने लगी।

सुभद्रा बेचारी बिल्कुल पागल जैसी हो गयी थी। एक तो गोपिका के सामने वह लड़की थी, फिर जाति की अछूत थी। जहाँ तक सम्भव था वह गोपिका को छूती न थी। यह महसूस करके कि पुराणपन्थी बुढ़िया है उस का ख्याल रखना चाहिए, वह उस छोटी कोठरी में हमेशा अंग सिकोड़कर रहती थी, परन्तु इस समय बेशक उसने न रहा गया। वह एकदम गोपिका से जाकर लिपट गयी और अपने आँचल से उसके आँसू पोंछने लगी। बीच-बीच में गैलरी में जाकर देख आती। फिर गोपिका से कुछ समाधान की बातें कहती और पुनः जाकर गैलरी में देख आती। लेकिन क्या सिर्फ रास्ता देखने से ही आनेवाला मनुष्य आ जाता है? पर मन को मनाना भी तो होता है न?

अस्पताल में रमा और अर्जुन के प्राण आँखों में आ गये थे। ऐसे प्रसंग पर जब मनुष्य राह देखने बैठता है, तब समय की लम्बाई उसे अन्दाज से बाहर बढ़ी हुई लगने लगती है। भीतर से कोई बाहर आता

तो अर्जुन उससे पूछता, पर वह व्यक्ति क्या बता सकता था? शिधू आपरेशन थियेटर में था और वहां जो मनुष्य थे, वे बिना आपरेशन पूरा हुए बाहर थोड़े ही आने वाले थे।

समय बढ़ने लगा, दोनों व्याकुल होने लगे। रमा से तो अब भीतर बैठा ही नहीं जाता था। दरवाजे की ओर आँख लगाये वह लगातार टहलने लगी।

आपरेशन थियेटर का द्वार खुला, डाक्टर आये। अर्जुन दौड़ता हुआ उनके पास गया। डाक्टर की प्रसन्न मुद्रा देखते ही दोनों को आधी हिम्मत आ गयी।

डाक्टर बोले—"आप एक ओर हट जाएँ। जमादार, यही है न उसकी पत्नी? इसी को वह नहीं पहचानता था? इसलिए इस समय वह उसे नहीं दिखनी चाहिए। वह होश में आ गया है और उसे हम यहीं से उसके वार्ड में ले जाएँगे। एक स्वतन्त्र वार्ड में उसे रखने का मैंने इन्तजाम कर दिया है। पति-पत्नी की भेंट तभी होगी जब मैं कहूँगा। उसकी पत्नी से एक ओर हट जाने के लिए कह दो।

अर्जुन ने रमा को एक ओर हटा दिया। वे दोनों डाक्टर द्वारा बताये गये स्थान पर जाकर खड़े हो गये।

डाक्टर आपरेशन थियेटर के भीतर गये और दरवाजा बन्द हो गया। फिर दरवाजा खुला और सिर पर पट्टी बाँधे आराम से एक हाथ-गाड़ी पर लेटा हुआ शिधू दोनों को दिखाई दिया।

इस समय रमा के प्राण बिल्कुल आँखों में आ गये थे। उसे अपने हृदय का स्पन्दन स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था।

हाथ गाड़ी के पीछे-पीछे डाक्टर जा रहे थे। रमा एकदम आगे दौड़ पड़ी। अर्जुन भी अपने स्थान पर खड़ा न रह सका। वह भी रमा के पीछे-पीछे भाग पड़ा। डाक्टर की नजर रमा पर गयी और उन्होंने डाटकर उसे पीछे लौटा दिया।

चुप बैठे रहने के सिवा दूसरा कोई उपाय न था। सिर्फ दो-चार

मिनट ही हुए थे। परन्तु उतना समय भी रमा को युग की तरह लगा।

डाक्टर आए और बोले--'चलो मेरे साथ।"

अस्पताल के बरामदे से डाक्टर के पीछे-पीछे जाते हुए रमा को लगा कि मैंने कितना लंबा सफर कर डाला।

वे दोनों एक कमरे में पहुंचे। शिधू को एक स्वच्छ सफेद बिस्तर पर सुला दिया गया था। डाक्टर उसके बिस्तर के नजदीक जाकर खड़े हो गये। वहाँ जाने से पहिले उन्होंने उसी कमरे मे रमा को एक स्थान में खड़ा कर दिया था कि शिधू ने अगर सहज ही आँखें खोल दीं तो रमा उसे दिखायी न दे।

डाक्टर ने जब अर्जुन को बुलाया तब रमा को उससे ईर्षा हुई। समीप पहुँचकर डाक्टर ने शिधू से पूछा—"अब आपको कैसा लगता है, मिस्टर जोशी ?"

आँखें खोलकर अर्जुन और डाक्टर की ओर देखता हुआ शिधू बोला —"अब तो काफी अच्छा लगता है। सिर में भी विशेष पीड़ा नहीं है।"

अर्जुन को लगा कि शिधू कि आवाज में निश्चित् ही कुछ फर्क हो गया है। अर्जुन की ओर देखता हुआ शिधू बोला—"तुम आ गये, अर्जुन !" अर्जुन की आँखों से आँसू बह रहे थे। उन्हें देखकर शिधू बोला—"अरे तुम सिपाही के बच्चे हो न ? सिपाही के बच्चे रोया नहीं करते। मुझे कोई बहुत बड़ी चोट नही लगी है।"

अर्जुन को एक तरफ हटाकर डाक्टर ने रमा को इशारा किया।

काँपते हुए कदमों से रमा आकर बेड के पास खड़ी हो गयी।

एक क्षण-भर के लिए उसने शिधू की ओर देखा उस अथाह क्षण में उसकी मुद्रा स्थिर हो गयी थी।

अब आगे क्या होगा ? इस विचार से रमा बिल्कुल व्याकुल हो गयी थी। उसके मन को यह विचार भी छू गया—कहीं पहिले की तरह वे एकदम चिल्ला तो न पड़ेंगे ?

वेड के पास रखी कुर्सी पर वह बैठ गयी। शिधू का हाथ उसने अपने हाथ में लिया। मुस्कान की एक हल्की रेखा शिधू के चेहरे पर चमककर स्थिर हो गयी।

इस रेखा से रमा परिचित थी। पहले जेठे-सयानों के सामने वह उसकी ओर जब चोरी-चोरी देखता, तब इसी तरह मुस्कराता था।

रमा का कलेजा धड़कने लगा। सारा शरीर काँपने लगा। खून पैर की तरफ से सरसराता हुआ मस्तक की ओर बहने लगा।

धीरे से हँसता हुआ शिधू बोला—"रमा!"

रमा ने हँसने की कोशिश न की। वह डगमगाने लगी। उसकी आँखों के सामने चिनगारियाँ चमकीं—

और धड़ाम से वह कुर्सी से नीचे गिर पड़ी।

———

मृत्यु के अन्त तक

होश में लाकर डाक्टर ने रमा को घर भिजवा दिया। डाक्टर को जितना हाल मालूम था उतना वे धीरे-धीरे शिधू को बताने लगे। उसके विस्मृति-काल की प्रत्येक घटना, उस घटना के कारण उत्पन्न हुई परि-स्थिति, उस परिस्थिति के कारण हुए परिणाम—डाक्टर जितनी बातें जानते थे, वे सब बातें उन्होंने शिधू से समझाकर कह दीं। अर्जुन और गोपिका के मुंह से अव्यवस्थित एवं असंगत रूप से शिधू को वे बातें मालूम हों, इससे पहले अधूरी ही क्यों न हों, पर सुसंगत रूप हों और उसके थके हुए मस्तिष्क का आकलन हो सके इस रीति से सारा हाल उससे कहने का काम डाक्टर ने बड़ी कुशलता से किया।

पहचान की उतनी ही झलक रमा को मिली थी। जब गोपिका को पता चला कि शिधू की स्मृति पुनः लौट आई है, तब सिर्फ इस समाचार के सुनते ही वह आनन्द से बेहोश हो गयी। पर रमा को संतोष नहीं हुआ था। सिर्फ पहचान लिया, इतनी-सी बात उसे अधूरी प्रतीत होती कुछ देर शिधू के पास बैठकर टूटे हुए धागों को जोड़ लूं, ऐसा उसे लगता था। परन्तु डाक्टर ने उसे जबरदस्ती भगा दिया था। अत्यन्त प्रिय व्यक्ति से अधिक बातें करने का तनाव शिधू का थका हुआ मस्तिष्क कहाँ तक बरदाश्त करेगा, इसका डाक्टर को शक था।

रमा ने वह रात बड़ी बेचैनी से काटी। उसे लग रहा था कि जाऊँ, अपने पति से मिलूं, जी भर के उससे बातें करूँ, अपने हृदय का दुख उसे बताऊँ। अर्जुन ने उन लोगों के लिए कितना निष्काम स्वार्थ-त्याग किया है, यह उसके कान में डालूं।

अर्जुन को भी डाक्टर ने शिधू से अधिक बातें नहीं करने दीं।

परन्तु इसके लिए अर्जुन को बुरा न लगा। शिधू ने जिस तरह उसे अब पहचाना था, उसी तरह पहिले की पहचान भी वर्तमान थी ही। डाक्टर ने सख्त ताकीद कर दी थी कि कोई भी शिधू से पाँच मिनट से अधिक न बोले।

शिधू ने माँ को भी पहचान लिया। शिधू को देखते ही गोपिका की आँखों से लगातार आँसू बहने लगे। हृदय में दबाकर रखा हुआ सारा दुखावेग उस समय एकदम उमड़ पड़ा। आँखों के किनारे आये आँसुओं को पीती हुई रमा सिर्फ उसकी ओर देख रही थी। सास के सामने पति से बातें करना उसके लिए सम्भव न था। माँ से बातें करते समय कन-खियों से वह रमा की ओर देख रहा था। वह भी मन-ही-मन हँस रही थी। माँ से बातें करते समय रमा की ओर देखकर हँसते हुए दोनों में मूक भाषण का विनिमय हो रहा था।

पाँच मिनट कब खत्म हो गये इसका उन्हें पता तक न चला। गोपिका को करीब-करीब घसीटकर कमरे से बाहर निकालना पड़ा।

रोज शाम को चार बजे जाकर वे लोग शिधू से मिल आते। पर पाँच मिनट से अधिक उन्हें वहाँ रहने की इजाजत न थी। डाक्टर ने शिधू का इंतजाम, किसी अमीर जैसा कर दिया था। सब को यही लगता था कि डाक्टर स्वयं अपनी जेब से यह सारा खर्च कर रहे होंगे। अपने नाते का डाक्टर पराया हो गया और एक पराया अंग्रेज अपनी इतनी चिन्ता करता है। जब गोपिका बाई इसका जिक्र करती तब अर्जुन कहता—"रणभूमि पर का नाता खून के नाते से भी अधिक घनिष्ठ होता है।"

गोपिका और रमा को हिन्दी या अंग्रेजी नहीं आती थी। इसलिए डाक्टर के साथ बातें करना उनके लिए सम्भव न था और यदि उन्हें ये भाषायें आती भी होतीं, फिर भी सफेदपोश की कुलीनता को छोड़ कर साहब से बातें करने की उनकी हिम्मत भी न होती। इसलिए ऐसे समय अर्जुन दुभाषिये का काम करता।

डाक्टर साहब ने शिधू का सारा हाल अर्जुन से पूछ लिया था और उसमें की कौन-सी बात शिधू से कही जाए और कौन-सी उससे न कही जाए, इसकी पूर्ण जानकारी उसे देकर ही वह अर्जुन को शिधू से बातें करने की अनुमति देते, और फौजी आदमी होने के कारण अर्जुन बड़े अनुशासन से उनकी आज्ञा का पालन करता। शिधू से वह प्रायः अपनी मिल के बारे में ही बातें किया करता था। पैसे के अभाव में उस अभागे परिवार की किस तरह खींचातान हो रही थी उसका अलबत्ता उसने शिधू को पता न चलने दिया।

शिधू की स्मृति में अब तनिक भी दोष नहीं रह गया था। पहिले से लेकर आज तक के सारे धागे ठीक से जुड़ गये थे। कमी थी सिर्फ विस्मृति-काल की। उस काल में उसने किसे नहीं पहचाना और उसे न पहचानने के कारण दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ा यही बातें उसे याद न आतीं। अस्पष्ट-सी याद आती, पर वह अधूरी थी। जब अर्जुन ने उससे उस समय का हाल कहा तब उसे बड़ा दुख हुआ।

शिधू ने देखा कि उसमें एक दोष आ गया है। उसने वह दोष डाक्टर को भी बताया। जब उसे दुख होता तो उसका हृदय भर आता, पर आँखों से आंसू न आते। आंसुओं के अभाव में उसका हृदय व्याकुल हो जाता था।

डाक्टर को भी इस लक्षण का निदान करते न बनता। किसी भी बात का आत्यन्तिक परिणाम न होने देने की खबरदारी लेना चाहिए, ऐसी डाक्टर ने उसे सलाह दी।

अंत में वह बिल्कुल अच्छा हो गया और डाक्टर ने स्वयं उसे अपनी मोटर में घर पहुँचा दिया।

घाव भर चुका था। लड़ाई पर बम-विस्फोट के कारण सिर में जिस स्थान पर उसे चोट लगी थी, ठीक उसी जगह यह घाव भी होने के कारण सिवा एक दाग को छोड़कर अब उस जगह उस घाव का कोई अता-पता बाकी नहीं रहा था। ड्रेसिंग की आवश्यकता अब नहीं रही

थी। इसीलिए डाक्टर ने उसे अस्पताल से डिसचार्ज कर दिया था। डाक्टर की असीम सज्जनता के प्रति सभी कृतज्ञ थे।

शिधू के घर आते ही रमा का मन बिल्कुल बेकाबू हो गया। सारी लाज शरम छोड़कर उसने सास से कहा—"अब तुम कमरे से बाहर चली जाओ। मैं अकेली इन से एकान्त में बातें करना चाहती हूँ।"

गोपिका को उसकी यह बात विशेष अच्छी न लगी। उसकी दृष्टि में वह बेशर्मी थी। गोपिका को लगा, यह उसके साथ एकान्त में ऐसी क्या बातें करेगी? अच्छा हो गया, घर आ गया, फिर सिर्फ यह देखकर ही उसे संतोष क्यों न मान लेना चाहिए?

उस जबरदस्ती के वानप्रस्थाश्रम में रमा ने अपनी भावनाओं को कैसे कुचल दिया था, इसकी कल्पना उस बुढ़िया को हो, यह संभव न था। रमा भी बिल्कुल आधुनिक थी यह बात भी नहीं। यह भी सच है कि वह भी पुराने काल के पुराणपंथी परिवार में बढ़ी हुई थी। पर वह एक जवान लड़की थी। बुढ़ापा और जवानी में जितना अन्तर होता है, विशेषतः पुराने जमाने के बुढ़ापे से तुलना करने पर वर्तमान काल की तरुणी की जो मनःस्थिति होती है, उसकी कल्पना गोपिका को न होने के कारण रमा की बात उसे बुरी लगी। बड़े कष्ट से ही क्यों न हो, पर वह बाहर चली गयी। अर्जुन और सुभद्रा पहिले ही मिल में अपने-अपने काम पर चल दिये थे।

चाय का प्याला लिये शिधू की बैठक की ओर जाने से पहिले रमा ने दरवाजे और खिड़कियाँ अन्दर से बन्द कर लीं, परन्तु प्याला शिधू के सामने रखने के बाद वह बड़े अदब से दूर जा बैठी।

शिधू ने उसकी ओर देखा। प्याला उठाकर हाथ में लिया। प्याला मुँह को न लगाकर वे उसे नीचे रखकर वह बोला—"तुम्हारे चेहरे में भी फर्क हो गया है, रमा!"

"आईने में देखा था क्या?"—रमा ने पूछा।

"देखने की क्या जरूरत?"—शिधू हँसता हुआ बोला—"मुझे

सब याद आ रहा है। सिर्फ बीच ही के समय की याद नहीं आ रही है। परन्तु पहिले की स्मृति पूरी तरह से जाग उठी है। डाकखाने में नौकर था तब हम दोनों साथ रहते थे। कुछ ही दिन पहले हमारी सोहाग रात हुई थी और माँ गाँव चली गयी थी। तुम लाज से गड़ी जाती थीं। मारे शर्म के मुझ से बातें न करतीं। इसलिए मैं तुम्हें छेड़ता था। मेरी बातों का जवाब देने में भी तुम्हें शर्म आती।"—शिधू की दृष्टि रमा की ओर गयी और वह एकदम रुक गया।

रमा की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। उन आँसुओं को आने के लिए गद्‌गद् की संवेदना उसे नहीं होती थी। डोर खींचते ही माला के मोती जिस तरह गिर पड़ते हैं, उसी तरह आँसुओं की बूँदें उसकी आँखों से टपक रही थीं। फिर भी वह हँस रही थी। तो क्या वे उसके खुशी के आँसू थे? क्या खुशी के आँसू आने के लिए गला भर आने की जरूरत नहीं होती?

रमा के मन पर का अधिकार जाता रहा। उसने सारी लाज-शर्म ताक पर रख दी। एकदम उसने अपनी दोनों भुजाएँ उसके गले में डाल दीं और उसने भी उसे अपने अंक में भर लिया।

सुख का प्याला लबालब भर गया है, ऐसा रमा ने महसूस किया।

चाय का प्याला ज्यों-का-त्यों भरा वहीं रखा था।

दोनों के मुँह से शब्द नहीं निकलते थे। भेंट के समय क्या-क्या बातें करूँगी, इस विषय में उसने जिन वाक्यों की योजना पहिले से ही अपने मन में कर रखी थी, वे सारे वाक्य प्रत्यक्ष भेंट के समय जाने कहाँ गल गये।

उसकी पीठ को सहलाता हुआ शिधू बोला—"तुमने मेरे लिए कितने कष्ट भोगे, रमा—"

उसके इस एक ही उद्‌गार ने उसके आनन्द पर पानी फेर दिया। उसने कष्ट भोगे? किसने? क्या उस अकेली ने ही? उसके लिए यदि सच्चे कष्ट किसी ने भोगे हैं, तो सुभद्रा ने भोगे हैं। मैंने कष्ट भोगे हों,

तो विवशता के कारण। पर इलाज होते हुए भी लाइलाज हो गयी थी सुभद्रा। उससे पहिले मैं अपने पति से मिली। पर अपने अच्छे हट्टे-कट्टे और पूर्ण स्वस्थ पति से सुभद्रा का अभी तक एकान्त नहीं हुआ।

यह महसूस होते ही उसके हृदय में बड़ी तीव्र चुभन हुई। वह एकदम शिधू से दूर हो गयी और बोली—"सच्चे कष्ट भोगे हैं सुभद्रा ने, मैंने नहीं।"

"सो किस तरह?" शिधू ने पूछा।

इस प्रश्न के उत्तर में रमा को पहिले से सारा हाल उसे सुनाना पड़ा। इस विलक्षण परिस्थिति की कल्पना तब तक शिधू को बिल्कुल ही नहीं हुई थी।

अर्जुन और सुभद्रा ने उसके लिए कितने कष्ट भोगे, कितना स्वार्थ-त्याग किया और वह भी बिना थोड़ी भी शिकायत किये। यह सब जब शिधू ने सुना, तो उसका हृदय भर आया।

वह व्याकुल हो गया। उनका चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया। भरे हुए हृदय से जो आवेग उमड़ रहा था उसके स्रोत को बाहर निकलते समय कहीं बाधा हो रही थी। वह बीच ही में अटक रहा था।

उसकी वह अजीब-सी हालत देखकर रमा के छक्के छूट गये। "आपको अचानक यह क्या हो गया? क्या कहीं दर्द उठा है?"—रमा ने पूछा। उसके स्वर में काफी घबराहट थी।

बड़े कष्ट से शिधू ने उस आवेग को रोका। वह उसे निगल गया। तब कहीं उसका पीला चेहरा निखरने लगा। वह सिसकी के बाद सिसकी रोक रहा था। सुपारी लग जाने से जैसी हालत हो जाती है उसी तरह उसकी हालत हो गयी थी। सारा बदन पसीने से तर हो गया था। मस्तक पर पसीने की बूंदें उभर आयी थीं। परन्तु जहाँ से उमड़ते हुए आवेग का स्रोत बहकर निकल जाना था, वे आँखें एकदम सूखी थीं। दयनीय मुद्रा से वह बोला—"मुझ से रोते नहीं बनता।"

रमा स्तंभित हो गयी। रोते नहीं बनता, इसका क्या मतलब?

यदि रोते न बने तो मनुष्य जिंदा कैसे रह सकता है ?

रो न सकने के कारण उसे कितनी यातनाएँ हुई, रमा ने वे प्रत्यक्ष देखीं। इसलिए उसके दयनीय उद्‌गारों का उसे पूरा-पूरा अंदाज हो गया।

उसकी बातें वहीं समाप्त हो गयीं। आगे कुछ और कहने के लिए उसे भय लगा। वह आग्रह करने लगा, तब वह बोली—"अभी रहने दीजिए। अब फिर कभी बताऊँगी।"

'फिर बताना चाहे न बताना। पर एक बात मैं जान गया हूँ कि मैं अब मनुष्यों के बीच आ गया हूँ। अब मुझे कहीं-न-कहीं नौकरी कर लेनी चाहिए। नौकरी किये बिना अब चारा नहीं। अर्जुन कोई शिकायत नहीं करता यह सच है। पर इससे क्या? आखिर कब तक हम उसकी जान पर जिंदा रहें? नौकरी कहाँ मिल सकती है, यही अब मुझे देखना है।"

शिघू के हाथों से अपना हाथ छुड़ाकर रमा चट-से उठी और दरवाजा खोलकर बाहर आई।

"मिल लिये एकान्त में दोनों खूब जी भरके?"—गोपिका के स्वर में व्यंग की चोट साफ दिख रही थी। अपनी सास का यह ताना रमा को अच्छा न लगा। सास के मुँह से ऐसी बात उसने इससे पहिले और कभी न सुनी थी। इसलिए उसके मन में यही प्रश्न खड़ा हुआ कि संकट दूर होते ही क्या गोपिका के भीतर की सास जाग उठी है?

प्रत्येक की जन्मगत वृत्ति अब जाग्रत होने लगी है, ऐसा उसे लगा। शिघू के उद्‌गारों की उसे याद हो आयी। उसने कहा था—"आखिर कब तक हम उसकी जान पर जिंदा रहें?" उस उद्‌गार की जड़ में अभिमान की भावना है। यह विचार है कि हम उच्च वर्ण के हैं। ऊँच-नीच की सफेदपोशी भावना है, ऐसा उसे शक हुआ। अर्जुन के स्थान में यदि कोई सगा भाई होता तो शिघू के मुँह से क्या ऐसे उद्‌गार निकलते?

उन उद्‌गारो के कारण उपकार की प्रतीति में कहीं दोष आ रहा है, ऐसा उसे लगा।

गोपिका भीतर जाकर शिधू से बातें करने लगी। रमा ने जो बातें उससे कही थीं, वही बातें वह उसके सामने दोहरा रही थी। रमा को लगा सास की बातों में कहीं पर कुछ कमी है। अर्जुन और सुभद्रा द्वारा किये गये स्वार्थ-त्याग और भोगे गये कष्टों का जिस प्रेम और आस्था से उसने वर्णन किया था, वह आस्था और प्रेम गोपिका के शब्दों में न था। गोपिका इस ढंग से सब बता रही थी, जैसे जो भी अर्जुन और सुभद्रा ने उनके लिए किया, वह इसलिए किया कि उनका वह कर्त्तव्य ही था और यदि उपकार भी किये तो उन पर पीढ़ियों से जो उपकार हम करते आये हैं, उन उपकारों का ही उन्होंने बदला चुकाया है। रमा को लगा शिधू दोनों के वक्तव्यों का मन-ही-मन मिलान कर उन्हें जाँच रहा है।

उसने जिस समय वही बातें कहीं थीं, तब भावनाओं से शिधू का हृदय उमड़ उठा था, इसीलिए उसे पता चला था कि वह रो नहीं सकता। परन्तु वही हाल जब गोपिका उसे सुना रही थी, तब पह उन्हें शान्ति से सुन रहा था। उसके मन पर वैसा कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। पुन: उसके सामने प्रश्न उपस्थित हुआ, पहला आवेश निकल जाने के कारण ही तो कहीं यह यह परिणाम न हुआ हो? एक बार उसे जो कुछ लगना था सो लग चुका। इसलिए वही हाल फिर से सुनने पर पहिले का प्रभाव उसके मन पर फिर कैसे पड़ेगा?

उसे लगा व्यर्थ ही आड़े-टेढ़े विचार मेरे मन में आ रहे हैं! बात यह है कि मेरे कमरे से बाहर निकलते ही सास ने मुझ पर जो ताना-कशी की उसी का असर मेरे मन पर हो गया है और उस असर के कारण ही ये अनाप-सनाप विचार मेरे मन में उठ रहे हैं।

शाम को अर्जुन और सुभद्रा दोनों घर आये। तब फिर वही बातें निकलीं। अर्जुन किसी को कुछ बोलने ही न देता। उपकारों का उल्लेख ही न करने देता। यह देखकर शिधू ने कहा—"अब जो हो गया, सो हो गया। पर अब मुझे भी कहीं नौकरी तलाश करनी चाहिए।

इतने दिनों तक गृहस्थी का भार तुमने उठाया। अब मैं भी पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ। मुझमें अब कोई दोष नहीं रहा। अब इस गृहस्थी की चिन्ता मुझे करनी ही चाहिए।"

"मतलब ?" अर्जुन बोला, "क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे ?"

"यह तो अब बिल्कुल असंभव है।" शिधू बोला—"जहाँ तुम, वहाँ मैं। तन में प्राण रहते तक अब तुमसे मैं अलग नहीं होऊँगा। अपने ही मिल में मेरे लिए भी एकाध नौकरी तलाश दो न ?"

"ऐसा क्यों करते हो ? अब तुम अच्छे हो गये हो। पहिले वाली नौकरी ही क्या तुम्हें नहीं मिलेगी ?"

शिधू सोच में पड़ गया। उसकी नौकरी खत्म हो गई थी। उस स्थान पर अब तक दूसरे की नियुक्ति भी हो गई होगी। फिर भी उसने एक दरख्वास्त देने का निश्चय किया।

वह बोला—"निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि पहिले वाली नौकरी मिल ही जाएगी। अगर न मिले तभी मुझे खुशी होगी। यदि वही नौकरी मिल गयी तो मुझे पुनः कोंकण जाना पडेगा और वहाँ जाना याने तुमसे अलग होना पड़ेगा और यह मैं बिल्कुल नहीं चाहता।"

अर्जुन बड़े चक्कर में पड़ गया। शिधू से अलग रहना उसके लिए असंभव था। शिधू के लिए उसने अपने सर्वस्व का त्याग कर दिया था। घर-द्वार, मां-बाप किसी की भी कोई परवाह न की थी। यही नहीं बल्कि अपनी पत्नी से भी वह एक तरह से वंचित हो गया था। इसीलिए उसे लगा कि शिधू को पहिली नौकरी न मिले।

अब सब कुछ सुचारु रूप से चलने लगा। पर फिर भी उन दो दंपतियों के जबरदस्ती के वानप्रस्थाश्रम का अंत न हुआ था।

———

धर्म कब याद आता है ?

उस दिन से शिधू के दिमाग में नौकरी खोजने की बात घूमने लगी। सबसे पहिले उसने अपनी पुरानी नौकरी को फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न किया। नौकरी के लिए वह अयोग्य ठहरा दिया गया था जिसके फलस्वरूप डाक-विभाग ने उसे अपने कर्मचारियों की सूची से सदा के लिए हटाकर उसका अंतिम फैसला कर दिया था। इसलिए अपनी पुरानी नौकरी पर उसका अब किसी भी प्रकार का कोई हक नहीं रह गया था। उसकी नौकरी चन्द वर्षों की ही थी, इसलिए वह पेंशन पाने का भी अधिकारी न था। लड़ाई पर जाकर वह घायल हो गया था, उसकी सुध-बुध खो गई थी, इसीलिए जब उसे लड़ाई से छुट्टी दी गई, उस समय कुछ महीनों का वेतन उसे इनाम के रूप में दे दिया गया था। इससे अधिक उसे कुछ न मिला। अदि वह अर्जुन की तरह पहिले से ही पल-टन में नौकर होता तो लड़ाई में घायल होने के बाद उसे जीवन भर कुछ-न-कुछ पेंशन मिलती रहती। पर वह था सिव्हिल मुहकमें में और सिव्हिल मुहकमे के नौकरों के लिए ऐसी कोई व्यवस्था न थी।

उसने सोचा, यदि डाक्टर का सर्टीफिकेट मिल जाए, तो वह पुनः नए सिरे से अपने पुराने डाक-विभाग में ही भरती होकर, तार बाबू का काम करने लगेगा। पहिले की नौकरी के कुछ वर्ष यदि बेकार चले गये, फिर भी कोई हर्ज न था। यह आशा तीव्र रूप से उसके मन में जाग उठी और इस दशा में प्रयत्न करने का उसने निश्चय किया। जिस अंग्रेज डाक्टर ने उसे अच्छा किया था, उसकी सिफारिश से उसने स्थानीय सिव्हिल सर्जन से "फिट सर्टीफिकेट" प्राप्त करने की कोशिश की। पर नतीजा कुछ न निकला। उस सिव्हिल सर्जन पर डाक्टर की

सिफारिश का कोई असर न हुआ। अन्य सिव्हिल सर्जनों की तरह उसके खून में भी डाक्टर की वृत्ति कम और आफीसरी की वृत्ति अधिक थी। वह शिधू की पहिली बीमारी से पूर्णतया परिचित था। जिसे एक स्मृति-भ्रंश हो गया था, उस शिधू को सरकारी नौकरी के लिये "फिट सर्टीफिकेट" देने से उसने साफ इन्कार कर दिया।

यह तो कुछ इसी तरह की बात हो गयी कि माँगने गई पूत और खो आई भतार! थोड़ी आशा थी कि डाक-विभाग में नहीं तो कम-से-कम रेलवे में ही तारबाबू की जगह मिल जायगी। पर अब वह आशा भी जाती रही।

उसने सोचा कि जब क्लर्की ही करनी है तो मिल में ही क्यों न की जाए? क्लर्कों को सब जगह एकसा ही वेतन मिलता है। पढ़े-लिखे सफेदपोश लोग उन दिनों मिलों में क्लर्की की नौकरी प्रायः नहीं करते थे। इसलिए वह मिल में ही कोई नौकरी खोजने लगा। अर्जुन ने भी अपने ढंग से इस काम में उसकी मदद करना आरम्भ कर दिया था।

मिल के फाटक पर पहरा देने वाले एक हथकटे सिपाही का क्या प्रभाव हो सकता है? परन्तु वह लड़ाई से लौटा हुआ जख्मी सिपाही था। इसलिए मिल के अफसरों में अर्जुन बड़ा लोकप्रिय था। जाबर और हैड जाबर की तो बात ही क्या, मिल का मैनेजर भी कभी-कभी पाँच-दस मिनट उससे बातें करते खड़ा रहता। अर्जुन ने मैनेजर से मिलने का निश्चय किया।

इस बीच शिधू भी भिन्न-भिन्न मिलों और कम्पनियों में जाकर नौकरी खोजने की कोशिश कर ही रहा था। मिलटरी अकौन्ट्स में बहुत सी नई जगहें निकली थीं। उनके लिए हजारों मद्रासी भाई पूना आये थे। जब वे सब जगहें भर गयीं, तब बचे हुए मद्रासियों का दल मद्रास न लौटकर नौकरियों के लिये बम्बई आ धमका। इसलिए उन दिनों बम्बई में दूसरों को मामूली क्लर्क की नौकरी मिलना भी कठिन हो गया था। चाहे जितने कम वेतन में बी० ए०, एम० ए० पास तथा

शार्ट-हैन्ड और टाईपिंग जानने वाला मद्रासी क्लर्क जब तीन आदमियों का काम अकेला ही करने को तैयार हो जाता, तो उस वक्त मामूली मैट्रिक पास महाराष्ट्रीय को कौन पूछता ? लड़ाई के बाद मद्रासी टिड्डी दल ने गरीब महाराष्ट्रियों के मुख का कौर छीन लिया। जहाँ पहिले साठ-साठ रुपये महावार के तीन आदमी काम करते थे, वहाँ १२० रुपये मूल्य के तीन आदमियों का काम अकेला एक डिग्रीधारी मद्रासी तीस रुपये पर करने को तैयार हो जाने के कारण पूंजीपतियों के आफ़िस वाले अधिक वेतन के महाराष्ट्रीयों को अपने कार्यालय में क्यों स्थान देते ?

वेतन कम करने की दरिद्री वृत्ति, पूँजी-पतियों के दिमाग में पहिले पहल घुसने के लिए, बम्बई के बाजार में लड़ाई के बाद उतरने वाले डिग्रीधारी मद्रासी भाई ही कारणीभूत हुए।

शिधू जोशी हताश हो गया। उसे लगने लगा, मेरी स्मृति खो गई थी वही अच्छा था। अब मैं समझदार हो गया हूँ। घूमने-फिरने लगा हूँ और मेरे स्वास्थ्य में भी अब कोई दोष नहीं रह गया है तो अब मुझे नौकरी क्यों नहीं मिलनी चाहिए ? लड़ाई पर जख्मी होकर लौटने का श्रेय जिस तरह सिपाही को मिलता है उसी तरह लड़ाई से घायल होकर लौटे हुए क्लर्क को भी क्यों न मिलना चाहिए ? मैंने जो देह दंड-भोगा उसका का यही इनाम है ?

वह सोचता था कि जब वह लोगों से कहेगा कि वह लड़ाई पर गया था और वहाँ से जख्मी होकर लौटा है, तो लोग उस पर गर्व करेंगे और उसके प्रति उनके हृदय में आदर की भावना जाग्रंत होगी। कम-से-कम अनुकंपा तो निश्चय ही उत्पन्न होगी !

जहाँ वह आदर की अपेक्षा कर रहा था, वहाँ जब उसने अपने लिए लोगों से यह कहते सुना कि लड़ाई पर क्यों गये थे मरने—उस समय उसकी पुरानी स्मृति हरी हो जाती और उसने लड़ाई पर जाने की जो नासमझी की थी, उसके लिए वह पछताने लगता।

लड़ाई पर जाने से पहिले उसने बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ अपने मन में

सँजोकर रखी थीं। उसने सोचा था कि लड़ाई से लौटने के बाद वह एक बड़ा "हीरो" बन जायेगा लोगों में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी उसके कार्यों की प्रशंसा होगी समाचार पत्र उस पर लेख लिखेंगे। आर्थिक लाभ चाहे भले ही न हो, पर कम-से-कम उसका नाम तो जरूर होगा, ऐसी उसकी अपेक्षा थी। परन्तु नौकरी की याचना के लिए वह जहाँ भी गया, वहाँ हर आदमी उसे मूर्ख सिद्ध करने लगा। तब उसे इसी पर आश्चर्य होता, कि वह लड़ाई पर जाने के मोह में कैसे फँस गया था।

पुराना इतिहास उसकी नजरों के सामने मूर्त हो उठता। वीरवृत्ति को उत्तेजना देनेवाले तत्कालीन समाचारों के लेख उसे याद आ जाते। अंग्रेज सरकार उस समय शिवाजी पर का अपना क्रोध भूल गयी थी। स्वामी रामदास के श्लोकों का हवाला देकर शिवाजी मावलों को आह्वान देनेवाले सरकारी सूचना-पत्र उसकी नजरों के सामने भूल जाते। लड़ाई पर जाने से हिन्दुस्थान का कल्याण होगा। कहने वाले नेता और उनके भाषण उसकी दृष्टि के सम्मुख मूर्त हो जाते।

इन नेताओं पर अब उसे बड़ा क्रोध आ रहा था। उनके द्वारा गलत राह दिखाने के कारण ही उसके दिमाग में लड़ाई पर जाने का पागलपन घुसा था और इसीलिए वह लड़ाई पर गया था और अंत में इसी कारण ही उसका सत्यानाश हो गया। यह सोचकर वह उन नेताओं को लाखों गालियाँ देने लगा। परन्तु नेताओं को गालियां देने से उसे नौकरी थोड़े ही मिलने वाली थी ?

अन्त में अर्जुन के प्रयत्न ही सफलीभूत हुए और उसी की मिल में शिधू को क्लर्क की नौकरी मिल गई। फाटक पर पहरा देनेवाले दरबान के और क्लर्क के वेतन में कोई विशेष फर्क न था। शिधू को एक प्रकार से यह अच्छा ही लगा। वेतन कम ही क्यों न मिले, पर कम-से-कम अर्जुन की तरह वह भी नौकर हो गया, इतना ही उसे समाधान हुआ और वह अपने काम पर हाजिर हो गया।

मिल के कर्मचारियों को शिधू का हाल मालूम हो गया था। वे

लोग जानते थे कि लड़ाई में घायल हो जाने से कुछ दिनों तक उसका दिमाग बिगड़ा हुआ था। इसलिए सब लोगों के हृदय में उसके प्रति सहानुभूति थी। वे हमेशा यह सावधानी रखते कि उस पर काम का अधिक बोझ न पड़े। उसके साथी क्लर्कों में उसकी तरह सफेदपोश और कोई न था। मद्रासी भाईयों का तो मिलों में अभी तक प्रवेश ही नहीं हुआ था।

शिधू को नौकरी मिल जाने के बाद उस परिवार ने घर बदलने का निश्चय किया। अर्जुन को छोड़कर न रहने की शिधू ने प्रतिज्ञा की थी। एक ही कमरे में अछूतों के साथ रहना अब गोपिका की जान पर आ आ रहा था। पहिले सारी गृहस्थी अर्जुन ही चलाता था, इसलिए गोपिका को ऐसी शिकायत करने की कोई गुंजाइश ही न थी, पर अब शिधू को भी नौकरी मिल जाने से उसकी यह शिकायत शुरू हो गई।

शिधू का आग्रह था कि अब जो घर लिया जाए उसमें दो कमरे हों और वे दोनों एक दूसरे से लगे हों। पर गोपिका को यह बात जँचती न थी। वह कहती, "हम एक ही चाल में रहेंगे, पर हम दोनों के कमरे अलग-अलग, एक दूसरे से दूर होने चाहिये। ऐसा होने से हम एक दूसरे के घर आसानी से आ-जा सकेंगे।"

गोपिका के मन में अब उपकार की भावना के बदले जाति-भेद की भावना पैदा होने लगी थी। जब एक ही कमरे में ये दोनों परिवार एकत्रित रहते थे, तब अर्जुन और सुभद्रा को अपने-अपने अंग सिकोड़कर उसके बीच रहना पड़ता, जिससे कि गोपिकाबाई को उनकी छूत न लग जाए। उसी कमरे में रसोई भी बनती थी और दोनों अछूत वहीं रहते थे। इसलिए उसी कमरे में रसोई बने, यह बात भी गोपिका को बड़ी नागवार गुजरती थी, पर परिस्थिति के आगे सिर झुकाये बिना उसे कोई चारा ही न था और इसीलिए वह उस भ्रष्टाचार को चुपचाप बरदाश्त कर रही थी। पर अब उसका बेटा कमाने लगा था इसलिए उसे लगने लगा कि अब वह अछूतों के साथ क्यों रहे?

रमा यद्यपि पुराणपंथी वातावरण में बढ़ी थी, पर वह परिस्थिति को महसूस करती थी। यद्यपि उसके पति को नौकरी मिल गयी थी, फिर भी वह यह महसूस करती थी कि उतनी-सी तनख्वाह में बम्बई जैसे शहर में उन तीनों की ठीक से गुजर न होगी। वह यह भी जानती थी कि जब तक उसकी गृहस्थी में अर्जुन थोड़ा-बहुत भी हाथ नहीं बँटाएगा, तब तक बम्बई में उन तीनों का निर्वाह होना असम्भव था। पर उसके मन में सिर्फ यही एक स्वार्थ-भावना न थी। वह यह भी सोचती थी कि अर्जुन और उसकी पत्नी ने उन तीनों पर इतने उपकार किये हैं कि अब उनसे एकदम अलग हो जाना महान कृतघ्नता होगी।

सबके एक स्थान में रहने से किसे आर्थिक लाभ होगा या हानि होगी यह विचार गोपिका के मन में न आता। परन्तु कृतज्ञता की अपेक्षा धर्म-अधर्म और छुआछूत की ही उसे अधिक परवाह थी।

जब गोपिका यह शिकायत करने लगी तब रमा ने सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिए और बड़े अदब के साथ गोपिका को चुप किया। वह बोली—"धर्म-अधर्म और छुआ-छूत की अब क्यों इतनी परवाह की जाए? अछूतों के अन्न पर ही आज तक हम जिन्दा रहे हैं। हमारे लिए पति-पत्नी दोनों मिल में खपते थे और हमें पोस रहे थे। उस समय धर्म कहाँ चला गया था? उस समय छुआ-छूत कहां चली गई थी? दोनों सीधे चूल्हे तक आते-जाते थे।"

"अरी, वह आपद्धर्म था।"—गोपिका बोली—"यदि कोई खास मौका आ जाने पर धर्म के विरुद्ध थोड़ा आचरण हो जाए, तो प्रायश्चित लेकर हम अपने आपको शुद्ध कर ले सकते हैं। वह समय ही वैसा था। रुपये-पैसे की क्या कोई छुआ-छूत मानता है? अछूतों के घर का ही पैसा तो हमारे घर में आ रहा है न? अरी, पैसा परमेश्वर है। उसमें कोई दोष नहीं। छुआछूत होती है मनुष्यों में, अछूत के द्वारा छू लिये गये कपड़ो में। अब मैं हूँ बूढ़ी विधवा यदि इस उम्र में धर्म-अधर्म और छुआछूत के नियमों का पालन न करूँ, तो तुम लोगों को ढंग कैसे सिखाऊँगी?

दोनों ने हम पर उपकार किये हैं इससे मैं कहाँ इन्कार करती हूँ, पर अब यह भ्रष्टाचार और कब तक चलता रहेगा ?"

"जब तक तन में प्राण हैं तब तक ।"—रमा ओंठों को दाँतों तले चबाती हुई बोली, "दोनों परिवारों को एक स्थान में लाकर जिस ईश्वर ने जीवित रखा है, वह ईश्वर क्या इतना निर्दयी है ? जिस मनुष्य ने हम लोगों के लिए अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की, उस मनुष्य की जाति के बारे में कुछ कहना मुझे अच्छा नहीं लगेगा। जब हम पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था, उस समय हमारी जाति के लोग कहाँ मर गये थे ? हम पर आसमान टूट पड़ा था, कहीं हमें किनारा नजर नहीं आ रहा था, उस समय हमारी जाति के तीन लोग क्यों नहीं आये हमें मदद करने ? मै तो अर्जुन को ब्राह्मण से भी उच्च समझती हूँ। दुनियाँ में अगर कोई सच्चे ब्राह्मण हैं, तो वे अर्जुन जैसे अछूत ही हैं।"

होश में आकर रमा ने अपनी जबान रोक ली। सारे जीवन में साध से उसने कभी ऐसा भला-बुरा नहीं कहा था। उसका वह आवेश देखकर, गोपिका ने कोई उत्तर न दिया। वह चुप ही हो गई।

उस दिन शाम को जब शिधू घर आया, तब गोपिका ने उससे कहा, "अब तुम अच्छे हो गये हो। कमाने भी लगे हो। अपने पूर्वजों का घर गाँव में खाली पड़ा है। उसमें ताला लगा है। चूहों ने खाली घर में ऊधम मचा रखा होगा। घर के देव अँधेरे में पड़े हैं। वहाँ किसी को जाकर दीया जलाना चाहिए। इसलिए अब मैं गाँव चली जाती हूँ। वहीं रहूँगी। यदि कुछ पैसे वहाँ भेज सको, तो भेज देना, वरना पुरखों के घर में भगवान जिस हालत में रखेगा, उसी तरह रहूँगी।"

शिधू को शक हुआ कि घर में कुछ गड़बड़ी हो गई है। वह बोला, "अभी इतनी जल्दी क्या पड़ी है ? नये घर में चल ही रहे हैं। वहाँ सब जम जाने दो। फिर तुम अगर चाहो, तो चले जाना।"

गोपिका के प्रस्ताव पर अर्जुन को भी आश्चर्य हुआ। वह बोला— "आप ही के आधार पर तो हम लोग यहाँ आकर रहे हैं। यह भी मिल

में जाकर कमाती है। आप यदि गाँव चली जायेंगी तो छोटी मालकिन के साथ कौन रहेगा ? वे दोपहर भर अकेली कैसे रहेगी ?"

"तो फिर उसे भी मिल में कोई काम लगा लो ?" गोपिका उमड़ कर बोली—"जिस तरह तुम दोनों मिल में जाते हो उसी तरह ये दोनों भी जाएँगे।"

अर्जुन कुछ उत्तर देने वाला था, पर रमा ने उसे आँख से इशारा कर दिया।

शिधू बड़ा अस्वस्थ हो गया। उसने सोचा, हर परिस्थिति में मेरी माँ ने इतने संतोष से जीवन बिताया और अब जब मैं कमाने लगा हूँ तभी वह इतनी नाराजगी क्यों दिखाती है ? यह पहेली वह हल न कर पा रहा था। रमा से पूछना संभव ही न था। क्योंकि दोनों का एकान्त में मिलन ही न हो पाता था।

दोनों परिवारों को आखिर उसी तरह की एक दूसरी चाल में दो कमरे मिल गये। ये दोनों कमरे एक दूसरे से जुड़े थे और उनके बीच में एक दरवाजा था। सब लोग जाकर नया घर देख आये, पर गोपिका को वह पड़ोस पसन्द न आया। वह बोली—"पड़ौसी सब बड़े गन्दे मालूम होते हैं। लगातार मछलियों की बू आ रही थीं वहाँ। ऐसी जगह मैं कैसे भोजन पाऊँगी ?"

"और अब जहाँ रह रहे हैं, क्या वहाँ गन्ध नहीं आती ?"—शिधू बोला—"जैसे यहाँ आती है उसी तरह वहां भी।"

"फिर घर बदलने की जरूरत ही क्या है ?"—गोपिका बोली—"यहाँ क्या बुरा है ? दूना किराया भी क्यों दिया जाए ? व्यर्थ खर्च ही बढ़ा रहे !"

"ठीक है।"—शिधू बोला—"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"ठीक क्या है !"—अर्जुन जरा गुस्से से ही बोला— "एक ही कमरे में दो परिवार अब और कितने दिन रहेंगे, पटेलन ? एक ही घर में पति-पत्नी एक दूसरे से मिल नहीं सकते, यह बात आपके ध्यान में कैसे

नहीं आती ?"

"मैं अब बूढ़ी हो गयी हूँ।"—गोपिका क्रोध से बोली—"बुढ़िया को कहाँ से आई अक्ल ? तुम सब जवान हो। बारह घाट का पानी पी कर लड़ाई जीतकर आये हो। मेरा सारा जीवन गाँव में बीता है। मैं बम्बई में नहीं रह सकती। लाचार थी, इसलिए इतने दिन जैसे-तैसे रही, सब बरदाश्त करती रही। भगवान का नाम लेकर सारा धर्म-अधर्म और छुआछूत ताक पर रख दिया था मैंने। पर इससे आगे मैं यह भ्रष्टाचार बरदाश्त नहीं कर सकती। मैं अपने गाँव लौट जाऊँगी। प्रायश्चित लूँगी। तुम लोग सुख से यहाँ राज करो।"

शिधू के मस्तिष्क में अब प्रकाश पड़ा।

———

नया घर नयी गृहस्थी

नये घर में गृहस्थी सजा दी गयी। कमरे दो थे, पर चूल्हा एक ही रखा गया। सुभद्रा ने दो परिवारों के लिए अलग-अलग दो चूल्हे रखने का प्रस्ताव किया था। परन्तु शिधू और अर्जुन दोनों को यह प्रस्ताव स्वीकार न हुआ। रमा को तो एक ही चूल्हा रखने से कोई एतराज था ही नहीं।

सुभद्रा यही सोचती थी कि एक ही चूल्हा रखने से उसके पति को सामिष भोजन खाने को न मिलेगा जो कि उसे बेहद पसन्द था। वह अपने पर से यह अनुमान कर रही थी। निरामिष भोजन से वह ऊब उठी थी। पर अर्जुन अपना आग्रह छोड़ने को तैयार न था। वह बोला—"इतने दिनों तक हम लोगों ने एक साथ खाया है। फिर इस वक्त ही क्यों हम अलग-अलग पकाकर खावें ? यदि मांस.मच्छी खाने को न मिली, तो हम कोई मर नहीं जाएँगे !

गोपिका बोली,—"यदि सुभद्रा की इच्छा हो, तो तुम लोग क्यों व्यर्थ रुकावट पैदा कर रहे हो जी ? अर्जुन और सुभद्रा को उनकी पसन्द का खाना मिलेगा और रमा को भी थोड़ा आराम मिल जाएगा। अभी उसे ही सब का खाना पकाना पड़ रहा है।"

"पर पटेलन जी, क्या आपने यह भी सोचा है कि एक ही चूल्हा रखने से खर्च की कितनी बचत होगी ?"—अर्जुन बोला—"दो जगह चूल्हे रखने से दुगना कोयला लगेगा, दो सब्जियाँ लानी होंगीं, नमक, मिर्च और मसाले का भी अलग-अलग प्रबन्ध करना होगा। वही यदि एक ही जगह सबका खाना पके तो खर्च में उतनी ही बचत होगी।"

"तुम्हारे जी में आए सो करो !"—कहकर गोपिका कमरे से

बाहर चल दी ।

यह देखकर कि एक ही जगह सब की रसोई बनना गोपिका को पसन्द नहीं है, रमा को आश्चर्य हुआ। वैसे देखा जाए तो एक ही स्थान में दोनों की रसोई बनने से अर्जुन का ही नुकसान था। उसे क्या था? सिर्फ मछली पका लेने से ही उसका दाल, सबजी और रोटी आदि का काम चल जाता परन्तु एक हो चूल्हे पर निरामिष पकने से दाल, घी, कढ़ी, सबजी, भात, रोटी, छाछ आदि चीजें सब को एकसी परोसी जाने के कारण इस बढ़ते हुए खर्च का भार अर्जुन पर ही अधिक पड़ता था।

रमा ने यह बात समझाकर भी बतायी, परन्तु शिधू ने उस पर कोई उत्तर नहीं दिया। यह देखकर कि हर बात में गोपिका विरोध कर रही है, उसे बुरा लग रहा था। अपनी माँ के हृदय में अर्जुन और सुभद्रा के प्रति कृतज्ञता की कोई भावना न हो, यह बात उसे चुभ रही थी। कम-से-कम यह देखकर कि रमा को यह पसन्द है, उसे जँचता है, शिधू को समाधान होता था।

नये घर में आने के बाद पहिले ही दिन गोपिका ने अपना बिस्तर गैलरी में ले जाकर बिछाया। शिधू ने ऐसा न करने का सुझाव दिया। तब वह बोली—"पूर्व-जन्म में क्या पाप किया था जिससे इस जन्म में मैं विधवा हो गयी! अब कम-से-कम इस जन्म में तो तुम दोनों के बीच मैं बूढ़ी क्यों कोई रुकावट बनूँ और पाप कमाऊँ? तुमने शौक से दो कमरों वाला घर लिया है, तो उन कमरों को सार्थक हो जाने दो।"

गोपिका यद्यपि उदासीनता का दिखावा कर रही थी, फिर भी उसकी बातों में जो व्यंग था वह दूसरों के ध्यान में आये बिना न रहा। सुभद्रा धीरे से रमा से बोली—"इतनी आपत्तियाँ आयी थीं, आसमान टूट पड़ा था, फिर भी वे दिन सुख में बीते। अब कहीं आसमान साफ दिख रहा है तो एसे समय क्यों अड़ंगा लगा रहे हैं ये? लक्षण कोई ठीक प्रतीत नहीं होते, रमा भाभी! मैं सोचती हूँ आप यदि सास जी की बात मान लेतीं, तो अच्छा होता।

रमा चुप ही रही । वह भी आखिर जवाब क्या देती ? सुभद्रा की तरह उसे भी लगता था कि विपत्ति अच्छी, पर असमाधान अच्छा नहीं। विपत्ति में थोड़े ही सुख से मनुष्य का समाधान हो जाता है। छुआछूत और धर्म-अधर्म के ये विचार विपत्ति के समय कहाँ गायब हो गये थे ? अलग-अलग रसोई बनाने की बात उस समय कहाँ निकली थी ? विवाह होने के बाद से क्या किसी का भी कोई मतभेद हुआ था ? सास के पास उसे रहने का अधिक अवसर नहीं आया था । प्रायः वह पति के साथ ही रहा करती । कभी छुट्टियों में पति घर-गाँव आता, तो वह भी उसके साथ आती। यदि कभी गोपिका बीमार पड जाती तो थोडे दिन आकर सास के पास रह लेती । उस समय गोपिका ने उस पर अपने सासपन का रोब कभी न जमाया था । सुख के दिनों में जो सुख और संतोष में रही, संकट में घबराई नहीं, वही सास इस समय इतना विरोध क्यों दिखा रही ?

गोपिका के असमाधान के कारण उत्पन्न हुई काली छाया उस नये वातावरण में कभी की साफ हो गई । रमा और सुभद्रा के लिए वह दिन बड़े भाग्य का प्रतीत हुआ।

बाहर गैलरी में सोयी गोपिका को खिड़की के पास खड़ी होकर आहट लेते हुए पड़ोस के कमरों वाले देख रहे थे ।

पर गोपिका को भीतर की कानाफूसी तक सुनाई न दी । जबरदस्ती के वानप्रस्थाश्रम का अन्त सिर्फ मौन में हुआ था । एकान्त में बातें करने योग्य बहुत विषय थे । पर उन सब बातों को बोलने की शक्ति किसी की भी वाचा में न रह गयी थी ।

दिन निकला । तब रमा को लगा, जैसे जग हँस रहा है। सभुद्रा के चेहरे पर भी विलक्षण ताजगी आ गयी थी । दोनों की आँखें चार हुई । तब दोनों के अधरों पर अर्थ-भरी मुस्कान मचल उठी ।

"आज हवा कितनी अच्छी है ?"—रमा बोली ।

"होनी चाहिए ।" इस तरह हँसकर कहती हुई कलेऊ का डिब्बा

लिये सुभद्रा मिल जाने के लिए निकल पड़ी।

रमा अकेली ही गैलरी में खड़ी थी। पड़ोस के कमरे वाले उसके कमरों की ओर धीरे-से झाँककर आगे चल देते थे। उसकी पड़ोसिन भी अछूत ही थी। पर वह थी बडी हँस-मुख। उसकी नजर से नजर टकराते ही रमा ने सहज हँस दिया। तब वह रमा से बोली—"आप कैसे आई इस बस्ती में रहने ? इस चाल में कोई बाभन रहने नहीं आता।"

"अजी कहाँ के बाभन और कहाँ के शूद्र !"—रमा बोली—"जब वक्त पड़ता है, तब जात पात को पूछता कौन है ?"

उस औरत ने प्रश्न पूछने आरम्भ किये और रमा ने उत्तरों में अपना सारा हाल उसे सुनाया।

वह औरत भी मिल के एक क्लर्क की पत्नी थी, पर वह क्लर्क सफेद-पोश न था। वह भंडारी जाति का था। औरत का नाम नर्मदा था। परन्तु अड़ोस-पड़ोस के लोग उसे उसके कुलनाम से ही पहचानते थे। नर्मदा मायेकरीन उस चाल में सभी को प्रिय थी।

चाल में यदि किसी के बच्चे बीमार पड़ते, तो उसकी सेवा करने के लिए वह हमेशा तैयार रहती। खाली बैठे रहना, हमेशा सोते रहना अथवा व्यर्थ ही गप्पें हांकते बैठे रहना उसे बिल्कुल पसन्द न था। इसी-लिए वह कोई-न-कोई काम कहीं से अपने लिए खोज निकालती।

यह देखकर कि रमा किसी से बातें कर रही है, गोपिका कमरे से बाहर आई। इस समय तक रमा की बातें बन्द हो गयी थीं और नर्मदा भी अपने कमरे में जा रही थी। रमा ने अपनी सास से उसका परिचय करा दिया।

कमरे में आने पर गोपिका बोली—"तुम्हारा यह स्वभाव अच्छा नहीं है, रमा ! जाने कहाँ की कौन भंडारी औरत ! उसके साथ इतनी बातें क्यों कर रही थीं ? भंडारी जाति बहुत हल्की होती है। इस जाति के लोग ताड़ी निकाला करते हैं। मराठों से भी हम इस जाति को नीच मानते हैं। दुर्भाग्य से हमें इस चाल में आकर रहना पड़ा है। पांडवों

की तरह अज्ञातवास में दिन काटने पड़ रहे हैं। तब हमें चुप अपने घर में बैठे रहना चाहिए। इन हल्के लोगों से हम जितनी दूर रहें उतना ही अच्छा।"

"वैसे तो वह औरत बड़ी अच्छी मालूम हुई।"—रमा बोली—"बड़े प्रेम से हमारी पूछताछ कर रही थी।"

"आजकल तुम्हारे दिमाग में यह क्या घुस गया है, रमा?" गोपिका चिढ़कर बोली -"मैं जो कहूँ उसका विरोध करने की ही जैसे सनक सवार हो गयी है तुम पर! हम पुराने घर में ही ठीक थे। वहाँ भी औरतें ही थीं। पर वे दिन में मिल चली जाती थीं, इसलिए उनके साथ विशेष परिचय नहीं हो पाया था किसी का। यहाँ आने पर पहिले ही दिन से तुमने यहाँ की औरतों से परिचय करना शुरू कर दिया। मैं यह पसंद नहीं करती।"

इस डर से कि यदि कोई उत्तर देती हूँ, तो बात का बतंगड़ बन जाएगा, रमा चुप ही रही। परन्तु यह देखकर कि अपनी सास का स्वभाव बदल गया है, उसे अत्यन्त दुख हुआ। थोड़े अच्छे दिन आते ही जातपाँत के प्रश्न को उठाकर, दोनों परिवारों में, एक दूसरे के प्रति विरोध की भावना पैदा करने की अपनी सास की वृत्ति रमा को दुस्सह हो गयी। उसे यही लगा कि जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप में हमें जिंदा रखा, उनके प्रति अपने हृदय में अब घृणा की भावना रखकर, पड़ौसियों की भी जाति का प्रश्न उठाकर, पड़ौस धर्म का पालन करने से उसे परावृत्त करने वाली गोपिका के भीतर की "सास" अब अच्छी तरह से जाग उठी है।

रात के काम-काज से निपट रमा ने सुभद्रा का नर्मदा से परिचय करा दिया गैलरी में वे तीनों बैठीं बातें कर रही थीं। यह बहाना बना कर जैसे वह कुछ भी नहीं सुन रही है गोपिका द्वार में खड़ी थी। उनकी बैठक में ऐसी कोई बात निकलना संभव ही न था जो किसी भी तरह आपत्तिजनक कही जा सकती।

मामूली बातें हो रहीं थीं, फिर भी गोपिका को अच्छीं न लगीं। वह दरवाजे से ही चिल्लाई—"अब कितनी देर तक और बातें करती रहोगी तुम लोग ? मुझे उस गैलरी में अब सोना जो है।"

तीनों उठकर अपने-अपने कमरे में चल दीं। झल्लायी हुई गोपिका गैलरी में आयी और उसने अपना बिस्तर वहाँ लगा दिया। तब नर्मदा बोली—"अच्छा हुआ जो आप यहाँ रहने आ गयीं। पहिले इन कमरों में दो शराबी रहा करते थे। बड़ी तकलीफ थी हमें उनके कारण। अब आप जैसे भद्र लोग आ गये हैं। इससे अगर कुछ हुआ, तो फायदा ही होगा। हमारे आचार-विचार सुधर जाएँगे। ऐसी चाल में आप जैसों का पड़ोस मिल जाना बड़े भाग्य की बात है। वरना यहाँ तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक गँवार ही लोग रहते हैं। किसी में कोई अच्छे ढंग नहीं। आज तक लड़ाई की खबरें हम अखबार में पढ़ा करते थे। हमने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि लड़ाई से लौटे हुए लोग इस तरह आकर हमारे पड़ोस में रहेंगे। परन्तु अब हमने प्रत्यक्ष देखा तो इसे हमने अपना बड़ा भाग्य समझा।" नर्मदा लगातार बोल रही थी। परन्तु गोपिका ने सिवा हुँकारी भरने के एक भी शब्द अपने मुँह से बाहर नहीं निकाला।

बेचारी नर्मदा ऊबकर अपने कमरे में चल दी। और गोपिका सिर पर ओढ़ना लेकर चिढ़ी हुई मनःस्थिति में ही सो गयी।

स्वास्थ्य ठीक हो जाने के बाद से शिधू ने रोज अखबार पढ़ना आरम्भ कर दिया था। रोज के सारे अखबार खरीदना उसके लिए असम्भव था। मिल के कुछ लोग अलग-अलग अखबार रोज खरीदा करते और एक दूसरे को पढ़ने दिया करते। वह एक प्रकार से चलता-फिरता वाचनालय ही हो गया था। इस कारण यद्यपि दो-दो तीन-तीन दिन के पुराने अखबार शिधू को पढ़ने मिलते, फिर भी बिल्कुल ही पढ़ने न मिलने की अपेक्षा, पुराने ही क्यों न हो, पर पढ़ने को तो मिलते थे।

लड़ाई कहाँ तक आई, कहाँ हो रही है और किस-किस मोर्चे पर

क्या-क्या हो रहा है, यह जानने की उसकी इच्छा बेकाबू हो गई थी। युद्ध के कारण राजनीति में बड़ी उथल-पुथल मच गयी थी। रूस की हार हो जाने से शत्रु राष्ट्र और मित्र राष्ट्र के नाते अदल-बदल हो रहे थे। अमेरिका भी लड़ाई में शामिल हो गया था और अमेरिका की फौज फ्रान्स की रणभूमि पर आ धमकी है, यह आश्चर्यकारक सामाचार इसी समय आ पहुँचा था। अमेरिका की सहायता प्राप्त हो जाने के कारण युद्ध का रंग एकदम बदल जाएगा, ऐसी सब को आशा थी।

शिधू स्वयं रणभूमि से लौटकर आया था। इसलिये मिल के लोग खासकर उसके साथी क्लर्क तथा अन्य पढ़े-लिखे कर्मचारी लड़ाई की चर्चा करने के लिए उसके पास आते। अखबारों में जो खबरें आती थीं, उनमें की वहुतसी झूठी और बनावटी हैं, ऐसी शिधू की धारणा थी।

नौकरी की खोज में जब वह घूमा था, उस समय लाइब्रेरियों में जाकर अखबारों की पुरानी फाइलें उलटकर वह देखता। पुराने अखबारों में प्रकाशित हुए समाचारों से उसने अपने प्रत्यक्ष अनुभवों को जिस समय पड़तालकर देखा उस समय उसे यही दिखाई दिया कि हिन्दुस्तानमें भेजे जानेवाले लड़ाई के समाचार अधिकांश में बनावटी थे। थे। स्पष्ट रूप से यह कहना उचित था या नहीं, इसकी उसे परवाह न थी। लड़ाई की आग में झुलसकर वह लौटा था। बनावटी खबरें भेजकर इधर लोगों को धोका देने की जो व्यवस्थित रूप से कोशिश की जा रही थी, उस पर उसे क्रोध आ जाता था। अपने प्रत्यक्ष अनुभव अपने साथियों से कह कर, अखबार की खबरों पर पूर्ण रूप से विश्वास न रखने के लिये वह उन्हें जताया करता।

यह बात न थी कि हिन्दुस्तान के लोग यह नहीं जानते थे कि लड़ाई की बनावटी खबरें यहाँ भेजी जाती हैं। यह कल्पना उन्हें भी थी। "हम बड़ी सफलता से पीछे हटे"—यह वाक्यांश उस समय सब के मजाक का विषय हो गया था। पहिले प्रकाशित हुए इस "बड़ी सफलता से पीछे हटने" के सच्चे वर्णन जिस समय शिधू बताने लगता, उस समय सुनने

वालों पर भी उसका अच्छा असर पड़ता। उनके भाई-बन्द भी लड़ाई पर गये थे। कुछ काम आ गए थे। कुछ घायल हो गए थे। इसलिए शिघू को इस लड़ाई पर जितना गुस्सा आता, उनता ही उन्हें भी आता था। सफेदपोश लोग लड़ाई के समाचार पढ़कर गिरगाँव में सिर्फ जर्मनी की सराहना करते, तो इधर मिल-नगरी में जो अछूत और मराठे आदि थे, उनका खून अपने आत्मीयों के बलिदान के कारण खौल उठता था। इसीलिए सफेदपोशों के सुसंस्कृत वातावरण की अपेक्षा मजदूर-नगरी का यह दुखी वातावरण शिघू को बिल्कुल अपना-सा लगने लगा।

———

हमारा दिन

यूरोप में लड़ाई की धूमधाम शुरू थी, पर उस लडाई के लिए उसी समय हिन्दुस्तान में जो धूमधाम मची हुई थी, वह अलबत्ता बिल्कुल भिन्न प्रकार की थी।

हिन्दुस्तान की सेना मेसोपोटामिया गयी थी, इसलिए पर्याय से हिन्दुस्तान की तिजौरी पर कुछ-न-कुछ बोझ पड़ता ही था। परन्तु इंग्लैड को उस समय पैसों की जरूरत थी। एक तो पहले ही हिन्दुस्तान दरिद्री, फिर लड़ाई की आँच प्रत्यक्ष रूप से हिन्दुस्तान को न लगी थी। इस हालत में विदेशियों की दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दुस्तान को लड़ाई के खर्च के लिए अपना पैसा बाहर भेजने की कोई आवश्यकता न थी। हिन्दुस्तान के पैसे निकालकर लड़ाई में काम में किस तरह खर्च किये जाएँ यही उस समय अँग्रेज सरकार के सामने प्रश्न था।

वार-लोन (युद्ध-ऋण) हिन्दुस्तान में निकाला गया। ब्याज अधिक मिलता था सही, पर आखिर वह कर्ज ही था। कभी-न-कभी उसे लौटा देना था। कर्ज की ओट में हिन्दुस्तान का पैसा यूरोप की लड़ाई लड़ने के लिए क्यों खर्च किया जाए, यह भी एक प्रश्न ही था।

इसीलिए हिन्दुस्तानियों की राजभक्ति को उभाड़ने का प्रयत्न किया गया। वार फंड, जैसे अनेकों फंड शुरू किये गये। अनेक लखपतियों ने अपनी जन्म-जात राजभक्ति से प्रेरित होकर लाखों रुपये इन फंडों में दिये। बहुतों ने पदवियां पाने की आशा से अपनी थैलियों के मुंह खोल दिये। सरकारी नौकरों के वेतनों से, उनकी इच्छा या शक्ति न होते हुए भी कुछ रुपये वार-फंड के लिए वसूल किये गये। गरीब लोग भी किसी-न-किसी रीति से लड़ाई के खर्च में हाथ बँटायें, इसलिए साढ़े सात

रुपये के कैश सार्टीफिकेट निकाले गये और जिन्हें साढ़े सात रुपये देने की भी ताकत न थी, ऐसे लोगों के लिए चार-चार पाँच-पाँच आदमी मिल-कर भी एक-एक केश सर्टीफिकेट ले सके, ऐसी योजना भी निकाली गयी गाँव-गाँव के छोटे किसानों और मजदूरों से भी तहसीलदारों द्वारा जबर-दस्ती इन फंडों के लिए चन्दा वसूल किया जाने लगा।

सभी के हृदय में राजभक्ति का जैसे उबाल आ गया था। नाखुशी से पैसे देने वाला व्यक्ति भी वारफंड में मुट्ठी-मुट्ठी भरकर रुपया देकर अपनी उदारता का प्रदर्शन कर रहा था। ऐसे धनिक को बदले में कुछ-न-कर इज्जत प्राप्त होने की आशा थी। राव बहादुर या खान साहब आदि होने की महत्वाकांक्षा थी। परन्तु अपने पेट को मारकर गरीबों ने भी जो पैसे दिये थे वे क्यों दिये इसका स्वयं उन गरीबों को भी कोई पता न चला। तहसीलदार जैसे अफसर गाँवों में जाकर पैसे माँगते थे और सरकारी आज्ञा का पालन करना चाहिए इसीलिए किसान और मजदूर घर में से पैसे निकालकर उन्हें देते थे। देने की ताकत नहीं थी, फिर भी देते थे। इसके परे उन्हें और कुछ भी महसूस न होता था। एक रुपये से लेकर साढ़े सात रुपये तक देने वाले किसानों को तो कोई राय साहबी या राय बहादुरी मिलने वाली न थी! डेढ लाख या डेढ़ हजार देने वाले धनी पुरुष जो रकम देता था, वह उसकी सम्पत्ति का एक थोड़ा सा अंश था। पर गरीबों के घर से आने वाला प्रत्येक पैसा, कभी तो उसकी समूची पूँजी ही होती, और बहुधा कर्ज होता। गाँवों से लड़ाई के लिए चन्दा वसूल करने का काम देश-भर में हो रहा था। इसीलिए मिलों में काम करने वाले लोगों को अपने गाँवों के भाईबन्दों और बुजुर्गों की इज्जत रखने के लिए स्वयं अधपेट रहकर, उन्हें पैसे भेजने पड़ते थे और इसीलिए मिल के मजदूरों और अन्य छोटे कर्म-चारियों में लड़ाई की चर्चा लगातार शुरू हो गयी थी।

शिघू रोज अखबार पढ़ता था। लड़ाई के लिए हिन्दुस्तान ने जो स्वार्थ-त्याग किया, लड़ाई की प्रत्यक्ष आँच हिन्दुस्तान को न लगते हुए

भी लड़ाई चलाने के लिए धन की उससे जो मदद मिल रही थी, उसके बारे में अखबारों में बड़ी प्रशंशा होती। जिस के दिमाग पर आघात हो गया था, शिधू उसे पढ़कर क्षण-क्षण में अस्वस्थ हो जाता। लड़ाई के लिए उसने अपना रक्त बहाया था। लड़ाई के कारण उसका दिमाग बिगड़ गया था, वह तो संयोग की बात थी कि बाद में वह अच्छा हो गया, परन्तु यदि वह ठीक न होता, तो लड़ाई के कारण जिंदा रहकर भी एक मृत की तरह ही उसे दुनिया में अपना शेष जीवन काटना पड़ता।

इस विचार के मन में उठते ही उसके हृदय में आग भड़क उठती। अर्जुन का ठूंठा हाथ देखता, तो उसका खून सनसनाने लगता। पहिले की तरह ही उसके सामने प्रश्न खड़ा हुआ कि ये यातनायें और यह विडम्बना हम किसलिए बरदाश्त करें?

हिन्दुस्तान को स्वराज्य की एक बड़ी किश्त देने की बातें कही जाती थीं। भारत-मंत्री मांटेग्यू साहब और तत्कालीन भारत के वाइसराय चेम्सफोर्ड के बीच इस सम्बन्ध में मंत्रणायें हो रहीं थीं और इन मंत्रणाओं में जो सब्ज बाग दिखाये जाते, उनके जोर पर ही लड़ाई के लिए अलग-अलग फंड-निर्मित करके चन्दे इकट्ठे किये जाते थे।

हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े नेता इस लड़ाई के बारे में चर्चा करते। इस लड़ाई से ही हिन्दुस्तान की भलाई होगी, इन नेताओं में से एक विशेष वर्ग के नेताओं को यह निश्चित लग रहा था।

समाधान अगर नहीं हो रहा था तो गरीबों का। पूर्ण स्वराज्य क्या है, उपनिवेशिक स्वराज्य किस चिड़िया का नाम है, यह सब वे लोग बिल्कुल नहीं समझते थे। उन्हें सिर्फ एक ही बात समझ में आती थी कि इस लड़ाई के लिए उन्हें अधपेट रहकर अपना पैसा वारफंड में देना पड़ रहा है। इसीलिए वे भगवान से प्रार्थना करते थे कि यह लड़ाई जल्द से जल्द बन्द हो जाए।

पैसा इस प्रकार से जा रहा था। परन्तु उस हिसाब से मनुष्यों का

संहार अधिक नहीं हो रहा था। इसीलिए शायद हिन्दुस्तान में उस समय इंफ्लूएंजा की संक्रामक बीमारी का प्रादुर्भाव होने लगा। किसी समय प्लेग से बेजार होकर अब निर्भय हुए लोगों को भी इन्फ्लूएंजा की इस बीमारी से डर लगने लगा। सच पूछा जाए तो इंफ्लूएंजा याने जुकाम। पर बिल्कुल थोड़े ही समय में जुकाम की इस संक्रामक बीमारी ने जितने लोगों को मौत के घाट उतारा, उतने कई वर्षों के प्लेग में भी नहीं मरे थे।

हिन्दुस्तान में जहाँ-तहाँ इस बीमारी के कारण हाहाकार मच गया था। ऐसा एक भी गाँव न बच था, जहां इस बीमारी ने उत्पात न मचाया हो। और वार फंड के लिए जिस तरह हर गाँव के हर घर से कम-से-कम एकाध रुपया तो वसूल किया ही जाता था, उसी तरह हर गाँव के प्रत्येक घर का कम-से-कम एक आदमी इंफ्लूएंजा से मरता ही था! हिन्दुस्तान में लड़ाई नहीं हुई, लड़ाई के कारण मनुष्य-संहार भी नहीं हुआ था। उसी की भरपाई का ठेका जैसे इस बीमारी ने ले लिया लिया था।

बम्बई में इस बीमारी का बड़ा जोर था। सफाई या गन्दगी, अमीरी या गरीबी, उच्च-वर्ण या अधो-वर्ण, मलाबार हिल या परेल, ऐसा कोई भी भेद-भाव न रखकर इस बीमारी ने अपने पैर सर्वत्र फैला दिये थे।

सभी के मुंह सूख गये थे। नीलगिरी तेल की बोतलों की बिक्री जोरों से शुरू थी। इस तेल से भीगा हुआ रुमाल नाक के सामने पकड़े हर मनुष्य घूम रहा था। जिसका जरा कहीं बदन थोड़ा गरम हो जाता कि उसी समय मारे डर के उस मनुष्य के हाथ-पाँव लूले पड़ जाते थे।

शिधू की चाल में यही चर्चा का विषय था। हर आदमी अपने-अपने ढंग से कुछ-न-कुछ प्रतिबंधक उपाय कर रहा था। बम्बई की परिस्थिति से ऊबी हुई गोपिका इस नयी गड़बड़ी के कारण बेचैन हो उठी और शिधू कि सम्मति प्राप्त कर अपने गाँव चली गयी। विरोध की काली छाया दूर हो जाने से रमा को भी अच्छा लगा। गोपिका के

प्रति उसके मन में किल्मिष न था, परंतु जाति-भेद और धर्म-अधर्म के प्रश्न बार-बार निकालकर, अर्जुन और सुभद्रा को ही नहीं, बल्कि पड़ोस के लोगों को भी वह एक प्रकार से बड़ा त्रास दिया करती थी। इसके कारण रमा को दुख होता था और इसीलिए सास के गाँव चले जाने से उसे विशेष बुरा न लगा।

वार फंड के लिये मिल के मालिक और मैनेजर के प्रोत्साहन से, अथवा चाहे तो जबरदस्ती से कहिये, मिल के कुछ कर्मचारियों ने एक नाटक का अभिनय किया और उसकी आमदनी 'अवर डे' फंड को दी। उस अभिनय के समय मिल के मालिक स्वयं उपस्थित थे। नाटक को अभिनीत करने में शिधू जोशी ने बड़े परिश्रम किए थे। जब मिल के मालिक' को इसका पता लगा, तब उसने शिधू को जानबूझ कर सब के सामने अपने पास बुलाया और उसकी पीठ पर हाथ फेरकर नाटक की सफलता के लिए उसे हार्दिक बधाई दी, परन्तु शिधू की अब इतनी गुलाम-वृति नहीं थी कि इस कोरी बधाई से उसका सीना फूल जाता। जब उसके साथी क्लर्कों ने उसके इस अकल्पिक सम्मान के लिए उसकी पीठ ठोंकी तब वह बोला—"इस में क्या धरा है जो मैं घमंड से फूल जाऊँ? मिल का मालिक कोई भगवान नहीं है और उसने आखिर किया भी क्या है? सिर्फ मुझे शाबासी दी, बधाई दी। यही न? क्या मेरी तनख्वाह में एक रुपये की भी बढ़ोतरी की? तुमने और हमने सारे परिश्रम किये, नाटक जमाया, घर-घर जाकर टिकट बेचे, पैसे इकट्ठे किए और वारफंड में दिये। पर इसका श्रेय किसको मिला? मैनेजर को मालिक को अथवा दोनों को! वहाँ शिधू जोशी या गणू भोंसले का कोई नाम ही नहीं लेगा। हम जैसे ऐरे-गैरे नत्थू-खैरों को मुफ्त का श्रेय भी प्राप्त नहीं होगा। फिर खुश होने की बात कहाँ है? किसलिए मैं अपना सीना फुलाऊँ? क्या इसलिए कि मालिक ने मेरी पीठ ठोंकी? मालिक के पीठ ठोंकने से मेरी पीठ का चमड़ा सोने का नहीं हो जाता या कि मुझे एक कौर भोजन अधिक नहीं मिल जाता। क्यों हमने इतने

परिश्रम किए ? किस के लिए ? कहाँ जाने वाले हैं ये पैसे और किन्हें मिलने वाले हैं वे ? भारतीय सिपाहियों को मिलेंगे या कि गोरे सिपाहियों को शराब पिलाने में खर्च होंगे ? यह भी तो हमें नहीं मालूम। सरकार ने एक फंड निकालने का ढिंढोरा पीटा, उसे नाम दे दिया "अवर डे फंड" और बस, हम बौखला गये ! सरकारी, अर्ध-सरकारी और गैर सरकारी, सभी लोग चन्दा इक्ट्ठा करने में जुट गये। पर इस पैसे का विनयोग किस तरह होगा, यह किसी एक ने भी सरकार से पूछा है क्या ? मैं लड़ाई पर गया था। डाक-विभाग में काम करता था। वहाँ देखता था। संसार के कोने-कोने से सिपाहियों के लिए सैकड़ों पार्सल रोज आते थे। उन में जो चीजें होतीं, वे सिपाहियों को इनाम के रूप में लोगों द्वारा भेजी जाती थीं। उन पार्सलों में कपड़े होते, दवाएँ होती, मेवा-मिठाई होती। यहाँ के धर्मावतार अपनी प्रतिष्ठा के लिये लड़ाई के मैदान पर खून बहाने वालों के लिए ये चीजें भेजा करते थे। पर वे किन-किन के पास पहुँचीं, किन लोगों ने उनका उपयोग किया, क्या किसी ने इसकी भी कोई पूछताछ की है ? हम अपनी आँखों से देख रहे थे कि ये चीजें मैदान पर लड़नेवाले सैनिकों तक पहुँच ही न पाती थीं। बीच ही में अफसरों या अन्य कर्मचारियों द्वारा लूट ली जाती थीं। जिनके लिये ये चीजें भेजी जाती थीं उन्हें उनके दर्शन भी न होते थे। यही हाल इन सारे फंडों का भी होगा। बार-बार मन में यही प्रश्न उठता है कि सारी उछल-कूद हम किसके लिए कर रहे हैं। क्या जरूरत है हमें इस उछल-कूद की ? इस नाटक के लिए हमने मजदूर से रुपया-आठ आना ऐंठे, अफसरों की सख्ती से लोगों ने अधपेट रहकर टिकट खरीदे। उन्होंने अपने बच्चों को एक दिन भूखा रखा, पर पैसे दिये, टिकट खरीदे। बच्चों के मुंह के कौर निकालकर 'अवर डे फंड' के मुँह में ठूंसे। यह सब किसके कल्याण के लिए किया ? मेरी ओर देखो—इस अर्जुन की ओर देखो—हम किस तरह दर-दर भटक रहे हैं। हम लोगों की कौन खबर लेता है ? तुम्हें हम दो ही दीख रहे हैं। पर हमारे जैसे दो सौ हैं या दो हजार,

यह देखने कौन आता है ? लड़ाई में जाकर खून बहानेवाले हम यूँ इस तरह मर रहे हैं। फिर यह 'अवर डे फंड' किसके लिये है ? किसका कल्याण होने वाला है इस फंड से ?"

शिधू का यह लम्बा भाषण जिन्हें जँचा, उन्होंने आहें भरीं। सच है! सच है! कहते हुए वे चल दिये। जाने के बाद वे उस भाषण को शायद भूल भी गये होंगे। बहुतों ने शिधू का मजाक उड़ाया और बहुतों ने तो शिधू को धमकी दी कि लोगों को वह व्यर्थ भड़का रहा है, इसलिए वे मैनेजर से उसकी शिकायत कर देंगे।

———

सूखी आखें

मिल के मालिक सेठ कुन्दनलाल के बंगले पर, "अवर डे फंड" के लिए जिन लोगों ने नाटक का अभिनय किया था, उनमें से कुछ चुनिन्दा लोगों को दावत दी गयी थी।

वैसे देखा जाए तो नाटक से कुल आमदनी सिर्फ चार सौ रुपये ही हुई थी। इतनी रकम सहज फेंक देना कुन्दनलाल के लिये असम्भव नहीं था और उन्होंने वैसी बडी-बड़ी रकमें 'वार फंड' को दी भी थी, परन्तु अपने समान अपनी मिल के मजदूर और नौकर भी राजभक्त है, यह साबित करने के लिए वे इस नाटक के फंदे में पड़े थे और इसीलिए उन्होंने यह दावत दी थी।

नेपियन सी रोड के कुन्दनलाल के बंगले पर जब ये लोग पहुँचे उस समय स्वयं मालिक ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। मालिक की इस विनम्रता का शिधू को छोड़कर और सब लोगों के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सफेदपोशों के दाम्भिक आचार-विचारों से शिधू बहुत अच्छी तरह परिचित था, इसलिए कुन्दनलाल की इस विनम्रता के ढोंग से शिधू को बड़ी घृणा हुई।

इस दावत में ही मालिक के सौ दो सौ रुपये खर्च हो गये होंगे। मालिक द्वारा इतना रुपया खर्च करते देखकर प्रत्येक मनुष्य जब मालिक की प्रशंसा करने लगा, उस समय शिधू को बड़ा बुरा लगा। थोड़ी भी भूल हो जाने पर निर्दयता से सज़ा देने वाले मालिक और मैनेजर इतनी उदारता क्यों दिखा रहे है, इसे कोई भी नहीं सोचता था। यद्यपि शिधू के मन में बार-बार यह आ रहा था कि अच्छी खरी-खोटी सुनाकर,

उनकी आँखों में अंजन डाल दूँ, फिर भी पूरी तरह विचार करके उसने अपनी जबान रोक ली।

घर जाने के बाद नर्मदा का पति मयेकर जिस समय मालिक के बँगले पर घटी घटना का हाल अर्जुन को कहने लगा, उस समय अलबत्ता शिधू से न रहा गया। वह बोला, "किस की तारीफ कर रहे हो जी ? जानते हो, हमारे इस मालिक ने वार फंड में एक लाख रुपये दिये हैं। हम लोगों से उसने नाटक कराया और चार सौ पचास रुपया इकट्ठा करके सरकार को भेज दिये। इस तुलसी-पत्र से क्या वार फड की सुवर्ण तुला का पलड़ा नीचे झुक जाएगा ? और ऊपर से यह दावत दी। यदि दावत ही देनी थी तो मिल के सभी लोगों को क्यों न दी ? चुन्निदा लोगों को ही क्यों दी ? दोगे इसका उत्तर ?'

"तुम्ही बताओ न ?" मयेकर बोला —

"वह अपना ऐश्वर्य दिखाना चाहता था हमें।" शिधू होंठ चबाता हुआ बोला, "इस सीमेंट की चाल में हम रोते पड़े हैं। हमें वह दिखा देना चाहता था कि देखो, हम कितने ऐश्वर्यशाली हैं ? अपना वैभव दिखाकर हमें लज्जित करने के लिये क्लर्कों को उसने बुलाया। आज या कल हमारे दिमाग में अगर कभी अपने अधिकारों सम्बन्धी विचार आ जाएँ तो इसके लिए वह पहिले से ही हम पर अपनी धाक जमा देना चाहता था। समझे जनाब ? क्या करेंगे ये मालिक ? मर और खप तो हम रहे हैं न ? पैसे खर्च करके मिल की मशीनों को खरीदने के सिवा इन्होंने और क्या किया था कि क्या कर रहे हैं ? हम जो माल तैयार करते हैं, उसे ऊँची कीमत पर बाजार भेजने के सिवा इनका दूसरा काम ही क्या है ? हमी अंधे हैं, आँखें होकर भी देखना नहीं चाहते। इसीलिए उनके ये दाँव चल रहे हैं। क्या जरूरत थी यह नाटक करने की ? जिसने सहज ही एक लाख रुपये दे दिये, वह हम मजदूरों और मिल के हम जैसे अन्य छोटे कर्मचारियों के नाम से क्या हजार पाँच सौ और नहीं दे सकता था ? परन्तु सिर्फ इतनी रकम बचाने के लिए हमारे

चेहरों को रंग लगवाकर उसने हमें रंगमंच पर नचवाया। मिल का काम सुचारु रूप से करते हुए हमने नाटक की प्रैक्टिस की, रिहर्सल किये, नाटक किया, घर-घर जाकर टिकट बेचे और हमें मिला क्या? साढ़े चार सौ रुपये! इतने पर ही हम खुश हो गये! हमारे पैसों से यह लड़ाई चलेगी, ऐसा हमें लगने लगा। यह दावत नहीं थी, मयेकर! यह जले पर नमक छिड़का गया है। नेपियनसी रोड के उस ऐश्वर्य को देखकर तुम्हारी आँखें चौंधिया गई, पर मेरे हृदय में आग जल रही है।

हम तो प्रत्यक्ष लड़ाई से लौटे हुए लोग हैं। तो क्या हमसे ज्यादा इन आलसी धनियों को लड़ाई की अधिक फिक्र होगी? कब यह लड़ाई बन्द होती है, इसके लिए हम क्यों इतने उत्सुक हो रहे है, जानते हो तुम? हमें लगता है कि हमारी जो दुर्दशा हुई है, वैसी दुर्दशा उन बेचारों की न हो जो अभी वहाँ लड़ रहे है। एकदम लड़ाई बन्द होनी चाहिए, ऐसा हमें लगता है। पर लड़ाई को आगे चलाने के लिए ये लोग संग्रह करके भेज रहे हैं। अभी और हजार आदमियों के जीवन का सत्यानाश करने वाले हैं ये!

"फिर नाटक के समय तुमने हमसे क्यों नहीं कहा?"—मयेकर ने पूछा।

"अभी भी नहीं कहना चाहता था।" शिधू बोला, "मेरी यह बात किसे जँचेगी। यहाँ तुम अकेले हो। मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में थोड़ी करुणा है, मेरे शब्दों पर तुम्हारा कम-से-कम थोड़ा विश्वास है, ऐसा मुझे लगता है। इसलिए मैं तुमसे कह रहा हूँ। हम कोंकणवासी बड़े उत्सव-प्रिय होते हैं। किसी भी उत्सव को मनाने का हमें थोड़ा भी अवसर मिल जाए तो एकदम उसमें शामिल हो जाते हैं। फिर व्यर्थ ही मैं किसी को निरुत्साहित क्यों करता? इसलिये चुप रहा। परन्तु इस समय भीतर से आवेश उमड़ उठा, इसलिये कह रहा हूँ। ये बातें और किसी से मत कहना। कल यदि मैनेजर को पता चल गया, तो मुझे नौकरी से हाथ धो बैठना होगा।"

मयेकर क्षणभर के लिए स्वस्थ बैठा । शिधू की बातों का उसके मन पर प्रभाव पड़ गया था । उस जमाने में ऐसे विचारों का प्रचार मिलों में नहीं हुआ था, जहाँ-तहाँ मनमानी चलती थी । किसे नौकरी क्यों दी और किसे नौकरी से क्यों निकाल दिया, इसकी उस जमाने में कोई कुछ फिक्र न करता । मालिक, मैनेजर और हैडजाबर की सनक के विलक्षण उदाहरण मयेकर को मालूम थे । पैसे की बचत के लिये मिल-मालिक कितनी बाल की खाल निकालते हैं, कितने सजग रहते हैं, इसकी उसे याद हो आई । एक पुरानी बात उसकी नजरों के सामने मूर्त होने लगी और जब वह उन्हें बताने लगा, तब अर्जुन बोला—"मैं फाटक पर रहता हूँ, यह अच्छा है । भीतर क्या झमेले हुआ करते हैं, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं चलता । मेरी घरवाली जब बार-बार शिकायत करती तो मैं उसे डाँटकर चुप कर देता, परन्तु अब मेरे दिमाग में थोड़ा प्रकाश पड़ा । आगे आँखें खोलकर देखता रहूँगा ।"

मर्दों में हो रही इन बातों को तीनों औरतें ध्यान से सुन रही थीं । तीनों के मन पर तीन प्रकार के प्रभाव पड़ रहे थे । मैं पति से मिल के कुछ अन्यायों के बारे में जो शिकायतें किया करती थी, उनका सच्चा कारण पति को मालूम हो गया, इसलिए सुभद्रा को समाधान हुआ । अपने पति ने कैसे कष्ट सहन किये, इसका हाल मालूम हो जाने के कारण समय-कुसमय पति पर मैं व्यर्थ नाराज हुई,इसका नर्मदा को दुख हुआ । रमा के मन पर जो प्रभाव पड़ा, वह बिल्कुल भिन्न प्रकार का था । शिधू की पुरानी नौकरी का उसे स्मरण हो आया । जब वह पोस्ट आफिस में नौकर था, उस समय उसका स्वभाव बड़ा आनन्दमयी था । उसके उस विनोदी स्वभाव की उसके आज के क्रोध से वह तुलना करके देखने लगी ।

उसके सामने प्रश्न उपस्थित हुआ, यह काहे का परिणाम है ? शारीरिक व्याधि का या मानसिक व्याधि का या दोनों का मिलाकर ?

उसे लगा यह परिणाम, लड़ाई पर जाने की जो नासमझी इन्होंने

की, उसका है। यदि लड़ाई पर न जाते, तो आज उनकी यह दशा क्यों होती ? सुख से कहीं भी तारबाबू या पोस्ट-मास्टर की हैसियत से सम्मान के साथ रह सकते। स्वभाव उसी तरह खुश-मिजाज बना रहता। उन्हें भी सुख होता और मुझे भी कष्ट न होते।

उसे पुनः-पुनः लगता, मनुष्य के स्वभाव में फर्क हो सकता है, पर उसकी भी आखिर कोई सीमा है या नहीं ? सदा हँस-मुख रहने वाला उनका पहिले का चेहरा अब जैसा डरावना क्यों दीखता है ? आँखें गँजेड़ी की तरह लाल-लाल क्यों दिखती हैं ? जरा कहीं बोलने का स्वर ऊँचा उठा, तो मस्तिष्क की नसें तनकर ऊभर क्यों आती हैं ? और अगर जरा कहीं थोड़ा गुस्सा आ गया, तो आँखों से चिनगारियाँ निकलने का आभास क्यों होता है ? कितना फर्क हो गया है यह ? खोई हुई स्मृति जिस तरह फिर से लौट आयी है, उसी तरह खोया हुआ आनन्दी-स्वभाव भी क्या फिर लौटकर नहीं आएगा ? उसकी आँखें एकदम सजल हो उठीं।

शिघू कमरे के भीतर गया और उसने भीतर से कुंडी लगा ली। देखा तो रमा की आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे।

"क्या हुआ, क्या हुआ, रमा !"—शिघू ने घबराकर पूछा।

आँखें पोंछती हुई रमा बोली—"आप लोग जो बातें कर रहे थे उन्हें मैं सुन रही थी। इस कारण पुरानी यादें हरी हो गयीं। लड़ाई पर जाने से पहिले की याद हो आयी। चार अगस्त का स्मरण हो आया। उस दिन लड़ाई शुरू हुई थी। उस समय आपने क्या कहा था, कैसे कहा था, वह सब याद आ गया। उस समय आपका स्वभाव मेरे स्मृति-पट पर घूम गया। कहाँ गये वे दिन ? उस समय भी हम कौन बड़े अमीर थे। बीस ही रुपये तो मिलते थे न ? पर कितने आनन्द में थे हम लोग ?"

शिघू बिल्कुल सन्न हो गया था। उसके माथे पर शिकनें उभर उठी थीं। क्रूरता की छाया उसके चेहरे पर फैलती हुई दिख रही थी। बोलते बोलते रमा रुक गयी। जब उसके चेहरे पर उसकी नजर गयी, तो

उसके छक्के छूट गये। एकदम चौंककर उसने पूछा—"क्या हुआ ?"

"तुम भाग्यशालिनी हो, रमा ! तुम्हारी आँखों से आँसू टपक रहे हैं। जैसा तुम सोच रही हो, वही बातें मेरे मन में भी आ रही हैं, परन्तु तुम्हारी आँखों से आँसू निकल जाने के कारण तुम्हारा दुख हल्का हो जाता है। मैं भी तुम्हारी तरह ही दुख के आवेग से गद्गद् हो जाता हूँ। मेरा हृदय पसीज उठता है, पर आँखों के रास्ते वह बाहर नही निकलता। इसलिए मेरी घुटन होती है। मुझे अपने पर ही आश्चर्य होता है। गंभीरता क्या होती है यह पहिले मैं जानता ही न था। इसीलिए सभ्य समझे जाने वाले बड़े लोगों का मेरे प्रति मत अच्छा नहीं था। पर उस समय मैं अपने ही आनन्द में मस्त रहता। किसी की भी परवाह न करता। तुम्हारी तरह मेरे सामने भी प्रश्न खड़ा है—कहाँ गया वह मेरा स्वभाव ?"

वह चुपचाप बिस्तर पर बैठ गया। श्वास बन्द हो जाने के कारण मनुष्य जिस तरह घबरा जाता है उसी तरह भौंचक्का हो गया था।

रमा ने घबराकर अर्जुन को पुकारा।

अर्जुन दौड़ता हुआ ही आया। तब तक भी शिघू होश में नहीं आया था। उसे स्वतन्त्रता से साँस लेते नहीं बनता था। पानी का प्याला भर कर अर्जुन उसके मुँह के पास ले गया। एक-दो घूँट गले के नीचे उतरते ही एक लम्बी आह भरकर वह होश में आया।

बर्तन का पानी लेकर उसने उसकी आँखों से लगाया। उस समय वह एकदम क्रोध से चिल्लाकर बोला—"आँखों का पानी क्यों लगा रहे हो ? क्यों मुझे धोखा दे रहे हो इस तरह ? बिल्कुल सूखी पड़ी हैं ये आँखें भीतर का पानी भरकर आँखों के रास्ते ऊपर नहीं आता तब तक क्या बाहर का पानी लगा कर समाधान देना चाहते हो ? इससे मेरा समाधान कैसे होगा ?"

"क्या हुआ ?"—अर्जुन ने पूछा।

"होगा क्या ?" एक लम्बी आह भरकर बोला—"जो होना चाहिए

वही हुआ है तुम्हारा हाथ टूट गया—मेरा दिमाग चल गया।"

"पर वह फिर से लौट तो आया न ?" अर्जुन ने बड़े स्नेहसिक्त स्वर में कहा।

जोर से अपना माथा पीटकर बोला—"हाँ लौट तो आया है। अक्ल आ गयी है। स्मृति लौट आयी है। पर यही बड़ा दुख हो गया है, ऐसा लगता है, उसी तरह रहा आता, तो अच्छा होता। उधर लड़ाई हो रही है। उस लड़ाई की खबरें हम रोज अखबारों में पढ़ते हैं। वहाँ खून बह रहा है और इधर से फन्डों में एकत्रित हो कर वहाँ पैसा जा रहा है। इस तरह खून चूसा जा रहा है। यह देखता हूँ, तो हृदय में जैसे आग भड़क उठती है। वह याद बार-बार नजरों के सामने खड़ी हो जाती है। वहाँ के लोगों को मारने के लिए हम इधर से पैसे भेज रहे हैं। क्या यह पुण्य है ? क्या यह देश-भक्ति है ? क्या यही सच्ची राजभक्ति है ?"

अर्जुन सिर्फ शिधू के मुँह की ओर टकटकी लगाकर देख रहा था।

"मेरे मुँह की तरफ देखते हो ?" शिधू उबलकर चिल्ला पड़ा—"जमीन पर बहा हुआ खून तुमने मुझसे अधिक देखा है। तुम्हारे हाथ से मनुष्यों की हत्यायें हुई हैं। उन मनुष्यों को तुमने क्यों मारा ? बताओ क्यों मारा ?"

"वाह यह भी कोई प्रश्न है ?"—अर्जुन बोला—"वह सिपाई का धर्म है।"

"यह कैसा सिपाही का धर्म ? नाहक किसी के प्राण लेना क्या धर्म है ? क्यों मार रहे थे उन लोगों को ? उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? अर्जुन वह धर्म नहीं था—वह अधर्म से भी अधिक अधर्म था। जिन्हें तुम मार रहे थे वे तुम्हारे वैरी नहीं थे। तुम्हारे देश के भी वैरी नहीं थे। किसी गधे ने हुक्म दे दिया और तुम पिल पड़े मारने को। भगवान ने तुम्हें इस पाप का प्रायश्चित दिया और तुम अपना एक हाथ जिन्दगी-भर के लिए खो बैठे। उन हुक्मों को मैं तार द्वारा भेजता था। उस पाप

का मुझे भी प्रायश्चित मिला। मैं अपना दिमाग खो बैठा।"

अर्जुन की पलकें गीली हो गयीं। उसकी आँखों में आँसूओं को देखते ही शिधू झल्लाकर उठा और चिल्ला पड़ा—"रोओ मत। मेरे सामने मत रोओ। किसी की आँखों में आँसू देखता हूँ, तो मेरे सारे बदन में जैसे आग लग जाती है।"

रमा के इशारा करते ही अर्जुन कुछ न बोला, वहाँ से चल दिया। फिर रमा ने शिधू को जबरदस्ती बिस्तर पर लिटा दिया।

———

स्वर्ग की दो राहें

उस दिन रमा ने निश्चय किया कि आँखों में कभी आँसू नहीं आने दूँगी। उस दिन से शिधू की दृष्टि एक ही बात पर गड़ गयी—'किस-किस की आँखों में आँसू आते हैं ?

पड़ोस के लड़के रोते हों, तो घन्टों वह उन की ओर देखता रहता उन्हें अपनी गोद में लेकर उनके आँसू पोंछता।

शिधू की यह लत मालूम हो जाने के कारण नर्मदा हमेशा यह साव-धानी बरतती कि पड़ोस के लड़के शिधू के सामने न रोवें।

रमा और नर्मदा में अब काफी घनिष्ठता हो चुकी थी। दोनों दोपहरको घर में खाली रहतीं। नर्मदा के मन में बार-बार आता कि वह भी जाकर मिल में मजदूरी करे। उसके पति को जो वेतन मिलता था, वह परिवार की गुजर के लिए पर्याप्त न होता। ऊपर से कुछ पैसे गाँव भी भेजने पड़ते थे। उसे लगता वह भी नौकरी करे और परिवार की परवरिश में थोड़ा हाथ बँटावे, परन्तु उसका पति क्लर्क था। यद्यपि सफेदपोश जाति का न था, फिर भी काम से वह सफेदपोश बन गया था। नर्मदा को समझाने के लिए यद्यपि वह यह कहा करता कि घर में जो लोग हैं उन्हें सँभालने के लिए भी तो घर में कोई रहना चाहिए, फिर भी उसे यह बात नहीं जँचती थी। क्लर्क जैसे प्रतिष्ठित मनुष्य की औरत मिलमें आकर मजदूरी करे। पत्नी यदि मिल में जाकर मजदूरी करेगी तो जातवाले उसे बदनाम करेंगे।

पोशाक और रहन-सहन आदि के बारे में मयेकर बड़े टीपटाप से रहता। पत्नी को भी टीपटाप से रहना चाहिए, ऐसा उसका अनुशासन था। स्वयं नर्मदा को भी सफाई पसन्द थी। परन्तु मयेकर की रुचि,

स्वच्छता और टीपटाप इससे भी दो कदम आगे बढ़ गई थी ! उसकी बड़ी महत्वकांक्षा थी कि उसकी पत्नी को देखकर, लोगों को यह लगना चाहिए कि वह किसी सफेदपोश की पत्नी है। इसीलिए वह नर्मदा. को भंडारी ढंग के जेवर नहीं पहिनने देता था, साड़ियाँ ब्राह्मणों के ढंग की ला देता। पति के आग्रह से ही उसने चोली को छुट्टी देकर ब्लाउज पहिनना शुरू कर दिया था।

और नर्मदा थी भी वैसी ही। सुन्दर और साफ-सुथरी पोशाक पहिन-कर जब रमा के साथ बाहर निकलती, तो लगता जैसे बहिने हैं।

कोई काम न होने के कारण वे दोनों दोपहर को मन्दिर में कथा-पुराण सुनने के लिए जातीं, पर रमा का मन पुराण की कथाओं में न लगता। उम्र में वह कोई प्रौढ़ा नहीं थी। पर जीवन में-उसने जो दुख सहन किये थे, विशेषतः जिस एक प्रसंग से वह हाल ही में गुजरी थी, उसके कारण असमय में ही प्रौढ़ा हो गयी थी।

यह देखकर कि शिधू के स्वभाव में फर्क हो गया है, उसे आश्चर्य हुआ। शिधूके इस बदले हुए स्वभाव का उसके मन पर जो असर हुआ, उसके कारण यदि पुरानी जानपहचान का कोई मनुष्य उसे देखता तो उसे उसके चेहरे में भी बहुत सा परिवर्तन हुआ दिखायी देता। एक दिन वे दोनों पुराण सुनने मन्दिर जा रही थीं, उस समय रमा ने कहा—

"काफी सुन चुकीं मुई ये पुराण की कथायें। बचपन से उन्हीं-उन्हीं को को सुनकर ऊब उठी हूँ। सब ढकोसला है। इतने व्रत किये इतने उपवास किये, सब कुछ कर छोड़ा, पर भगवान ने भाग्य न बदला। हमने ऐसा कौनसा अपराध किया था जिससे हमारी ऐसी दुर्दशा हुई। भगवान के प्रति अब मेरी श्रद्धा नहीं रही।

उनके उदगारों को सुनकर, नर्मदा स्तम्भित हो गयी। उसके दुख को वह जानती थी। परन्तु उसका प्रभाव उसके मन पर इस हद तक पड़ा है, ऐसा नर्मदा ने न सोचा था।

नर्मदा ने रमा से इस विषय में कोई बहस न की। उसने कहा—

"ठीक है। नहीं सुनना चाहती, तो न चलो।" और उसने मन्दिर जाने का इरादा त्याग दिया। वह सिर्फ इतना ही बोली—"घर में खाली बैठे-बैठे आखिर करें क्या? सुबह से ही हमारे घर के मर्द नौकरी पर चल देते हैं। दोपहर को वहीं भोजन करते हैं। उसी समय हम लोग यहाँ अकेली बैठकर खाती हैं। यदि गाँव में होतीं तो कम-से-कम खेतों में जा कर कुछ काम करतीं। यहाँ क्या काम है? खाली बैठे अनाप-सनाप विचार मन में आते हैं, बस!"

"क्या यहाँ कोई पुस्तकालय नहीं है?" रमा ने एकदम पूछा।

"हाँ, है तो शायद।"—नर्मदा बोली—"अच्छा सोचा तुमने।"

मिल के कुछ लोगों ने इधर-उधर से कुछ पुस्तकें लाकर एक कमरे में रख दी थीं और उस कमरे को वे अपना पुस्तकालय कहा करते। पुस्त-कालय का चन्दा एक आना महीना था। एक आना देना किसी को कठिन न होता।

वे दोनों उस पुस्तकालय से पुस्तकें लाकर पढ़ने लगीं। आखिर पढ़ती भी क्या? उपन्यास या नाटक? और ऐसी पुस्तकें वहाँ थीं भी कितनी? उस समय स्वर्गीय श्री काशीनाथ रघुनाथ मित्र का "मनोरंजन" मासिक-पत्र अत्यन्त लोकप्रिय था। मित्र जी के द्वारा प्रकाशित की जानेवाली अन्य पुस्तकें भी उस समय बड़ी प्रतिष्ठित मानी जाती थीं। उन पुस्तकों का चुनाव भी बड़ा अच्छा था। परिवार में हर व्यक्ति उन पुस्तकों को पढ़ सकता, ऐसा वह साहित्य था।

वे दोनों पढ़ते में समय बिताने लगीं। उस पढ़ने के कारण समाजिक प्रश्नों की ओर उनका झुकाव हो गया। भिन्न-भिन्न सामाजिक प्रश्नों पर वे आपस में चर्चा करने लगीं। कभी-कभी पड़ोस की स्त्रियों को इकट्ठा करके बारी-बारी से उन्हें भी पुस्तकें पढ़कर सुनातीं।

परन्तु पड़ोसिनों का मन उन पुस्तकों में न लगता। वे कहतीं—"जहाँ देखो वहाँ बाभनों की ही बातें लिखी हैं, जैसे बाभन को छोड़कर दुनिया में और दूसरे लोग रहते ही नहीं हैं। यदि लिखना है तो लेखकों

से कहो कि पहिले वे हमारे बारे में लिखें। हमारे घर की और हमारी जाति की बातें लिखें। पर ये बड़े-बड़े लेखक हमारे विषय में जानते ही क्या है ? कौन आता है हमारे घर देखने ? जो भी कलम उठाता है, वह गिरगाँव[1] के ही चक्कर काटता है या पूना की बातें लिखता है, जैसे गिरगाँव और पूना के बाहर कोई दुनिया ही नहीं ! सब बातें पढ़े-लिखे लोगों की लिखी रहती हैं। यदि तुम चाहती हो कि तुम्हारी किताबें सुनें, तो हमें ऐसी किताबें लाकर सुनाओ जिनमें हमारे बारे में लिखा हो और अगर नहीं लिखा है तो उन लेखकों से कहो कि अब लिखें।"

उन दोनों का पड़ोसिनों को पुस्तकें पढ़कर सुनाने का प्रयत्न बेकार हुआ। बाभनों की बातें ही उन में क्यों न लिखी हों, पर नर्मदा को वे अच्छी लगती थीं। रमा तो ब्राह्मण थी ही। उसे दूसरों की बातें शायद समझ में भी न आती।

नर्मदा की यह महत्वाकांक्षा थी कि वह ब्राह्मण सरीखी रहे। इसी लिए वह उन पुस्तकों को बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा करती और उनमें जिन आचार-विचारों का वर्णन होता उनका अनुकरण करने का प्रयत्न करती।

दिन के बाद दिन बीत रहे थे। जहाँ तहाँ इन्फ्लुएन्ज़ा की चर्चा बढ़ रही थी। लड़ाई की अपेक्षा अखबारों में इन्फ्लूएन्ज़ा की चर्चा ही अधिक जोर से हो रही थी।

अब आस-पास की चालों में भी इस बीमारी के केस होने लगे तब सभी के छक्के छूट गये। जो बीमार हो जाता वह फिर उठता न था। हर दिन दरवाजे के सामने से लगातार शव-यात्राएँ जाने लगीं। उन्हें देखकर रमा का हृदय बेचैन हो उठता। नर्मदा भी भय के मारे अधमरी सी हो जाती। सुभद्रा दिन-भर मिल में रहती, इसलिए एक तरह से वह सुख में थी। पर जब मिल के लोग भी बीमार पड़कर मरने लगे और

---

(१) बम्बई का वह मुहल्ला जहाँ प्राय सफेदपोश लोग रहा करते हैं।

उनकी मृत्यु के समाचार मिल में पहुँचने लगे तब मिल में काम करने वालों के कलेजे टूटने लगे।

यह बीमारी छूत की है या नहीं, इस विषय में अभी कोई निर्णय नहीं हो पाया था। परन्तु यह मानकर कि संक्रामक रोग आखिर छूत का ही रोग होता है, जहाँ इस बीमारी से लोग मरते, वहाँ कोई जाता न था।

सब तरफ हाहाकार मच गया था। लड़ाई की बातें करना लोग भूलने लगे थे। किस गाँव में बीमारी कितने जोर से फैली, कहाँ कितने आदमी उसके शिकार हुए, इसी की चर्चा जहाँ-तहाँ होती थी।

इस बीमारी का शिधू के मन पर कोई असर न पड़ा था। इस विषय में वह पूर्णरूप से उदासीन था। उसका सारा ध्यान सिर्फ लड़ाई के फैसले पर केन्द्रित हो गया था। अखबार में आनेवाली लड़ाई की खबरों पर उसका तनिक भी विश्वास न था।

फ्रांस की रण-भूमि पर अमेरिकन फौज के उतरने के बाद लड़ाई का रंग बदलने लगा था। पहिले के मित्र-राष्ट्रों में अब परस्पर मन-मुटाव होने लगा था। विजय की सीमा पर खड़े हुए जर्मनी के पैर भी उखड़ने लगे थे। रूस में स्थापित हुई करेन्स्की की सत्ता का अंत होने के भी आसार नजर आने लगे थे। महायुद्ध से रूस करीब-करीब छूट गया था। तुर्किस्तान में उथल-पुथल मच गई थी। जर्मनी में भी कहीं क्रांति न हो जाए, ऐसी शंका प्रदर्शित की जाने लगी थी। ऐसे आसार निश्चित नजर आने लगे थे कि महायुद्ध के प्रांगण में अमेरिका के कदम रखने का परिणाम मित्र-राष्ट्रों के लिए लाभदायक होगा।

इस एक विषय को छोड़कर शिधू का ध्यान और किसी भी तरफ न था। जब उससे कोई इन्फ्लूएंजा के बारे में बातचीत करता तो वह कहता—"कहाँ की बीमारी लिए बैठे हो ? इस बीमारी मे जो लोग मर रहे हैं वे संयोग से मर रहे हैं। पर वहाँ एक दूसरे की जान के प्यासे जो लोग अकारण खून बहा रहे हैं, उनकी ओर देखो, उनकी खबर लो।

बीमारी से आदमी लाचारी से मरते हैं। डाक्टर लोग उपाय कर ही रहे हैं। इस बीमारी से कोई जिन्दा रह जाता है, कोई मर जाता है। परन्तु लड़ाई के मैदान पर जो मौतें हो रही हैं, उन्हें टालने का कोई उपाय है? वहाँ डाक्टरों की जरूरत नहीं। लड़ाई बन्द होना ही वह उपाय है।

"परन्तु यह लड़ाई बन्द कौन करेगा?" मयेकर ने पूछा।

"यही तो मेरा भी प्रश्न है।" शिधू ओंठ चबाता हुआ बोला—"जानते हो, लड़ाई क्यों बन्द नहीं करते? जिन लोगों ने लड़ाई चलाई है, उन्हें लड़ाई के अनर्थों की आँच नहीं लगी है। मनुष्य कैसे मर रहे हैं, यह भी उन्होंने पूरी तरह से नहीं देखा है। राष्ट्र की प्रतिष्ठा बनी रहे, इसी एक उद्देश्य पर दृष्टि रखकर उन्होंने यह मनुष्य-संहार शुरू किया है। थोड़ा भी विचार न करके दूसरे लोग भी अपनी खुशी से लड़ाई पर जा जाकर मजे से मर रहे हैं। यहाँ इन्फ्लूएंजा का केस हो गया, तो जिस घर में वह केस हुआ है, उस घर के पास भी कोई आदमी नहीं फटकता। परन्तु वहाँ सरकार का हुक्म होते ही लड़ाई की छूत की बीमारी में घुसकर, प्रत्येक मनुष्य को अपनी खुशी से मरना पड़ता है। इन राजनीतिज्ञों को क्यों पीछे रहने देते है? राजनीति के दाँव चलाने के लिये जिन लोगों ने यह बेहिसाब नर-संहार चलाया है, उन्हें कौन सजा दे? एक आदमी जब दूहरे आदमी का खून करता है तो उसे अपराध मानकर खूनी को फाँसी की सजा दी जाती है। उस खून करने में मदद करने वाले को भी वही सजा मिलती है। पर यहाँ एक आदमी हुक्म देता है और दूसरे हजारों मनुष्यों की हत्या कर रहे हैं। ऐसा हुक्म देनेवाले दुष्टों को किस कानून से कौन सी सजा दी जाएगी?"

इतने क्रोध से शिधू बोल रहा था कि सिर्फ मयेकर के मन पर ही नहीं, बल्कि अर्जुन के मन पर भी उसका असर हुए बिना न रहा।

सिपाहीगीरी का अर्जुन को बड़ा अभिमान था। रणभूमि में काम आने से स्वर्ग मिलता है—आदि परम्परागत कल्पनाएँ उसकी रग-रग में

भिन गई थीं। शिधू की बातों का यद्यपि उसके मन पर प्रभाव पड़ा, फिर भी वह बोला—"लड़ाई में अगर मर गये तो स्वर्ग मिलता है न ?"

"चुप रहो, अर्जुन ।" शिधू चिढ़कर चिल्ला पड़ा—"क्या किसी ने स्वर्ग देखा है ? और वह स्वर्ग भी हमें और तुम्हें क्यों मिलेगा ? स्वर्ग प्राप्त हो इसलिए क्या यह लड़ाई हो रही है ? जर्मनी को लन्दन और पेरिस पर अपने झंडे गाड़ने थे, रूसका जार जर्मनी के कैसर को निगल जाना चाहता था, और भी किसी राष्ट्र को किसी दूसरे राष्ट्र का मुल्क अपने अधीन कर लेना था, इसीलिये तो यह लड़ाई शुरू हुई ? स्वार्थी राजनीतिज्ञ पुरुषों ने स्वर्ग का नाम निकाल कर तुम्हारे और हमारे जैसे मूर्खों को लड़ाई पर भेजा । धर्म के नाम पर पादरी लोग भी उपदेश करने लगे, जैसे ये पादरी स्वर्ग के द्वार की ताली लेकर उसके पास ही खड़े थे । चोर और हरामजादे हैं सारे ! राजनीतिज्ञ भी और पादरी भी ! उनके बेटों को लड़ाई पर नहीं जाना पड़ता था । लड़ाई पर गया मनुष्य यदि मर गया तो यहाँ उसके घर का बंटाढार हो जाता है, परिवार का नाश हो जाता है । खेती-किसानी धूल में मिल जाती है, उसके पीछे जो लोग बचे रहते हैं उन्हें खाने के लाले पड़ जाते हैं और उधर वह अभागा स्वर्ग में जाकर किसी अप्सरा के गले में हाथ डाले मजा करता है ? यही न ? कभी किसी ने जिसे देखा नहीं, जिसका अनुभव कभी लिया नहीं, वहाँ से लौटकर वहाँ का अनुभव जिसने कभी हमें बताया नहीं, ऐसे स्वर्ग के काल्पनिक वैभव के लिये एक दूसरे की जान लें ! क्या तुम्हें यह नहीं लगता कि ऐसी हत्यायें कराने वाले चाहे हिन्दू हों या ईसाई, दोनों खून के प्यासे राक्षस हैं । इधर यूरोप में मैंने देखा आकाश की ओर आँखें लगाये पादरी उपदेश करते थे—रिक्रूटिंग कर रहे थे । उन पादरियों से कहना चाहिये कि आप स्वर्ग तशरीफ ले जाइये न ? दूसरों को क्यों उपदेश करते हो ? उस भगवान को क्यों संकट में डालते हो ? वह भगवान आखिर सुने भी किस-किस की ? अंग्रेज पादरियों की या जर्मन पादरियों की ? और ये राजनीतिज्ञ लोग ! गद्दों पर

बैठकर हुक्म देते हैं ? उनसे कहना चाहिए तुम ही चले जाओ न स्वर्ग में ? हमें स्वर्ग में भेजने की तुम इतनी कोशिश क्यों करते हो ? जिन्दा हैं तब तक हमें पेटभर अन्न और लज्जा ढाँकने को वस्त्र तो कम-से-कम मिलने दो। इतने करोड़ों रुपयों की राख कर दी तुमने ! यदि यही रुपये गरीबों को बाँट देते तो कितने लोगों का कल्याण हो जाता ! इन भूखों मरने वालों के लिए, भूखके साथ लड़नेवाले लड़वैयों के लिए क्या किसी ने कभी कोई 'वारफंड' निकाला है—'अवरडे फंड' निकाला है ? कभी किसी ने कोई नाटक अभिनीत किये हैं क्या इन गरीबों के लिए। ऐसा क्रोध आता है, जिन्होने यह लड़ाई शुरू की है, उन्हें तोपों से उड़ा दें। उन्हें मालूम होना चाहिए कि उन्हीं के द्वारा लायी गई इन तोपों से गोले कैसे चलते हैं ? मजे से पड़े हैं घरों में गद्दियों पर लेटे हुए और पड़े-पड़े हुक्म छोड़ रहे हैं। ऐसा लगता है·······"

शिधू को आगे के शब्द नहीं सूझ रहे थे। उनके मस्तक में रक्त चढ़ गया था। वह थरथर काँप रहा था। आँखों से जैसे चिनगारियाँ निकल रही थीं। दोनों मुट्ठियों को उसने कसकर बाँध लिया था कि उसके कारण उसके हाथ की नसें तनकर उभर उठी थीं।

देखते-देखते वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा।

वज्रपात

सभी के मुँह सूख गये। रमा की घबराहट का तो कोई पारावार ही न था। अर्जुन ने समय को पहचाना और बिना घबराये शिधू के मस्तक पर पानी का छिड़काव करना शुरू किया। तब कहीं एक बड़ी लम्बी साँस लेकर वह होश में आया।

सबकी जान में जान आई। परन्तु शिधू को बोलने का जो जोश आया था, वह किसी भी तरह उससे रुकता न था। थोड़ा अच्छा लगते ही पहिले की बातों को लेकर वह जब बोलने लगा, तब अर्जुन बोला—"अरे, हटाओ भी इन लड़ाई की बातों को। सूतक भी दूर हो गया लड़ाई का। अब क्या जरूरत है उन बातों की ?"

"सूतक अभी कैसे दूर होगा ?" शिधू तिलमिलाहट से बोला—"तुम क्यों ठूँठ हो गए। मेरा दिमाग गया, नौकरी गयी, भीख माँगते घूम रहे हैं दर-दर हम। हमारी मौत तक यह सूतक कैसे दूर होगा ? हमारे जीवन को पूरी तरह मिट्टी से मिला दिया है इस लड़ाई ने। तुम और मैं—हम दोनों एक दूसरे को ही देखते हैं। परन्तु हम जैसे कितने ही लोग हमारी नजरों की ओट में धाड़ मारकर रो रहे होंगे। लड़ाई से लौटकर आये कितने ही लोग भूखों मर रहे होंगे। जो लोग लड़ाई से अभी नहीं लौटे हैं, उनके ाल-बच्चों की क्या दुर्दशा हो गई है, इसका पता लगाया है क्या किसी ने ?"

यह देखकर कि शिधू पुनः अपना संतुलन खो रहा है, मयेकर भी बोल उठा—"अनर्थ हुए हैं इसमें शक नहीं, परन्तु उन्हें टालना न तुम्हारे हाथ में है और न हमारे हाथ में है। अब और यह एक बीमारी भी आ धमकी है। पहिले लगा कि सिर्फ जुकाम का बुखार है। पर जब

दो दिन के भीतर ही रोगी मरने लगे, तब नई बीमारी का नाम इनफ्लुएंजा रख दिया। इसलिए इनफ्लुएंजा में जो अब इतने लोग मर रहे हैं, इसके लिए कोई क्या करे ?"

"इसका कोई उपाय नहीं है।" जमीन पर हाथ पीटकर शिधू बोला — "परन्तु उसका उपाय है। कौन इस लड़ाई को बन्द करेगा ?"

"अब आप-ही-आप बंद हो जाएगी यह लड़ाई।" मयेकर बोला— "अब उसके बन्द होने की संभावना पैदा हो गई है। क्या फायदा है हमें इन लड़ाई की बातों से ? वहाँ हमारा हाथ नहीं पहुंचता। परन्तु यह बीमारी हमारे घरों में घुस आई है। नीचे के मंजिले का एक आदमी कल ही तड़ाक-फडाक मर गया। अब किस पर आफत आती है, कौन जाने ? पहिले मंजिल पर एक-दो बीमार पड़े हैं, ऐसा भी सुन रहा हूँ। उन्हीं की फिक्र है हमें। यदि भागकर गाँव जाने की सोचें तो छुट्टी कौन देगा ? और छुट्टियाँ भी कितनी लें ? फिर छुट्टी लेकर खावें क्या ? इस बीमारी के कारण मिल में पहले ही लोग कम हो गए हैं इसलिए एक आदमी को चार-चार आदमियों का काम करना पड़ रहा है। दिल में जरूर आता है कि गाँव चल दें। परन्तु बिना बीमार पड़े छुट्टी नहीं मिल सकती। और इस बीमारी से जो बीमार हो जाता है, वह फिर उठता नहीं। घर में नीलगिरी तेल की बोतलें लाकर रख दी हैं। तुम भी अपने रूमाल को इस तेल से भिगोकर सूँघते रहना। कहते हैं इस बीमारी से बचने का यही एक उपाय है।"

विषयान्तर कर देने का परिणाम अच्छा हुआ। गैलरी में खड़े लोग धीरे-धीरे वहाँ आकर इकट्ठा हो गये और अपने-अपने ढंग से बीमारी के बारे में बातें करने लगे।

सभी के दिल बैठ गये थे। सब यही सोचते थे कि प्लेग से बचने के लिए कम-से-कम टीका निकल गया था। पर इस बीमारी की अभी तक कोई प्रतिबन्धक दवा भी न निकली थी।

एक-एक मंजिल चढ़कर बीमारी ऊपर आ रही थी। मयेकर दि

का बड़ा कच्चा था। यह सोचकर कि नौकरी चली जाए तो हर्ज नहीं, परन्तु इस बीमारी से बचना चाहिए, उसने छुट्टी की दरख्वास्त दे दी और मंजूरी की प्रतीक्षा भी न कर, वह अपने परिवार को लेकर गाँव चल दिया। रमा और सुभद्रा को संकट में छोड़कर गाँव जाना नर्मदा की जान पर आ रहा था, पर वह बेचारी क्या कर सकती थी ?

मिल के लोगों को काम पर रहते समय यदि बुखार आ जाता तो वे एकदम घर चल देते। मजदूरों की अपेक्षा क्लर्कों पर ही इस बीमारी की विशेष कृपा दिखती थी। गिरगाँव में तो हाहाकार मच गया था। हर आदमी को हर दिन का भय लगता था। रमा का मन पहिले ही जला हुआ था। ऊपर से रोज अपनी आँखों के सामने वह शव-यात्राएँ देखती थी। उन शव-यात्राओं के साथ होने वाले सरापा सुनती तो तालियों के हर आघात से उसके कलेजे की धड़कन बढ़ती जाती थी।

नर्मदा के गाँव चल देने के कारण रमा घर में दोपहर-भर अकेली ही रहती थी। सुभद्रा के काम से लौटते तक उसके प्राण आँखों में में समाये रहते। उसकी चाल के कितने ही कमरे खाली हो गये थे। अब तो कोई गैलरी में भी आकर खड़ा नहीं होता था। इस डर से कि किस कमरे से कब रोने की आवाज सुनाई पड़ जाए वह अधमरी-सी हो गयी थी। सहज ही कोई बच्चा रोता तो भी उसका मन हक्का-बक्का हो जाता।

हर दिन उसका खून सूख रहा था। शिधू के ध्यान में यह आ रहा था या नहीं, यह वह न समझ पाती। दुखकी कोई भी बात पति से कहने की हिम्मत न पड़ती थी। घर लौटने पर सुभद्रा एक तरफ गैलरी में खड़ी होकर यदि उससे कानाफूसी करने लगती तो अर्जुन उसे टोक देता उससे बातें न करने देता। सब लोगों के काम पर चले जाने से वह घर में अकेली पड़ जाती थी। इसलिए जब सब लोग काम से लौटकर घर आते तो उनसे बातें करने की उसे इच्छा होती। सुभद्रा से बातें करने लगती तो अर्जुन उसे रोक देता। इस प्रकार सब ओर से उसकी

घुटन हो रही थी। सब यूँ चुपचाप कैसे रह सकते थे ?

शिधू के पास लड़ाई को छोड़कर चर्चा का कोई दूसरा विषय ही न था। कहीं-न-कहीं से अखबार भिड़ाकर वह घर लाता और शाम को काम से लौटने पर उन्हें पढ़ता रहता। यह उसका दैनिक क्रम हो गया था। अखबार अँग्रेजी के होते। इस कारण वह क्या पढ़ता है, इसका किसी को भी पता न चलता। अखबारों में क्या लिखा है यह वह किसी को न बताता। रमा को भी पूछने का भय लगता। लड़ाई की बात निकले और पहिले की तरह ही उसकी स्थिति फिर हो जाए तो ? इस लिए जो उसे पढ़ना है वह पढ़े, पर उसे बोलने नहीं देना चाहिए, यही रमा ने निश्चय किया था। अगर वह खुद लड़ाई की बातें कहने लगता तो उन्हें सुनी-असुनी करके वह सुभद्रा के पास जा बैठती और फिर वह विषय वहीं तक रह जाता।

शाम को घर आने ने के बाद शिधू के घर स्वयं न जाने का और सुभद्रा को भी वहाँ न जाने देने का अर्जुन ने निश्चय कर लिया था। अर्जुन ने सुना था कि घर में पढ़े अखबार के समाचारों को शिधू दूसरे दिन आफिस के लोगों को सुनाता है। उसे लगता उधर आफिस में चाहे जो होता रहे, पर उसके सामने लड़ाई की अब कोई बातें नहीं होनी चाहिए। आफिस के लोगों को लड़ाई की कोई कल्पना न थी। वे अगर कुछ भी कह देते फिर भी चल सकता था। परन्तु उसका विश्वास था कि कुछ भी उड़ान-छू उत्तर देकर वह नहीं छूट सकेगा, इसलिए शिधू के साथ लड़ाई की बातें करना अर्जुन बिल्कुल टाल रहा था।

अर्जुन उसके कमरे में क्यों नहीं आता, इसकी शिधू ने कभी कोई पूछताछ न की। अखबार पढ़ने पर उसका मस्तक भ्रमण में ही तल्लीन हो जाता। कल्पना के चित्रों को जब वह कभी-कभी अपने-आप से ही पुटपुटाने लगता। ऐसे समय उससे कुछ न पूछने की सावधानी रमा बरतती।

और वह स्वयं भी कहाँ इसकी परवाह करता कि उससे कोई पूछे !

उसे यही दुख होता कि उसकी बातें और उसके विचार घर में किसी की भी समझ में न आते थे। लड़ाई में उस समय जो उलट-फेर हो रहा था उसकी ओर देखने का उसका दृष्टि-कोण दूसरों से बिल्कुल भिन्न था। लड़ाई पर जाने का उसे दंड मिला था। लड़ाई में घायल और मृत हुए लोगों को उसने देखा था और इसीलिए रणभूमि के प्रत्यक्ष दर्शन से उसके मन पर जो प्रभाव पड़ा था उसके कारण उसके मुँह से निकलने वाले उदगारों को मिल के कोलाहल में रहने वाले मनुष्य नहीं समझ पाते थे, इसी का उसे दुख होता था।

वैसे देखा जाए तो स्वयं सफेदपोश होने के कारण उसका स्थान गिरगाँव में था। उसके भाई बन्द, जातिवाले और रिश्तेदार आदि गिर-गाँव में रहते थे। पर उसके मजदूर-नगरी में आकर रहने के कारण सफेदपोशों की दृष्टि में वह पतित माना जाता था। वे उसकी कोई खबर न लेते और इसे भी उनकी कोई परवाह न थी।

कभी-कभी उसके सामने यह प्रश्न खड़ा होता कि क्या गिरगाँव में रहने वाले लोग भी मेरे विचारों को समझ सकेंगे? अखबार पढने पर उसे लगता कि मिल के बाबू लोगों की तरह गिरगाँव के विद्वान भी इस विषय में हृदय-शून्य ही हैं। प्रसूता की वेदनाओं को बांझ नहीं समझ सकती, इस कहावत का उसे स्मरण हो आता।

राजनीतिज्ञ लोगों की दृष्टि अस्थिर थी। उसे देखकर शिधू के प्राण बेचैन हो उठते। उसे लगता कि इस लड़ाई का हिन्दुस्तान की राजनीति से कोई अत्यन्त आत्मीयता का सम्बन्ध है। पर यह सम्बन्ध रजनीति के किस क्षेत्र में आता है, इतना समझाने लायक राजनीति का अध्ययन उसने नहीं किया था।

उसका सारा जीवन सरकारी नौकरी में बीता था। सरकारी नौकरों को राजनीति में सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए, इस तरह अन्य नौकरों की तरह उसकी भी वृति थी। पर इस लड़ाई की हर घड़ी बदलने वाली परिस्थिति के कारण लड़ाई में झुलसा हुआ उसका जीव राजनीति की

खिड़की से जग की ओर देखने लगा था।

कुछ भी न बोलकर वह घन्टों विचारों में खोया रहता। उस समय रमा के प्राण बिल्कुल आँखों में आ जाते। क्या सोच रहे हो यह पूछने का भी उसे डर लगता। शायद उस प्रश्न के कारण ही उसकी वृति कहीं भड़क उठे तो ?

बेचारी रमा की बिल्कुल घुटन हो गई थी।

एक दिन ठीक दोपहर को एक विक्टोरिया चाल के सामने आकर रुकी। उस समय रमा अकेली ही घर में थी और गैलरी में खड़ी हुई जैसे-तैसे वक्त काट रही थी। यह देखने के लिए कि गाड़ी में से कौन आया उसने सहज ही नीचे भाँककर देखा और अर्जुन के कन्धे पर बोझ डालकर शिधू को गाड़ी में से उतरता हुआ जब उसने देखा तब उसका कलेजा टूट गया।

शिधू को बड़ा तेज बुखार चढ़ा था। जीना चढ़कर ऊपर आने के श्रम के कारण कमरे में आकर पहुँचते ही वह एकदम बिस्तर पर लेट गया। उसे एकाएक ग्लानि आ गयी थी। बिस्तर खोलकर उसे ठीक से बिछाने का भी अवकाश न मिला।

रमा को मालूम हो गया कि अन्त में इन्फ्लुन्जा की नजर हमारे घर की ओर मुड़ी। अर्जुन का चेहरा बिल्कुल उतर गया था। क्या करे यही वह नहीं समझ पा रहा था। मिल में कोई डाक्टर न था। इसलिए तत्काल दवा देने की भी कोई सुविधा न थी। किस डाक्टर के पास जाऊँ और कैसे जाऊँ ? खैर, पर अभी एकदम कौन-सा उपाय करूँ ? कोंकण होता तो पत्ती की चाय ही बनाकर दे देता। यह सब वह सोच रहा था।

इसी समय रमा बोली—"पहले दौड़कर किसी डाक्टर को ले आओ पर इससे पहले यदि कहीं थोड़ी बर्फ मिले तो भेज देना जिससे मैं सिर पर कम-से-कम पट्टी रख दूँगी।"

इनफ़्लूएन्जा में क्या इलाज किया जाता है, यह वह भी कहाँ जानती थी ? और जानता भी कौन था ? साधारण लोगों को प्राथमिक उपचारों

का ज्ञान देने का सरकार और म्यूनीसिपल्टी ने कोई प्रबन्ध नहीं किया था। इसकी उनके पास कोई योजना न थी। इस बीमारी में जो लोग मरे उसका कारण यह अज्ञान ही था। जहाँ बुखार आते ही इलाज किया गया वहाँ अकसर मृत्यु नहीं हुई।

उसने डाक्टर लाने के लिए कहा सही, पर डाक्टर को फीस कहाँ से दी जाये? यह उसे पहली चिन्ता हुई। शिधू के स्वास्थ्य की अपेक्षा इस चिन्ता से ही अर्जुन के प्राण अधिक व्याकुल हो उठे।

बर्फ लाकर अर्जुन कब चला गया, यह रमा के ध्यान में भी न आया। वैसे वह कोई भेद-भाव न रखता था। पर उस समय रमा को लगा कि बर्फ लाने के लिए मुझे उसे पैसे देने चाहिए थे।

डाक्टर ने आकर शिधू की जाँच की। दवा लिख दी। अर्जुन जा कर दवा ले आया। दवा देना शुरु हो गया।

अर्जुन से यह पूछना कि डाक्टर की फीस का क्या हुआ बार-बार रमा की जिव्हा पर आता था। दवा के लिए भी अर्जुन ने उससे पैसे न माँगे। दवा की कीमत क्या होती है, इसकी उसे कुछ कल्पना न थी। पड़ोसियों से सुनकर उसे कुछ अन्दाज था कि हर बार की दवा को कम-से-कम आठ-बारह आने लगते हैं।

और डाक्टर कितनी फीस लेता है?

रमा का मन जैसे किसी ने मसल डाला हो, ऐसा हो गया था। जब तक कोई महान संकट नहीं आया है, तब तक जो प्रसंग उपस्थित है उस सामना करने और अर्जुन से कुछ भी न पूछने का निश्चय करके वह शिधू की सेवा-सुश्रूषा करने लगी।

पुलटिस से सेंकने के लिए जब अर्जुन ने उसे अलसी लाकर दी तब उसकी आँखें एकदम छलछला उठीं। कमरे के बाहर जाते समय अर्जुन ने भी आँखें पोंछी, ऐसा उसे आभास हुआ।

रमा का कलेजा धक-से हो गया।

उधारी

रमा को वह रात काल-रात जैसी लगी। अर्जुन और सुभद्रा दोनों शिधू के पैताने बैठे थे।

ज्वर से शिधू का बदन लगातार जल रहा था। तीनों उसके मस्तक पर बारी-बारी से बर्फ को पट्टी रख रहे थे। ज्वर कितना चढ़ा है यह देखने का साधन उस चाल में किसी के पास न था। थर्मामीटर खरीदने की ताकत उन गरीबों के पास कहाँ थी? सिर्फ बदन को बार-बार हाथ लगाकर ज्वर कुछ बढ़ा या घटा, इसका अंदाज अर्जुन लगा रहा था और अपने अंदाज के अनुसार बीमार का तापमान नोट करने की कोशिश कर रहा था।

सभी की आँखें नींद से अलसा गयी थीं। अर्जुन ने रमा और सुभद्रा से थोड़ी देर सो जाने के लिए कहा। पर उसके यह स्वीकार करने पर ही कि जब उसे नींद आने लगेगी, तब वह उन दोनों में से किसी एक को उठा देगा, वे दोनों एक ओर टाट बिछाकर उस पर सो गयीं।

ज्वर लगातार सनसना रहा था और उस ज्वर के आवेश में शिधू अनाप-सनाप बक रहा था। वह जोर-से चिल्लाता न था अथवा न कोई गड़बड़ ही करता था, सिर्फ अपने आपसे ही कुछ पुटपुटाता हुआ बोल रहा था और विषय था लड़ाई का।

अर्जुन बिल्कुल बेचैन हो गया था। सुबह उठने पर उन दोनों को मिल जाये बगैर कोई चारा न था। जैसे-तैसे आधा दिन तो कम-से-कम बिना छुट्टी के ही निकाले। परन्तु आगे छुट्टी कैसे मिलेगी, यह कठिनाई उपस्थित हुई। कितनी छुट्टी ली जाए यह भी एक सवाल था। मिल के बहुत से लोग बीमार पड़ जाने कारण कोई जब तक स्वयं

बीमार न पड़ जाता तब तक किसी को छुट्टी नहीं दी जाती थी। ये विचार अर्जुन के दिमाग में घूम रहे थे।

थोड़ी देर के बाद उसने सुभद्रा को जगाया। बर्फ प्रायः समाप्त हो रही थी। उतनी रात को कहीं बर्फ मिलना संभव नहीं था। इसलिए बर्फ के पानी में कपड़ा भिगो-भिगोकर उसकी पट्टी शिधू के मस्तक पर रखने को अर्जुन ने सुभद्रा से कहा। शिधू अनाप-सनाप बोल रहा था इसलिए सुभद्रा के छक्के छूटने लगे। सुभद्रा से यह कहकर कि अगर अधिक बड़बड़ाने लगे, तो मुझे जगा देना अर्जुन वहीं बगल में सो गया।

शारीरिक और मानसिक थकावट के कारण रमा को गहरी नींद लग गयी थी। भोर होते तक सुभद्रा ने उसे नहीं जगाया। मिल में जाने से पहिले रोटी बनाना यदि आवश्यक न होता तो वह रमा को न जगाती। पर रमा को रोटी बनाना था इसलिए उसे जगाना ही पड़ा।

रमा ने जगाकर देखा तो शिधू के ज्वर में कोई फर्क न हुआ था। यह देखकर कि सुभद्रा को अब काम पर आना पड़ेगा, वह अस्वस्थ हो गयी। डाक्टर को कौन बुलाकर लाएगा? यदि बर्फ की जरूरत हो तो कौन ला देगा? ये प्रश्न रमा के दिमाग में उठ रहे थे। वह बेचैन हो रही थीं। उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। शिधू को अकेला छोड़कर कहीं बाहर जाना उसके लिये संभव ही न था। और अगर जाना भी चाहती तो कहाँ जाना है, यह वह जानती भी न थी।

इस समय उसे लगातार नर्मदा की याद आ रही थी। वह होती, तो उसे इस समय बड़ी मदद मिलती। पर रमा को यह भी लगता, न जाने कहीं वह भी बीमार पड़ जाती तो? अथवा मयेकर ही बीमार पड़ जाता तो? कम-से-कम सासजी ही इस समय होतीं। पर उनसे कोई मदद मिलती, इसका भी उसे कहां विश्वास था?

पानी की पट्टी वह लगातार शिधू के मस्तक पर रख रही थी। पट्टी जब गरम हो जाती तो वह हटा देनी पड़ती।

आखिर उजेला हुआ और अर्जुन भी जागा। वह बोला—"किसी

भी तरह आज मिल से छुट्टी लेकर आता हूँ। आते समय डाक्टर के पास भी हो आऊँगा। यदि वे कहें कि पुन: जांच की जरूरत है, तो उन्हें साथ ही ले आऊँगा।"

रमा को हिम्मत आयी। शिधू को दवा पिलाने के लिए भी वह डरती थी। दाँत अच्छी तरह खोलकर दवा भी मुंह में नहीं डाली जा सकती थी। अर्जुन से ही यह हो सकता था। इसीलिए मिल जाने से पहिले वह शिधू को दवा पिला गया।

उन दोनों के जाने पर रमा को घर जैसे खाने को दौड़ने लगा। इससे पहिले वह घर में अकेली रहती थी। उस समय घर में कोई न होता। फिर भी उस समय उसे भय न लगता। परन्तु इस समय शिधू को बिस्तर पर बीमार पड़ा देख इस भय से कि अब क्या होगा, उसका प्राण व्याकुल हो उठे।

जब डाक्टर शिधू की जाँच कर रहा था, तब रमा की नजर लगातार डाक्टर के चेहरे पर लगी हुई थी। जाँच पूरी होते हो डाक्टर ने अर्जुन को बाहर गैलरी में बुलाया। रमा का कलेजा धक् से हो गया। रमा कोई पता न चले इसलिए डाक्टर से बातें करते समय अर्जुन अपने होठों पर यूँ ही मुस्कान फैलाये हुए था। जब डाक्टर चल दिया, तब शिधू पर नजर रखने के लिए कहकर, अर्जुन दवा लाने घर से बाहर निकल पड़ा। जाने से पहिले उसने अपने कमरे में जाकर अपना ट्रंक खोला। तब रमा ने अनुमान लगाया कि शायद कुछ और दवायें भी खरीदनी होगीं इसलिए पैसों की जरूरत पड़ी ोगी।

अर्जुन जब दवा लेकर लौटा तब उसका उतरा हुआ चेहरा देखकर रमा ने पूछा—"क्या हुआ ? कोई डर की बात तो नहीं ?"

"नहीं वैसे डर की कोई बात नहीं।"—अर्जुन रोनी आवाज में बोला—"पर बड़ी मुश्किल आ गयी है। डाक्टर की दवा की कीमत दो दिन बाद देने से भी काम चल सकता है। पर डाक्टर ने कुछ ऐसी दवाएँ भी लिख दीं हैं जिन्हें दवा-फरोश की दूकान से खरीदना होगा।

जब तक मेरे पास पैसे थे मैंने कुछ नहीं कहा। डाक्टर की फीस, जो यहाँ बहुत अधिक है, मैं देता रहा। उसके दवाखाने से जो दवा लाता उनके दाम भी चुकाता गया। पर अब मेरे पास पैसे बिल्कुल नहीं बचे। इसलिए सवाल यह खड़ा हो गया है कि बाजार से ये दूसरी दवायें कैसे लायें। मैं तुम से यह बातें कहना नहीं चाहता था। पर……" बोलते-बोलते एकदम उसका कंठ रुँध गया।

रमा के पास भी क्या रखा था? पूरी तनख्वाह लाकर शिधू उसी को दे देता था। अगर उसे एक पैसे की भी जरूरत होती तो वह रमा से ही माँग लेता। इसीलिए स्वयं शिधू के पास अलग से कुछ हो, यह संभव ही न था। रमा ने अपना ट्रंक खोलकर देखा। उसमें सिर्फ एक रुपया नौ आने थे। उन्हें निकालकर अर्जुन को देती हुई वह बोली—"क्या इतने से काम चल जाएगा?"

अर्जुन चुप रहा। दवायें कीमती थीं। क्या कहे यह उसे सूझ नहीं पड़ता था। रमा के ध्यान में वह आ गया। वह इधर-उधर देखने लगी। जो कुछ भी छोटे मोटे जेवर थे, बेकारी के दिनों में वे सब पहिले ही बिक चुके थे। सिर्फ पतली-सी सोने की एक जंजीर गले में बच रही थी। उसे चट से उतारकर उसने वह अर्जुन के हाथ में दे दी।

अर्जुन का हृदय उमड़ उठा। उस छोटे-से जेवर को हाथ में लिये वह उसी स्थिति में गर्दन मोड़कर घर से बाहर चल दिया।

उसके जाने के बाद रमा ने पुनः अपना ट्रंक खोला और उसका कोना-कोना खोजने लगी। जितने पैसे बचत, के थे वे, सब निकल चुके थे, ट्रंक की एक दरार में फँसी हुई उसे एक चवन्नी दिखाई दी। उस समय उसे इतनी खुशी हुई कि उस परिस्थिति में भी उसे हँसी आ गयी।

दवायें लेकर अर्जुन लौटा। डाक्टर की सलाह के अनुसार उसने शिधू की छाती पर एन्टी-फ्लोजेसटीन का लेप लगाया। अब अलसी पुल-टिस के सेंकने की जरूरत न रही थी।

जो पैसे बच रहे थे वे कोई अधिक न थे। उन्हें जब अर्जुन लौटाने

लगा, तब रमा बोली—"अपने पास ही रखे रहो। अभी और भी तो जरूरत पड़ेगी न।"

"हाँ। यह मुश्किल जरूर है।" अर्जुन बोला—"अगर फिर ज़रूरत पड़ गयी, तो क्या करूँगा ? हमारी पहचान के जो दो-चार लोग यहाँ हैं, वे भी हमारी तरह ही दरिद्री हैं। फिर उधार पैसे माँगें किससे ? यदि फिर से डाक्टर को लाना पड़ा, तो मैं उसकी फीस कहाँ से दूँगा, इसी फिक्र में पड़ा हूँ मैं। अच्छा हुआ जो साहब ने मुझे कम-से-कम छुट्टी दे दी। लगता है सुभद्रा को छुट्टी नहीं मिली और नहीं मिली यही अच्छा हुआ। इस चिन्ता से कम-से-कम वह तो दूर रहेगी। डाक्टर की फीस का क्या होगा, यही प्रश्न है।"

बेचारी रमा भी क्या कर सकती थी ? उसे लगा जैसे उस पर आसमान ही टूट पड़ा है। यदि जाकर किसी के सामने हाथ फैलाना चाहे तो समूची बम्बई में उसके परिचय की केवल उसकी एक चचेरी बहिन थी। यद्यपि उसे यह पता था कि वह कहाँ रहती है पर उसके पास जावे या न जावे, यही एक प्रश्न उसके सामने खड़ा हो गया था। वह कुछ देगी या नहीं इस प्रश्न की अपेक्षा यदि वह कुछ न दे तो मेरे मन को क्या लगेगा, इसी का वह विचार कर रही थी।

दोपहर को सुभद्रा जब घर आई तो उसे देखकर रमा को आश्चर्य हुआ। उसने जैसे-तैसे आधे दिन की छुट्टी ले ली थी।

यह देखकर कि सुभद्रा घर में है, रमा जी कड़ा करके अपनी चचेरी बहिन के घर गिरगाँव गयी। उसकी बहिन की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी थी। उसके पति को दो सौ रुपये माहवार वेतन मिलता था। इसलिए उसके रहने का घर भी अच्छा बड़ा था।

वहाँ जाने पर रमा को बड़ा संकोच हुआ। बहिन को सामने देखते ही उसे अपने आप पर बड़ी शर्म आई। वह जो साड़ी पहिने थी उससे रमा ने अपनी साड़ी की तुलना की। बहिन की नौकरानी की साड़ी भी रमा की साड़ी से लाख दर्जे अच्छी थी।

बहिन ने उसे पहचान लिया यही रमा ने अपना बड़ा भाग्य समझा। उस पर जो संकट था वह उसने अपनी बहिन को कह सुनाया। उससे कितने रुपये उधार माँगे इसका भी वह अपने मन में कोई निर्णय नहीं कर पा रही थी। वह बिल्कुल गोल-पोल बोल रही थी, पर उधार माँग रही थी।

रमा की बात सुनती हुई उसकी बहिन गंभीर चेहरा बनाकर बिल्कुल मौन बैठी थी। जब रमा सब कह चुकी तब उसकी बहिन बोली—"बड़ा कठिन समय आ गया है। उस जगह तुम कैसे रहती होगी, क्या करती होगी, यही मैं नहीं समझ पाती। उधारी की बात क्यों करती हो?"

रमा का चेहरा खिल उठा। बहिन कह रही थी—"तुम्हारी मुश्किल को आसान करने में यदि मैं भी थोड़ा हाथ बँटा सकूँ तो उससे मुझे खुशी ही होगी। हमारे घर में भी बड़ा विचित्र हाल है। हमारे "इन का" स्वभाव तुम नहीं जानतीं। अगर मैं चार पैसे की वेणी खरीदना चाहूँ तो वे चार पैसे मुझे उन्हीं से माँगने पड़ते हैं। मेरे पास एक पैसा भी नहीं रहता। उधर गाँव में घर बन रहा है। वहाँ सिर्फ रुपये भेजने पड़ते हों यह बात नहीं, बल्कि हर शनिवार-रविवार को बोट से गाँव तक आना-जाना भी हो रहा है। फिर आजकल आफिस में उनके पहिले साहब की बदली हो गयी है और नया साहब उनकी नाक में दम कर रहा है। दिन भर उन्हें तंग करता रहता है। वे आफिस से झल्लाये हुए ही लौटते हैं और वहाँ का सारा गुस्सा मुझ पर उतारते हैं। इसके बावजूद आज शाम को उनके आफिस से लौटने पर मैं तुम्हारा हाल उनसे कहूँगी और फिर हम देखेंगे कि तुम्हारे लिए हम क्या कर सकते हैं। तुम कल इसी वक्त फिर आ जाना।"

रमा लौट पड़ी। कल की आशा मन में दबाये वह घर आयी। सारा हाल सुनकर अर्जुन को भी अच्छा लगा। फिर भी वह बोला—"इन धनियों का कोई भरोसा नहीं। मैंने एक उपाय खोज निकाला है,

पर उसके लिए तुम्हारी अनुमति चाहिए।"

अपना इरादा रमा से कहना उसकी जान पर आ रहा था। पर जी कड़ाकर के वह बोला—"जो जेवर बेचा था उसमें के कुछ रुपये बचे हैं। उनमें के कुछ रुपये दवा के लिए रखकर बाकी रुपयों से एक पीपा मिट्टी का तेल खरीद लेता हूँ। उस तेल को फुटकर बेचूँगा। यदि पूरा बिक गया तो आठ-बारह आने सहज बचेंगे।" रमा की आँखें एकदम सजल हो उठीं। अर्जुन कह रहा था—"तुम मेरी साहूकार हो। इस धंधे में जो भी लाभ होगा, लाकर तुम्हें सौंप दूँगा और मेरी मजदूरी के बदले मुझे शाबासी दे देना।"

उसके उत्तर की अपेक्षा न कर अर्जुन चल दिया।

दोनों शिधू की सुश्रुषा कर रही थीं। अभी तक बुखार तो कम हुआ ही न था पर वह होश में भी न आया था। साँस बड़े जोर-जोर से चल रही थी। यह देखकर दोनों घबरा उठी थीं।

शाम को अर्जुन कंधे पर पीपा लिए घर लौटा तो उसके चेहरे पर हँसी चमक रही थी। उस दिन उसने पूरा एक रुपया कमाया था। लड़ाई से लौटा हुआ एक ठूंठा आदमी तेल बेच रहा है, यह देखकर लोग उससे जानबूझ कर तेल खरीदते थे। अपनी सिपाहीगीरी पर अर्जुन को बड़ा नाज था। अपनी पलटनिया पोशाक वह कभी नहीं छोड़ता था। इस समय वही पोशाक उसके बड़े काम आई।

अर्जुन के सामने फिर एक समस्या खड़ी हो गयी। दूसरे दिन डाक्टर को बुलाने की जरूरत थी। पर बुलावे कैसे? यदि डाक्टर को फीस देता है तो तेल खरीदने के लिए पैसे नहीं बचते थे और दूसरे दिन डाक्टर को बुलाना तो अत्यन्त आवश्यक था।

रमा को अपनी बहिन से आशा थी।

दूसरे दिन सुबह डाक्टर आये। उस समय अर्जुन ने उनकी फीस दे दी। डाक्टर ने शिधू की जाँच करके बड़ी आशा दिखायी। उसने कहा कि केस कोई उतना बुरा नहीं है। रोगी बच जाएगा। तब सभी

को बड़ी हिम्मत आई।

सुभद्रा को उस दिन छुट्टी नहीं मिली। इसलिए अर्जुन शिशू के पास बैठा और रमा दोपहर को अपनी बहिन के घर गयी। रमा को देखते ही उसकी बहिन हँसती हुई बोली—"तुम्हारा बड़ा भाग्य है, रमा! एक तो पहिले ही उनका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा है। ऊपर से आजकल उन्हें आफिस में बहुत तंग किया जा रहा है। परन्तु मैंने जब उन्हें तुम्हारा हाल बताया तो उनकी आँखों में आँसू भर आये।" इतना कहकर उसने दो रुपये निकालकर रमा के हाथ में रख दिये और बोली—"ये लो। कुछ-न-कुछ काम पड़ ही जाएँगे।"

वह लगातार अपने पति के स्वभाव का वर्णन कर रही थी। रमा भीतर-ही-भीतर जल रही थी। सिर्फ दो ही रुपये? दो रुपयों में क्या धूप जलेगी? उसे लगा डाक्टर को सुबह जो फीस दी थी कम-से-कम उसकी ही भरपाई हो जाती!

उसकी बहिन बोली—"ये रुपये उधार नहीं दिये हैं भला! ऐसा उन्होंने साफ-साफ कह दिया है। वे बोले—अपनी बहिन से कह देना कि हम कोई साहूकार थोड़े ही हैं जो किसी को कुछ उधार दें—और मुझे भी जता दिया है कि मैं तुम से ये रुपये वापिस न मागूँ। उन्होंने यह भी कहा कि अब माँगने फिर न आना। इससे अधिक मैं कुछ न दे सकूँगा।"

रमा को लगा वे दो रुपये उसके मुँह पर फेंक दूँ। पर प्रसंग की ओर ध्यान देकर उसने सारा क्रोध पी लिया और बोली—"बड़े उपकार किये तुमने, जीजी। तुम्हारे इस उपकार से कैसे उऋण होऊँगी?"

भीतर से रसोइया आया और बोला—"बाई साहब, चाय तैयार है।"

बहिन ने रमा से कहा—"अच्छा, तो अब तुम जाओ। ट्राम पर चढ़ते-उतरते वक्त जरा सावधानी रखना, जाओ।" ऐसा कहकर वह चाय पीने के लिये भीतर चल दी। एक प्याली चाय रमा को देने की

भी उसने परवाह न की।

घर आकर रमा ने वे दो रुपये अर्जुन के हवाले किये और वहाँ का सारा हाल कह सुनाया। वह बोला—"ये धनी लोग बड़े दरिद्री होते हैं। खैर, इस समय जो मिले हैं उतने ही सही। तेल खरीदने के लिए दो रुपयों की ही ज़रूरत थी। एक-दो दिन में हम भी धनी हो जाएँगे। कोई चिन्ता न करो, भाभी! भगवान ऊपर से हमें देख रहा है।"

रमा के सामने प्रश्न खड़ा हुआ—सचमुच क्या भगवान हमें ऊपर से देख रहा है।

जीवन के लिए संघर्ष

चौथे दिन से शिधू के स्वास्थ्य में सुधार होने लगा।

डाक्टर की फीस और दवा के लिए पैसे कहां से लाएँ, इसकी अर्जुन को रोज चिन्ता लगी रहती। मिट्टी का तेल बेचकर वह रोज कम-से-कम एक रुपया कमा लेता था। परन्तु उतनी कमाई से काम न चलता। रमा को कोई पता न देकर उसने सुभद्रा का एक जेवर बेचा और कहीं से रुपये ले आया और इस तरह अपना खर्च जारी रखा।

डाक्टर की फीस और दवा के लिए रुपये कहाँ से आते हैं इसके बारे में अर्जुन से कुछ पूछने की रमा को हिम्मत न पड़ती। अर्जुन किसी न किसी तरह से पैसे जुटा रहा है, यह वह देख रही थी। तेल बेचकर इतने रुपये जुटाना सम्भव न था, यह भी वह जानती थी। पर उपकारों के बोझ के तले दबकर स्वस्थ बैठे रहने के सिवा वह और कुछ भी न कर सकती थी।

और ऐसे मनुष्य को हल्की जाति का कहकर मेरी सास उसे मुझसे दूर करना चाहती थी! यह भी अच्छा ही है जो वह इस समय यहाँ नहीं है। इस विचार से रमा को खुशी हुई।

शिधू को निमोनिया हो गया था और उसके एक फेफड़े पर उसका असर होने लगा था। पर डाक्टर ने उसे चिन्ता-जनक नहीं बताया। ज्वर धीरे-धीरे कम होने लगा था, पर थकावट और कमजोरी उसे बहुत महसूस होने लगी थी। बोलने की भी उसमें ताकत न रह गयी थी। उस बीमारी की हालत में भी वह समाचार-पत्र पढ़ने के लिए माँगता। और यदि वह उसे न दिये जाते तो क्रोध में आकर दवा पीने में भी आनाकानी करने लगता। उसका यह क्रोध किस तरह शान्त किया

जाए यह अर्जुन अच्छी तरह जानता था। कुछ भी हो, पर उसे समाचार पत्र न पढ़ने देने का अर्जुन ने पक्का निश्चय कर लिया था।

अर्जुन की छुट्टी समाप्त हो गयी और शिधू के पास अकेली बैठने का मौका रमा पर आया। शाम को मिल से लौटते ही अर्जुन तेल बेचने चल देता और रात को करीब दस बजे तक लौटता। बेचारी रमा और सुभद्रा एक दूसरा का मुँह ताकती हुई चुपचाप बैठी रहतीं। पड़ोस की नर्मदा का गांव चला जाना दोनों को बड़ा अखर रहा था।

शिधू का ज्वर अब करीब-करीब उतर गया। पर बिस्तर से उठ कर बैठने की ताकत अभी उनमें न थी। बुखार उतरने के बाद उसे कौन-कौन सी दवायें दी जाएँ इसकी एक सूची डाक्टर ने अर्जुन को दे दी थी। उन दवाओं को खरीदने के लिए अर्जुन ने रमा के अनजाने सुभद्रा का एक दूसरा जेवर बेचा।

उस जेवर को सुभद्रा रोज पहिनती थी। जब रमा के ध्यान में आया कि सुभद्रा उस ज़ेवर को अब नहीं पहिनती तब उसने सहज ही उस उसके बारे में पूछा। सुभद्रा घबरा उठी। कुछ भी उड़ता हुआ उत्तर देकर रमा को सन्तोष देने की कोशिश की, परन्तु रमा का समधान न हुआ। रमा जब बिल्कुल पीछे ही पड़ गयी तब उसने सच बात बता दी।

रमा को बड़ा धक्का लगा। यह उपकार बेजोड़ था। रमा ने सोचा—हर माह दो सौ रुपये की आमदनी वाली अपनी बहिन सिर्फ दो रुपये दे, उन्हें देते समय दान-वीरता का बड़ा रोब दिखाया और फिर माँगने के लिए कभी न जाने की सख्त ताकीद भी दी! और इधर ये नीच जाति के लोग अपना सर्वस्व बेचकर मेरे पति के इलाज का प्रबन्ध करें! इस विचार से उसका हृदय उमड़ उठा।

कितने ये उपकार? उपकार पर उपकार की तहें चढ़ रही थीं। रमा का हृदय बिल्कुल व्याकुल हो उठा। किसके सामने अपना हृदय खोल कर दिखाऊँ? किस के पास जाकर यह भार हल्ला करूँ? शिधू की वर्तमान स्थिति में उससे यह बात कहना सम्भव ही न था।

अर्जुन को एक तरफ ले जाकर जब उसने पूछा, तब क्रोध में आकर वह सुभद्रा की खबर लेने उठ पड़ा। उसे शान्त करते-करते रमा की नाक में दम आ गया। जब उसे यह धमकी दी कि बात शिधू के कान में पहुँच जाएगी और इससे कष्ट होंगे तब कहीं वह शान्त हुआ।

धीरे-धीरे शिधू उठकर बैठने लगा। ठन्डे दिमाग से बातें करने लगा। बातें करने के लिए रमा को छोड़कर और कौन था? और रमा भी उससे क्या बातें करतीं? पुरानी बातें निकालती तो कहीं-न-कहीं लड़ाई का धागा निकल ही पड़ता और फिर शिधू को रोकना बड़ा कठिन हो जाता।

इन सब बातों को सँभालते-सँभालते रमा का जी बिल्कुल पस्त हो गया। शिधू की तनख्वाह न होने से हाथ खाली था। बदन के कपड़े फट गये थे। उनमें पैबन्द भी आखिर कितने लगाये जाते? यह तो अच्छा था। फिर भी इज्जत तो ढाँकनी ही चाहिए थी। गैलरी में जाकर खड़े रहने की भी उसे शर्म आने लगी। नयी साड़ी खरीदने के लिए क्या वह अर्जुन से पैसे मांगे?

क्या करे यह उसे सूझ न पड़ता। मालिक मकान तथा दूकानदार आकर रोज तकाजा करते। रोज आकर दरवाजे पर धरना देकर बैठते। शिधू जब तक बिस्तर पर पड़ा था, तब तक इन लोगों को जैसे-तैसे समझा-बुझाकर लौटा देती। जब शिधू उठकर कमरे में टहलने लगा तो स्वस्थ हुआ देखकर दूकानदार ने फिर तकाजा करना शुरू किया। अर्जुन से इस विषय में कुछ कहने की उसे हिम्मत न होती थी। सुभद्रा सारे दिन मिल में रहती इसलिए उसे इसका पता न चलता।

यह देखकर कि तकाजे शुरू हो गये हैं शिधू अपने आप काम पर जाने का हठ करने लगा। अभी तक उसमें पुरी ताकत नहीं आयी थी। अर्जुन उसे काम पर न जाने देता। जब शिधू को यह मालूम हुआ कि उसके लिए अर्जुन रोज फेरी लगाकर तेल बेचता है तब उस का हृदय फट पड़ा। वह सोचने लगा, अब इस मनुष्य के और कितने

उपकार लूँ ? प्रत्यक्ष जन्मदात्री मां भी परायी हो गयी, यहां से चली गयी और यह हल्की जाति का आदमी, जिसे हम कभी अपने पास भी नहीं आने देते थे, जब गाँव में था तब जिसकी हमने कभी पूछताछ भी न की, जिसके बारे में हमने कभी कोई दिलचस्पी न दिखायी । लड़ाई पर भेंट हो जाने से विदेश में मुलाकात हो जाने से जिससे स्नेह जोड़ा, वहाँ वह विपत्ति आयी, वह था इसीलिए मैं यहाँ जिन्दा लौटा, वह था इसी लिए आज ये दिन देखे, और अब तो वह ठूँठे हाथ से मेरे लिए तेल बेच रहा है ? मेरे लिए घर-घर चक्कर काट रहा है । मैं उसके इन उपकारों का बदला कैसे चुकाऊँगा ? ऐसा लगता है कि मेरी स्मृति जाती रही थी, वही अच्छा था । उसके लौट आने से आखिर लाभ ही क्या हुआ ? याद लौट आने से ही मैं यह चुभन महसूस करने लगा । इसीलिए मन व्याकुल हो रहा है । क्या करूँ, कुछ भी नहीं सूझ पड़ रहा है । यदि उससे कहूँ कि तेल बेचने न जाया कर, तो यह गृहस्थी कैसे चलेगी ? और ये लोग मुझे काम पर जाने से भी रोक रहे हैं । काम पर न जाऊँ तो करूँ क्या ? वहाँ रोज मेरी तनख्वाह जो कट रही है । आमदनी और खर्च का मेल कैसे होगा ? कैसे राह निकलेगी इस कठिनाई से ?

रमा का मन भी द्विविधा में पड़ा था । वैसे देखा जाए तो शिधू का स्वास्थ्य अब बहुत कुछ सुधर गया था, परन्तु मिल तक पैदल जाने की ताकत उसमें न आई थी । अर्जुन बोला—"यदि आफिस जाना ही चाहते हो तो तांगा करके जाओ । शाम को धीरे-धीरे पैदल चले आना । मिल का कोई भी आदमी तुम्हें घर तक पहुँचने के लिए तैयार हो जायगा । मैं तुम्हारे साथ धीरे-धीरे नहीं आ सकूँगा क्योंकि मुझे यहाँ आते ही पीपा उठाकर तेल बेचने के लिए फेरी लगानी चाहिए ।"

तेल बेचने के लिए जाना अर्जुन के लिए किसी कर्मठ ब्राह्मण की संध्या-पूजा की तरह ही आवश्यक हो गया था ।

दूसरे दिन तांगे में बैठकर शिधू आफिस गया । घर में रमा अकेली रह गयी थी वह बेचैन हो उठी थी । तकाजे वालों से पिन्ड छुड़ाने के

जाने के बाद एकदम पेंशन मिलना शुरू हो जाता है। यह क्या कोई कम बात है ? अभी इतना जीवन सामने पड़ा है—जिन्दगी भर पेंशन तो मिलती रहेगी न ?"

"प्राणों का मोल क्या पैसों से चुकता है ?"—शिधूँ झुँझलाकर बोला—"सरकार तुम पर कोई उपकार नहीं कर रही है ! रोज मनुष्यों के प्राण लिये जा रहे हैं। हजारों मनुष्य लूले, लंगड़े और अंधे हो रहे हैं। क्या दस-पाँच रुपयों के लिए प्राणों का बलिदान कर दें ? न जाने ये बातें हमारे दिमाग में क्यों नहीं आतीं ?"

"पर सरकार को आखिर करना क्या चाहिए ? इसके बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ?"—अर्जुन ने पूछा।

"सरकार को क्या करना चाहिए ? नहीं, सरकार को क्या नहीं करना चाहिए, यह सोच रहा हूँ मैं। क्या जरूरत थी इस लड़ाई की ? कौन सा काम रुक गया गया था हमारा इस लड़ाई के बिना ? ऐसी क्या आँच लग गई थी हिन्दुस्तान को कि हम हिन्दुस्तानियों को विदेश में ले जाकर मारें ? और इसका बदला भी हमें क्या मिलेगा ? कितने ही आदमी जख्मी हो गये, कितने ही आदमी अपने प्राणों से हाथ धो बैठे, कितने ही घर वीरान हो गये ? सफेदपोशों के वीरान नहीं हुए। इसीलिए सफेदपोश विद्वान राजनैतिक सुधार की किश्तों का विचार कर रहे हैं। इन सुधारों से मजदूरों और किसानों की भी कुछ भलाई होगी या नहीं, क्या इसे भी कोई सोच रहा है ? राज्य-संविधान बना रहे हैं। इस विषय में चर्चाएँ हो रही हैं। परन्तु जिनका सर्वनाश हो गया है इस लड़ाई में, उन मजदूरों और किसानों का उन चर्चाओं में कौन विचार कर रहा है ? असल में इन लोगों में तीव्र असंतोष फैलना चाहिए। प्रत्यक्ष हानि इन लोगों की ही हुई है। जवान किसानों को उनके उनके खेतों में से खींच कर विदेश ले गये और वहाँ गोलियाँ दागकर उनके प्राण ले लिये ! नवजवानों की एक पूरी पीढी ही नष्ट हो गई ! कुतेल अमारा के घेरे में फँसा हुआ एक भी मनुष्य नही लौटा था, यह तो तुम्हें याद है न ?"

जनरल टाऊनसैन्ड की मूर्खता के कारण किनने आदमी प्राणों से हाथ धो बैठे ? इसके लिए कौन जिम्मेवार है ? एक मनुष्य का अंदाज चूक जाए और उसके परिणाम स्वरूप हजारों मनुष्यों के प्राण चले जायें, ऐसी बेअंदाज की यह लड़ाई अभी तक बन्द क्यों नहीं करते ? सुनता हूँ अभी तक रँगरूट भरती हो रहे हैं। क्यों मरने जा रहे हैं ये लोग वहाँ ? भूखों पेट यहीं क्यों नहीं मर जाते ?"

यह देखकर कि शिधू के बोलने का स्वर ऊँचा चढ़ रहा है, अर्जुन ने विषयांतर करने के लिए बीच ही में मिल की बातें छेड़ दी। फिर भी मस्तक पर चढ़ा शिधू का खून नीचे न उतरता था। वह बोला—"और यह दूसरी लड़ाई यहाँ चल रही है ! बिना तोपों की, बिना गोलों की ! मिल की मशीनों में पीस-पीसकर मार रहे हैं लाखों लोगों को, पर किसी को कोई परवाह है क्या इसकी ? वारफंड शुरू कर दिया है। हर मिल वाला उसके जोर पर मनमाना शोषण कर रहा है गरीबों का। मजदूरों को छुट्टियाँ नहीं, उन लोगों के लिए डाक्टर नहीं, पीने को उन्हें ठीक से पानी तक नहीं मिलता। सुबह से शाम तक उन्हें जैसे जेल में ठूँस दिया हो ! कोई अपने बाल-बच्चों तक को नहीं पहचानता। लड़ाई शुरू होने के बाद से पाँचों घी में हो गयी हैं इन व्यापारियों की। यहाँ एक रंग का व्यापारी है। मामूली आदमी था वह। लड़ाई शुरू हुई। जर्मनी से रंग आना बन्द हो गया। गोदाम में रखे चार आने के माल के चार रुपये बनाये बेटा जी ने और अपनी निजी इमारतें खड़ी कर रहा है। व्यापारी लोग मौज कर रहे हैं। इसलिए वे नहीं चाहते कि लड़ाई बन्द हो। इसीलिए लड़ाई को आगे चलने देने के लिए वार लोन, वार-फंड और अवर डे फंडों में खोलकर पैसा दे रहे हैं। और हम लोग जिन्होंने वहाँ जाकर अपना खून बहाया है, इस तरह भूखों मर रहे हैं। बारह घंटे नौकरी करके भी सिर पर तेल का पीपा लिये दर-दर भटक रहे हैं। आग लगाओ उस लड़ाई को और लड़ाई शुरू करने वाले राजनीतिज्ञों को !

किसी बहाने अर्जुन बाहर चला गया, फिर भी शिधू बोल ही रहा था।

दूसरा दौरा

शिधू के स्वास्थ्य में अब काफी सुधार हो गया था। वह नित्य की भाँति आफिस जाने लगा था। उसकी शक्ति बहुत क्षीण हो जाने के कारण आफिस का काम ठीक से करते न बनता था। बुखार से उठने के बाद गई हुई ताकत फिर से आने के लिए उसे जो खुराक मिलनी चाहिए थी वह प्राप्त होना असंभव होने के कारण उस कमजोरी में ही उसे आफिस में जाकर काम करने के लिए मजबूर होना पड़ा था।

उस दिन अर्जुन दोपहर की छुट्टी में घर आया। उसके सिर में दर्द था। घर आते वक्त उसे सुभद्रा से यह कहने की फुरसत न मिली कि वह घर जा रहा है।

घर आया तो आश्चर्यचकित हो गया। उसी तरह बीच की छुट्टी में घर कभी न आने वाले अर्जुन को अचानक आया देखकर, रमा भी आश्चर्य में आ गई।

अर्जुन के आश्चर्य-चकित होने का कारण बड़ा विलक्षण था। जीना चढ़कर जब वह ऊपर आया तो गैलरी में कोई अपरिचित स्त्री खड़ी हुई उसे दिखाई दी। जब नजदीक जाकर देखा तो वह रमा थी।

वह रेशम की जरदार मूल्यवान साड़ी जिसे 'पैठणी" कहते हैं, पहने थी। उस के बदन में चोली भी रेशमी थी। उस पोशाक में अर्जुन ने उसे पहिले कभी न देखा था। वर्तमान आपत्ति के दिनों में त्यौहार पर भी वह इन मूल्यवान वस्त्रों को कभी बाहर नहीं निकालती थी। वह पैठणी उसकी पैतृक संपत्ति थी। वैसी साड़ी अब देखने को भी नहीं मिलती और यदि बाजार में जाकर वह बेची जाए तो उसका कोई खरीददार भी न मिलेगा। हाँ, उसके जर को जलाकर ज्यादा से ज्यादा

चार-पाँच रुपए मिल सकते थे ।

उसे देखते ही अर्जुन बोला—"यह क्या है पटेलन भाभी ? कोई त्यौहार है क्या ? यह सजावट आज किसलिए ?"

रमा की आँखों से आँसुओं की धाराए बहने लगीं । अर्जुन के छक्के छूट गए । वह बोला—"जब तुम्हें देखा तो गौरी जैसी दिखी और अब एकाएक यूँ रोती क्यों हो भाभी ? मैं सोचता हूँ कि सारे दुखों को तुमने इस कीमती वस्त्र से ढंक दिया है । मेरे सिर में दर्द था इसलिए मैं घर आया । पर तुम्हें देखते ही जी भरकर आनन्द हुआ और मैं अपना सारा दुख भूल गया । लेकिन देखता हूँ तो तुम यूँ रो रही हो ।"

कुछ न बोलकर रमा ने खूँटी पर से अपनी साड़ी उतारी और उसकी एक-एक तह खोलकर अर्जुन को दिखायी । उस साड़ी में बीसों पैबंद तो लगे ही थे, पर अब उन पैबंदों में भी छिद्र हो गये थे ।

रमा बोली—"देखा तुमने, अर्जुनराव ! यह ऐसा हो गया है इसलिए यह पैठणी निकालनी पड़ी । यह दरिद्रता का वैभव है, अर्जुनराव ! एक साड़ी खरीदने की भी ताकत नहीं है हमें । इसीलिए सहेज कर रखी इस पैठणी को पहनना पड़ रहा है । यह बुरी तरह बदन में चुभ रही है, और अंतरतम में भी ! भीतर और बाहर लगातार चुभन हो रही है इस पैठणी के कारण !" वह अपनी सिसकी न रोक सकी ।

अर्जुन का कंठ भर आया । वह बोलने का प्रयत्न कर रहा था, पर उसके मुँह से शब्द ही न निकलते थे । कुछ भी बोलना चाहिए इसलिए उसने मुँह खोला ही था कि इसी समय······

···इसी समय दूकानदार आ धमका । रमा को उस पोशाक में देखते ही वह बोला—"ओ हो हो ! यह ठीक हुआ बाई साहब ! अब दे डालिए मेरी उधारी ।"

"कहाँ से लाऊँ बाबा !"—दयनीय मुद्रा करके रमा बोली ।

"क्यों भला ?" दूकानदार बोला—"अब तो आप ऐसी कीमती साड़ियाँ पहिनने लगीं । क्या रुपए हाथ में आए बिना कोई इतनी कीमती

साड़ियाँ पहिनता है कभी ? ऐसे मूल्यवान वस्त्र बिना पैसों के कोई कैसे खरीदेगा ?"

'नहीं भाई !" रमा ने सिसकियों के बीच कहा—"तुम ग़लत समझ रहे हो। घर में एक कौड़ी नहीं है, इसीलिए यह साड़ी मजबूर होकर पहिन रही हूँ।"

"पैसे नहीं हैं, इसीलिए यह साड़ी पहन रही हो ?"—दूकानदार विस्मयचकित होकर बोला—"यह तो बड़ी अनोखी बात है। गरीबी में ऐसी अमीरी शान कौन दिखाएगा ?"

रमा बड़ी स्वाभिमानी थी, पर पैसों के अभाव में लाचार हो गई थी। अपनी दुखमयी हालत के बारे में उसने आज तक कभी खोलकर किसी से कुछ नहीं कहा था। परन्तु अब बात चरम सीमा को पहुँच गई थी। इसलिए उसे अपना अभिमान लपेटकर एक ओर रख देना पड़ा।

वह खूँटी के पास गयी। उसने अपनी साड़ी की एक तह खोल कर उस दूकानदार को दिखायी और कहा—"देखा ! यह बात है इसीलिए यह साड़ी पहिननी पड़ी। यह दो सौ रुपए की है। क्या इसके लिए कोई ग्राहक मिल जाएगा ? यदि इसकी इतनी ही कीमत कहीं मिल जाए जिससे तुम्हारी उधारी चुका सकूँ तो भी संतोष हो जाएगा। इतना ही भार कम हो जाए तो इस फटी साडी को पहिनकर ही मैं दिन काट लूँगी।"

दूकानदार स्तब्ध हो गया। वह क्या उत्तर देता है, इस ओर अर्जुन का ध्यान लगातार लगा था।

रमा कह रही थी—"तुम जानते नहीं भैया ! वे लड़ाई पर गए थे। वहाँ उनके सिर में जख्म हो गया था। उनकी स्मृति भी जाती रही। भगवान ने उनकी स्मृति पुनः लौटा दी। इसके बाद यह बीमारी आई। उनका वेतन बंद हो गया। अब बताओ कहाँ से तुम्हारे पैसे दें ? चूल्हे पर हंडी तो चढ़नी चाहिए न ? जाकर किसी दूसरे के पैर पड़ूं इससे तुम्हारे सामने ही दामन फैलाती हूँ। धर्म की बहिन मानकर मुझे इतनी

भीख दे दो। उनका स्वास्थ्य जरा ठीक हो जाने दो। हमें जब पैसे मिलने लगेंगे तो हम तुम्हारा एक-एक पैसा चुका देंगे। तब तक हमारे पीछे तकाजा न लगाओ और न हमें उधार देना ही बंद करो। बस, यही भीख तुमसे चाहती हूँ, भैया !" ऐसा कह कर सचमुच ही उसने उस दूकानदार के चरण पकड़ लिए।

वह गिरगाँव का दूकानदार न था। गरीबों के दुख देखने का उसे अभ्यास था। जब उधारी बढ़ जाती और ग्राहक उसके पैसे न देता तो वह ग्राहक को खूब गालियाँ देता। पर इस समय यह देखकर कि एक ब्राह्मण की औरत अपने बनिये के चरण पकड़ रही है, उसका हृदय भर आया। कुरते की बाँह से आँसू पोंछता हुआ वह बोला—"कोई चिन्ता न करो, बहिन ! जब तुम्हारे पास पैसे आवें तब देना और जिस चीज की जरूरत हो मेरी दूकान से मांग लेना। जाने क्यों जाते है ये लोग लड़ाई पर ? लड़ाई पर ले जाते वक्त तो उन्हें बड़ा सब्ज बाग दिखाया जाता है, पर लड़ाई से लौटने पर उनकी हालत क्या है, क्या सरकार को यह नहीं देखना चाहिये ? क्या करूँ बहिन, मेरी कपड़े की दूकान नहीं, वरना मैं एक साड़ी भी तुम्हें उधार दे देता।" उसका कंठ भर आया था। मुँह से शब्द नहीं निकल पा रहा था। कुछ भी न कहकर वह वह चला गया। अर्जुन स्तब्ध ही खड़ा था।

बिस्तर पर सिर रखकर रमा सिसक-सिसककर रोने लगी। इतने स्पष्ट शब्दों में उसने अपनी गरीबी कभी किसी के सामने खोलकर नहीं दिखाई थी।

दूकानदार का हृदय पसीज गया था और उसे दया आयी थी, इस में शक नहीं, पर उसे लगा कि मैंने स्वयं अपने हाथ से ही अपने स्वाभिमान पर आघात किया।

अर्जुन बोला—"रोओ मत भाभी ! रोने से क्या होगा ? शिवू भैया को रोना पसन्द नहीं, यह जानती हो न ? गरीब पर गरीब को ही दया आती है। एक छोटी सी दूकान लेकर धन्धा कर रहा है

बेचारा। मिल के बाबुओं की उधारी पर क्या धन्धा चलता होगा बेचारे का ? अब उसके पैसे नहीं मिलते तब वह लोगों पर बिगड़ जाता है; उन्हें गालियाँ तक देता है। उसके बारे में लोग ऐसी शिकायत करते हैं। पर कह नहीं सकता कि उसके घर भी दोनों जून चूल्हे पर हांडी चढ़ती होगी या नहीं ?" बोलते-बोलते अर्जुन रुक गया। उसके सिर का दर्द अब बहुत बढ़ गया था। वह बोला—"मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है। मैं कमरे में जाकर बिस्तर पर थोड़ी देर लेटता हूँ।"

वह क्या कह रहा था, रमा को सुनाई तक नहीं दिया। वह अपने ही दुख में चूर थी। उसका विचार-चक्र घूम रहा था—मुझे एक पराये आदमी के सामने, दामन फैलाकर याचना करने का मौका आया, मुझे उसके चरण पकड़ने पड़े। मेरा हृदय इस दुख से विदीर्ण हो रहा है। डाकखाने की नौकरी करते समय बीस रुपये में हो सुख की गृहस्थी चल रही थी। लड़ाई शुरू हुई, हर चीज की कीमत बढ़ गई, बम्बई में आकर रहना पड़ा और ऊपर से यह रोज की झिकझिक ! पहिले अर्जुन के उपकारों का मुझे बड़ा बोझ लगता था। पर वह वह अपने गाँव का ही है। हमारा आसामी है। एक तरह से हमारा आश्रित है। अपने आश्रित का उपकार लेना आश्रयदाता के लिए यद्यपि लाचारी है फिर भी दोनों आत्मीयता के सूत्र में बंधे हैं। पर यह दूकानदार तो एकदम पराया है। अगर उसके पैसे न दें तो चिल्लाता है, गालियाँ देता है और ऐसे दूकानदार के चरण पड़ने पड़े !"

उसे लगा इससे तो मुझे मौत ही क्यों न आ गयी ? ऐसे लज्जा-जनक जीवन से मर जाना क्या बुरा ? कैसे हमारी यह स्थिति सुधरेगी ? बीमारी में हम पर जो कर्ज हो गया है वह कैसे चुकेगा ?

उस कर्ज का बोझ भी कौन बड़ा भारी था। अमीर लोग मामूली अपनी एक बैठक की पान-सुपारी में ही दस-बीस रुपये उड़ा देते हैं। उतनी क्षुद्र रकम के लिये दूकानदार के चरण पकड़ने का मौका आवे ? कहाँ से यह रकम लायी जाय ? कैसे चुकेगा यह कर्ज ?

अपने ही विचारों में वह इतनी खोई हुई थी कि अर्जुन की उसे सुधि ही न आयी। वह उठकर बैठी और इधर-उधर देखने लगी। अर्जुन वहाँ न था।

उसने अर्जुन के कमरे के भीतर झाँककर देखा। चद्दर ओढ़े बिस्तर पर सोया हुआ था। उसका चेहरा लाल-लाल दीख रहा था। रमा के आने की उसे आहट मिली, फिर भी उसने आँखें खोलकर नहीं देखा। इसलिए वह उसके पास गई। इससे पहिले उसने किसी पराये पुरुष के बदन को हाथ नहीं लगाया था। सिर्फ क्षण-भर के ही उसने यह मालूम किया कि क्या मुझे पराये पुरुष के बदन को छूना चाहिये ?

फिर सोचा, ऐसे प्रसंग पर संकोच क्यों रखा जाये ? उसने उसके मस्तक पर हाथ रखा। अर्जुन का बदन ज्वर से जल र.ा था। उसने धीरे-से उसे पुकारा। पर वह होश में न था।

अब क्या करूँ उसे सूझता न था। यदि मिल का रास्ता जानती होती, तो दौड़कर शिधू और सुभद्रा को बुला लाती। पड़ोसियों में नर्मदा को छोड़कर और किसी से उसकी पहचान न थी।

वह कमरे के बाहर आयी। उसे गैलरी में एक लड़का खड़ा हुआ दीखा। इशारे से उसने उस लड़के को अपने नजदीक बुलाया और उससे कहा—"मैं तुम्हें एक पैसा दूँगी। चने लेकर खा लेना, पर तुम मेरा एक जरूरी काम करो। हमारे घर के लोग जिस मिल में काम करने जाते हैं वह मिल कहाँ है, यह तुम जानते हो ?"

लड़के ने हाँ कहा। तब वह बोली—"वहाँ दौड़ जाओ, बेटा। वहाँ सुभद्रा का पता लगाना और हमारे उन्हें भी खोजना। उनसे कहना अर्जुन को तेज ज्वर चढ़ा है। जल्दी डाक्टर लेकर आओ।" ऐसा कह-कर उसने लड़के के हाथ पर एक पैसा रख दिया। कूदता-फाँदता वह लड़का चल दिया। परन्तु रमा की बेचैनी न गई। उसे लगा, क्या यह लड़का सचमुच मिल में जाएगा या कि चने लेकर दूसरे लड़कों के साथ कहीं खेलने लगेगा ?

वह बिल्कुल भौंचक्की-सी हो गई थी। उसने सोचा और एक पैसा देकर कम-से-कम थोड़ा बर्फ मँगा लेती। कोई दूसरा लड़का मिल जाय इसलिए उसने इधर-उधर देखा। दोपहर के वक्त चाल में सर्वत्र सन्नाटा था।

कुछ उपाय तो करना ही चाहिये था, इसलिए उसने ठंडे पानी की पट्टी अर्जुन के मस्तक पर रखना शुरू किया। कोलन वाटर उस घर में कहाँ से आता। अर्जुन का ज्वर लगातार बढ़ रहा था। इतने जल्दी वह बकना भी शुरू कर देगा ऐसी उसे आशा न थी। पर ज्वर में वह जोर-जोर से परेड के हुक्मों को बोल रहा था।

रमा के प्राण बिल्कुल व्याकुल हो उठे। उसे लगा सुभद्रा होती तो दौड़कर बर्फ ले आती। डाक्टर को भी बुला लाती। सास के द्वारा लगा दिये गये अनुशासन के कारण वह कभी बाहर नहीं गयी थी। बर्फ की दूकान भी जिसे मालूम न थी वह भला डाक्टर को बुला ला सकती थी? सुभद्रा चाहे जहाँ जाती है, चीजें खरीद कर ले आती है, मिल में तो वह जाती ही है। वह सारी मजदूर नगरी से पूर्ण रूप से परिचित है। और मैं? मैं पढ़ी-लिखी जो हूँ? ब्राह्मण जो हूँ? सब से ऊँची जाति की हूँ?

क्या जरूरत थी इस शिक्षा की? लाग लगे इस ब्राह्मण होने को। घर के बाहर कदम न रखने से ही क्या कोई बड़ा हो जाता है। ऐसे बिकट प्रसंग पर जब कि प्रत्यक्ष हमारा उपकार कर्ता ज्वर में पड़ा हुआ है, उस के लिये बाहर जाकर मैं एक पैसे का बर्फ भी नहीं ला सकती? एक डाक्टर नहीं ला सकती! ऐसा ब्राह्मण होना किस काम का?

बार-बार वह ठंडे पानी की पट्टी अर्जुन के मस्तक पर रख रही थी। पुनः बाहर जाकर देखती थी कि कोई आ रहा है या नहीं। वह लड़का आखिर गया कहाँ? अभी तक कोई क्यों नहीं आ रहा? उसे लग रहा था खुद ही पूछते-पूछते डाक्टर के पास चली जाऊँ, पर उस डाक्टर का नाम भी उसे कहाँ मालूम था? उसे लगा, वह लड़का कहीं भटक ही गया है! अब शाम तक कोई नहीं आयेगा! और तब तक

अर्जुनराव का कोई इलाज भी नहीं किया जा सकता।

उसका मन बेचैन हो रहा था। आदमी तो कोई भी नजर नहीं आ रहा था। और अगर कोई दीख भी जाता, तो उससे कहती कैसे? हर क्षण उसे युग की तरह लगने लगा, तभी उसे आभास हुआ जैसे नीचे कोई गाड़ी आकर रुकी है।

देखा तो शिघू और सुभद्रा डाक्टर को लेकर आये थे। रमा का जी ठंडा हुआ।

तेल का पीपा

सुभद्रा आ गयी थी, इसलिए अच्छा हुआ, नहीं तो डाक्टर को फीस कहाँ से दी जाती, यह समस्या खड़ी हो जाती। सुभद्रा के पास कुछ पैसे हमेशा रहते। अर्जुन अपने पैसे कहाँ रखता है इसकी सुभद्रा को कोई कल्पना न थी। इसलिए अपने संग्रह से पैसे निकालकर उसने डाक्टर की फीस दी और वही दवा लाने के लिए डाक्टर के साथ गयी।

शिधू शरमिन्दा-सा होकर अपने कमरे में जाकर बैठ गया। उसे लगा, जब मैं बीमार था उस समय डाक्टर की फीस अर्जुन देता था। अब वह बीमार है इसलिए डाक्टर की फीस देने की बारी मेरी थी। पर वह फीस दूँ कहाँ से ?

सुभद्रा के आने तक रमा अर्जुन के पास बैठी थी। बीच-बीच में वह उसके मस्तक पर बर्फ की पट्टी रखती जाती थी। ज्वर के सब लक्षण वही थे। उतना ही तेज ज्वर, वही बेहोशी, वही श्वासोच्छ्वास ! रमा व्याकुल हो गयी। अर्जुन को भी इन्फ्लुएन्जा हो गया था। उस घर में उस बीमारी की पुनरावृति हुई थी। अच्छे होने में भी वही पुनरावृति हो कि हम सब कुछ पा गये, ऐसा रमा को लगा।

सुभद्रा ने डाक्टर को फीस दी, यह उसने देखा था। शिधू की तरह उसके मन में भी वही बात आयी थी। परन्तु शिधू ने उस बात को तीव्रता से महसूस किया, उतनी तीव्रता रमा के मन में नहीं आती थी। परायेपन का भेद-भाव उसने अपने अन्तःकरण से बिलकुल निकाल डाला था। उसने दृढ़ता से अपने मन में यह निश्चय कर लिया था कि किसी भी तरह अपने मन में सुभद्रा के परिवार के बारे में वह परायेपन का कोई भाव कभी न आने देगी। मनमें इस भाव को यदि

वह आने देती तो उससे क्या फायदा होता ? पहिले से ही दोनों परिवार एक ही घर में रह रहे थे। उनका खाना एक ही चूल्हे पर पकता था। आज भी वही बात हो रही थी। सिर्फ कभी-कभी सुभद्रा अर्जुन के लिए खाने के कुछ पदार्थ अलग से पका देती थी। पर पकाती थी उसी चूल्हे पर। जब ऐसा कुछ होता तो सब लोग एक साथ खाना नहीं खाते थे। शिधू को माँस-मच्छी से कोई घृणा थी ही नही, परन्तु रमा के खातिर वह ऐसे समय अलग से अपने कमरे में खाना खाने के लिए तैयार हो जाता। गृहस्थी की कौन क्या चीज लाये यह भी कोई तय नहीं था। गृहस्थी में किसने कितने पैसे खर्च होते हैं इसका हिसाब भी कोई नहीं देखता था। अर्जुन के पास दो आदमियों का वेतन आता था और शिधू के घर कमानेवाला एक और खाने वाले दो थे। रमा को लगता कि इन तीन कमाने वालों के बीच एक मैं ही बेकार हूँ। इसीलिए सब की रसोई बना देने का काम उसने अपने जिम्मे ले लिया था। वहाँ जाति का कोई सवाल न था। सुभद्रा के हाथ का पका खाने में भी उसे कोई एतराज न था। इतनी उन दोनों में घनिष्ठता हो गई थी। प्रश्न पड़ जाता था ऊपरी खर्च का। और इसीलिए पैबन्द लगी साड़ी पहिन कर वह दिन काट रही थी। अर्जुन के ध्यान में यह बात नहीं आयी थी और जिस समय उसके ध्यान में आया उस समय बुखार के कारण उसने बिस्तर पकड़ लिया था।

सारी गृहस्थी की बातों का सब तरफ से विचार करने लायक ताकत शिधू के दिमाग में न रह गई थी। जो सामने आ जाता वही उसे दिखाता था। डाक्टर की फीस मैं न दे सका यही उसे चुभ रही थी। सुभद्रा जब दवा लेकर वापिस लौटा तब शिधू भी उसके साथ अर्जुन के कमरे में गया। अर्जुन की सेवा करने लायक ताकत उसमें थी ही नहीं और उसका मन भी उतना तैयार न था। इसका कारण उच्च-नीच का भेद-भाव न था। उसका मन सिर्फ डर गया था। एक तो उसका दिमाग कमजोर था। दूसरे हाल ही में वह बीमारी से उठा था। कहीं फिर से

बीमारी उलट पड़ती तो ? वह बिमारी से नहीं डरता था। पर बीमार होने पर खर्च कैसे चलेगा, यह भय उसके हृदय में जम गया था। इसी लिए वह बीमार अर्जुन के नजदीक जाने से डरता था। और सुभद्रा ने भी उसे बीमार के कमरे में नहीं आने दिया। उसने कहा—"हम दोनों यहां हैं। आप जाकर उधर कमरे में बैठिए। आप हाल ही में बीमारी से उठे हैं। बीमार की सेवा आपसे नहीं हो सकेगी। व्यर्थ कष्ट ही होंगे आप को।"

जैसा वह चाहता था उसी प्रकार की अनुमति मिल जाने से वह अपने कमरे में जाकर बैठ गया। जब शाम हुई तब वह अस्वस्थ हो गया। तेल का पीपा लेकर फेरी पर जाने का अर्जुन का वह वक्त था। आज की फेरी चूक जाएगी। आज की कमाई डूब जाएगी। इसके लिए क्या उपाय किया जाए ? सुभद्रा गैलरी में खड़ी थी। उससे शिधू ने पूछा—"पीपे में तेल है क्या ?"

इस चिन्ता के समय भी सुभद्रा हँस पड़ी। बोली—"अगर हो भी तो क्या फायदा ? क्या मै वह काम कर सकूँगी ? और अब खाना पकाने का भी वक्त हो गया है। भाभी को जाकर चूल्हा सँभालना होगा। इसलिए "उनके" नजदीक मुझे ही बैठना होगा। फिर बाहर कैसे जा सकती हूँ ?"

कुछ भी उत्तर न देकर शिधू अपने कमरे में जाकर बैठ गया। एक तरह यह उसे अच्छा लगा कि उसके पूछने का उद्देश्य सुभद्रा के ध्यान में न आया था। पीपा लेकर स्वयं फेरी पर जाने की वह सोच रहा था। एक तो भरा हुआ पीपा उठाकर ले जाने की ताकत उसमें न थी और फिर वह यह भी नहीं जानता था कि पीपा लेकर कहां जाए और कहाँ तेल बेचे। उसने अपने मन को यह कहकर समझा लिया कि बिना जाने कोई धन्धा करना ठीक नहीं होता।

पर फेरी पर न जाने का क्या यही एक कारण था ? मान लो, अगर वह यह जानता भी कि अर्जुन तेल कहाँ और किस तरह बेचता है

तो भी तेल लेकर वह फेरी पर जाता ? जब उसने अपने मन से यह सवाल पूछा उस समय उसका मन उसे कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सका।

उस दिन उसे पढ़ने को अखबार मिल गये थे। विचार करके दिमाग को तकलीफ देने के बजाय वह अखबार पढ़ता बैठा रहा। उस में के समाचार भी दिल पर असर करने वाले थे। अमेरिका की सेना जब से यूरोप में आयी थी तब से शत्रु-दल पीछे हट रहा था। रोज नये-नये जय प्राप्त होने के समाचार आ रहे थे।

उन समाचारों को पढ़कर उसे अच्छा लगा। कोई भी जीते, पर यह लड़ाई बन्द हो जाए, ऐसा उसे लगता। लड़ाई की इस घमासान में हजारों लोग मर रहे होगे ऐसा उसे विश्वास हो गया। अमेरिका यूरोप से कितनी दूर हैं। वहाँ के लोग यूरोप में आकर अपने प्राण व्यर्थ क्यों दें ? हिन्दुस्तान के लोग लड़ाई पर जाकर मर रहे थे, पर वे गुलाम थे। बरसों से तनख्वाह लेती हुई जो पलटनें पड़ी थीं उन्हें इस सकट के समय प्राण देना आवश्यकता था। परन्तु अमेरिका क्यों जाकर वहाँ मरे ? क्या संबन्ध था उसका ? अमेरिका के प्रैसीडेन्ट डाक्टर विल्सन पर शिघू को क्रोध आ गया। इस मनुष्य ने क्यों अपनी सेना यूरोप भेजी ? क्या उसने इस विषय में अपनी सेना से राय ली थी ? उसे लगा, अमेरिका की सेना स्वेच्छा से लड़ने नहीं आयी है। भारतीय सेना की तरह अमेरिकन सेना पर भी जबरदस्ती की गयी होगी।

कहते हैं कि दुनिया में शान्ति थापित करने के लिए अमेरिका ने यह सेना भेजी है। एक दूसरे का गला दबोचकर जो राष्ट्र मरने के लिए तैयार हो गये थे, उनके देशों में शान्ति की स्थापना करने के लिए, पूर्ण शान्ति में रहने वाली अपने देश की सेना को इस मूर्ख प्रेसिडेन्ट ने यूरोप में लड़ने के लिए क्यों भेजा ? यह कल्पना करके कि डाक्टर विल्सन ही उसके सामने खड़ा है उसने यह सवाल पूछा, पर उस बेचारे को कोई उत्तर ही न मिला।

शिवू होश में आया। उसे लगा, अपना उपकार-कर्ता नजदीक के ही एक कमरे में ज्वर में पड़ा है और मैं यह क्या सोच रहा हूँ। भाड़ में जाए वह लड़ाई और भाड़ में जाए वह यूरोप। यहाँ अर्जुन की जान बचाने का प्रश्न महत्वपूर्ण है। उसने दरवाजे से झांककर देखा। अर्जुन उसी स्थिति में पड़ा हुआ था। अलसी की पुलटिस से सुभद्रा उसकी छाती सेंक रही थी। हाथ के इशारे से सुभद्रा ने उसे अपने कमरे में जाने के लिए कहा। फिर भी वह उसी तरह देखता खड़ा रहा। उस की दृष्टि जैसे वहीं स्थिर-सी हो गयी थी।

अगर कहीं यह अच्छा न हुआ तो ? नहीं-नहीं ऐसा कैसे होगा ? आखिर मैं बच ही गया कि नहीं ? क्यों ऐसा अशुभ विचार मेरे मन में आया ?

अगर हो ही गया तो हम क्या करेंगे ? हमारा आगे क्या होगा ? यदि वैसा हो गया तो हमारी सँभाल कौन करेगा ? मैं जब बीमार पड़ा था तब मेरा सारा खर्च उसने उठाया। रमा अपनी बहिन के पास से जो दो रुपये लायी थी वे भी उसने जा कर उसे लौटा दिये। उन पर एक आना ब्याज भी दे आया था वह उसे। वह ले नहीं रही थी, पर उसे खूब खरी-खोटी सुनाकर दो रुपये एक आना उसके मुँह पर फेंक कर वह वहाँ से चला आया था। वह हाल उसने रमा से नही कहा था। धीरे-से मेरे कान में कह दिया था।

और कितना आनन्द हुआ था मुझे उस समय ? उसने मुझे सिर्फ जिन्दा ही नहीं किया, बल्कि मेरी प्रतिष्ठा भी रखी। नहीं-नही, उसे नहीं मरना चाहिए। चाहे जो हो, किसी न किसी तरह उसे अच्छा करना ही होगा।

इस एक ही विचार में खोया हुआ वह सारी रात छटपटाता रहा था। रमा सुभद्रा के साथ कमरे में बैठी थी और उसके काम में हाथ बँटा रही थी। दोनों पारी-पारी से अर्जुन की सेवा कर रही थीं। उसे लगा एक शाम मैंने व्यर्थ खो दी। तेल की एक फेरी व्यर्थ चली गयी।

आठ-दस आने जो भी मिल जाते क्या वे कम थे ? एक पैसा भी इस समय सौ रुपये की तरह है। उसने निश्चय किया कि चाहे जो हो कल तेल का पीपा लेकर फेरी लगाने अवश्य जाऊँगा।

दूसरे दिन सुभद्रा डाक्टर को ले आयी। अर्जुन की जाँच करने के बाद उसने सब को काफी हिम्मत दी। वैसे चिन्ता करने का कोई कारण नहीं था, परन्तु शिधू ने डाक्टर से कहा—"आपने मुझे लगाने के लिए जो एन्टीफ़्लोजेस्टीन दिया था, उसकी क्या इसे जरूरत नहीं है ?"

"छि ! छि !" डाक्टर बोले—"वह तुम्हारे लिए था। इसे अलसी की पुलटिस ही काफी होगी।"

यह कितना पक्षपात ? शिधू को लगा यह डाक्टर क्यों इतना भेद-भाव करता है ? सफेदपोशों के लिए एन्टीफ्लोजेस्टीन और हल्की जाति वालों को अलसी की पुलटिस ! उच्च और नीच जातिवालों की हड्डियों और माँस में क्या कोई फर्क होता है ? क्या दोनों के खून में कोई अन्तर होता है ? पढ़े-लिखे लोगों की यह कैसी धारणा है ?

शिधू अपने आप ही हँसा। उस डाक्टर पर उसे रहम आया। उस डाक्टर ने सोचा होगा कि शिधू अच्छी तनख़्वाह पानेवाला सफेदपोश क्लर्क है और अर्जुन है नीच जाति का एक मामूली सिपाही। वह अपने आप से बोला—"कैसा धोखा खाया बेचारे ने। वह कहाँ जानता है कि आज धनी अर्जुन है और उसी के पैसे पर यह ब्राह्मण जी रहा है ! सफेदपोशी का कितना यह प्रभाव कि डाक्टर भी धोखा खा गया !

अर्जुन के स्वास्थ्य में विशेष फर्क नहीं पड़ रहा था। दोनों लगातार उसकी सेवा में लगी थीं। कुछ देर से ही क्यों न हो, पर शिधू आफिस गया।

शाम को वह घर लौटा। आते ही उसने पहिले तेल का पीपा उठा कर देखा। वह पूरा भरा हुआ था। यह देखकर कि रमा और सुभद्रा का ध्यान उसकी ओर नहीं है, उसने पीपा उठाया और वह जीना उतरने

लगा।

जीने में एक पड़ोसी से भेंट हो गयी। वह बोला—"यह क्या है, शिधू बाबू ? पीपा लेकर कहाँ चले ? भरा हुआ दिखता है।"

"कुछ नहीं। यूँ ही जा रहा हूँ।" कहकर, उसे टालता हुआ शिधू पहिला जीना उतर कर नीचे गया।

दूसरे जीने में दो-तीन व्यक्ति और मिले। पीपा उस समय उसके कन्धे पर रखा हुआ था। एक ने पूछा—"यह क्या है जोशी जी ? कन्धे पर पीपा लिए कहाँ निकल पड़े ? क्या अर्जुन जमादार की तरह फेरी लगाने जा रहे हो ?"

"हाँ ! कोशिश करके देखता हूँ।" इस तरह मन-ही-मन पुटपुटाता हुआ शिधू आगे चला। चाल की सीढ़ियाँ उतरकर वह नीचे आया तो उसके साथी दो चार क्लर्क मिले। सभी एकदम चिल्ला पड़े—"अरे वाह जोशी जी, शायद तेल बेचने जा रहे हैं आप ?"

शिधू पीपे के वजन के नीचे झुका था। उसे सहारा देकर पीपा कन्धे पर से उतारता हुआ एक क्लर्क बोला—"जोशी जी, यह तुम्हारा काम नहीं। अपने शरीर को कष्ट-भर दोगे। क्या फेरीवाले की तरह तुम सड़क पर चिल्ला सकोगे ? तुम्हारे खून में वह बात नहीं। तुम तो मेज पर कागज-काले कर सकते हो। इन कामों को करने के लिए हल्की जाति के लोग ही चाहिए। शारीरिक परिश्रम करने की घुट्टी ही पीकर आते हैं वे लोग।"

कुछ न बोल पुनः पीपे को कन्धे पर रखकर शिधू आगे चलने लगा

उसके कानों में शब्द आये—"अरे वाह ! बाभन ने तो बड़ी कमर कसी मालूम होती है। दाल-भात खाकर ऐसी मेहनत के काम नहीं बनते और सड़क से चिल्लाते जाने की हिम्मत होगी इसे ? कहीं दो-चार लड़कों ने थोड़ा-सा मजाक कर दिया तो भाग ही जाएगा यह बाभन !

जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाने की शिधू कोशिश कर रहा था। परन्तु पीपे का बोझ उसके लिए असहनीय हो रहा था। वह पीपे को नीचे रखता

फिर उठाता और आठ-दस कदम चलने के बाद फिर उतारता और फिर उठाकर चलने लगता। इस तरह वह कर रहा था। आसपास के लड़कों ने उसे देखा तो उन्हें बड़ा मजा आया और वे उसकी हँसी उड़ाने लगे। शिधू को लगा कि पीपा पटककर भाग जाऊँ। उन क्लर्कों के शब्दों की उसे याद हो आयी।

उसी तरह पीपा सिर पर रखे पीछे मुड़ा और बड़े कष्ट से जीना चढ़कर अपने कमरे में आया।

रमा गैलरी में ही खड़ी थी। यह देखते ही कि तेल का पीपा कन्धे पर रखे शिधू आ रहा है, उसे आश्चर्य हुआ। कमरे में जाकर वह चुपचाप बिस्तर से टिककर बैठ गया और बोला—"रमा, मैं हार गया। मैं बिल्कुल नालायक हूँ। इस दुनिया में मैं किसी काम का नहीं। मुझे जिन्दा रखने के लिए अर्जुन फेरी लगाता था। मैंने सोचा, उसके लिए मैं भी वही करूँ। पर नहीं, यह सम्भव नहीं है। मैं मूर्ख हूँ, नासमझ हूँ, कृतघ्न हूँ, जीवित रहने के लिए नालायक हूँ, मेरी देह में ताकत नहीं, मन में शक्ति नहीं! किस काम की यह सफेदपोश जिन्दगी?"

दरवाजा बन्द करके रमा भीतर आयी और दोनों बाहें उसके गले में डालकर बोली—"क्यों मन को इतना कष्ट दे रहे हैं आप? क्या जरूरत है पीपा ले जाकर तेल बेचने की? सुभद्रा ने मुझसे अभी कहा कि अर्जुन को इस संकट की पहिले से ही कल्पना थी। इसलिए आप की बीमारी में जो खर्च हुआ था उस अन्दाज से पैसे बचाकर उसने सुभद्रा को दे रखे थे, जिससे वक्त-जरूरत पर काम पड़े। वही इस समय काम आ रहे हैं। इसलिए आपको तेल-वेल बेचने जाने की कोई जरूरत नहीं।"

"पर मैं उसके लिए क्या कर रहा हूँ?" शिधू ओंठ चबाता हुआ बोला।

"चुप रहिए। मन को ऐसा कष्ट न दीजिए। ताकत होती, पैसा होता तो क्या हम पीछे हटते? अर्जुन अपना माँ-बाप है। माँ से कभी कोई

उऋण नहीं होता ।"

एक क्षण-भर के लिए शिघू चुप बैठा और बाद में अपने मन-ही-मन बुदबुदाने लगा—"अर्जुन मेरी माँ है !" अर्जुन मेरी माँ है, !"

"अब कैसा अच्छा लगा !"—रमा बोली।

उसे अपने नजदीक खींचकर शिघू बोला—"मैं ऐसा मूर्ख कैसे हो गया हूँ। तुम और अर्जुन न होते, तो मेरा क्या होता ? अर्जुन मेरी माँ है और तुम कौन हो ?"

उसके अधर से अधर लगा कर रमा ने कहा—"मैं ! मैं पेज[1] की माँ और सेज की रमा !"

शिघू इतना हँसा कि उसके पेट में बल पड़ गये।

नजदीक के कमरे में अर्जुन ज्वर के आवेश में जोर-जोर से ड्रिल के हुक्म दे रहा था।

---

१ भोजन देने वाली मां

पुराने धागे

अर्जुन का स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधार की राह पर आ रहा था। जितनी जल्दी शिधू अच्छा हो गया था उतनी जल्दी अर्जुन बिस्तर न छोड़ सका। उसका निमोनिया अच्छा होगा या नहीं, डाक्टर को भी इसका शक होने लगा था। परन्तु डाक्टर ने कहा कि दवा की अपेक्षा रमा और सुभद्रा की सेवा से ही अर्जुन को स्वास्थ्य लाभ हुआ।

शिधू ने किसी भी कार्य का अपने पर भार लेना छोड़ दिया था। आफिस जाने के सिवा और कोई भी काम करने की ताकत उसमें न थी। फिर वह सेवा क्या करता ? उसका काम एक ही था—अखबार पढ़ना।

परन्तु उन्हें पढ़ने के बाद समाचारों के बारे में चर्चा करने की उसे जो सनक आती, उसके दूर होने की कोई सम्भावना न थी। डाक्टर ने सख्त ताकीद दे दी थी कि अर्जुन को किसी भी प्रकार का कष्ट न दिया जाए। रमा और सुभद्रा जितना सम्भव था उतना शिधू को टाला करती। मिल के क्लर्कों से यदि वह लड़ाई की बातें करता तो वे उसकी हँसी उड़ाते। फिर भी मिल में उसे कुछ श्रोता मिल जाते। पर वे क्लर्क न होते, मजदूर होते। कुछ ऐसे लोग होते जो अपने को मजदूरों के नेता कहते। शिधू की बातें उनके मन पर असर कर जातीं। उनके कुटुम्बी लड़ाई पर जाकर काम आये थे। लड़ाई के कारण गाँवों में खेती की क्या दुर्दशा हो गई थी, इसकी उनमें से कई लोगों को प्रत्यक्ष आँच लगी हुई थी। ऐसे लोगों को शिधू की बातें जँचने लगीं।

लड़ाई से लौटे हुए और वहाँ पर जख्मी हुए मनुष्य के नाते सभी

को उसके प्रति आदर था। उन से अधिक आदर उस के प्रति इन मज-दूर नेताओं को मालूम होने लगा। लड़ाई के कारण किसानों और मजदूरों पर जुल्म ढाये जा रहे थे, जो जबरदस्ती उन पर हो रही थी और इच्छा न होते हुए भी उन्हें जिस तरह बलात पकड़कर लड़ाई पर ले जाया जा रहा था, इसकी आँच सभी को लगी थी। मिल के मजदूरों में असन्तोष पैदा करना चाहिए, यही शिवू चाहता था। शिवू का कहना था कि लडाई शुरू करने और उसे जारी रखने की जितनी जिम्मेदारी सरकार की है उतनी ही जिम्मेदारी देश के पूँजीपतियों की भी है। लड़ाई के कारण यदि किसी को लाभ हो रहा है, तो व्यापारियों को ही हो रहा है। देशपूजा और राष्ट्रपूजा की अपेक्षा द्रव्यपूजा ही इन व्यापा-रियों का ध्येय है। द्रव्यापार्जन के लिए व्यापारी लोग अपना देश बेचने के लिए भी पीछे नहीं हटेंगे।

इस काम में सभी देशों के व्यापारी एक समान हैं। जर्मनी से चोरी से आए माल पर "मैड इन इंग्लैड" की छाप लगाकर वह माल इँग्लैंड के बाजार में खुले आम बेचा जा रहा है, ऐसी भी अफवाह थी।

लड़ाई की परिस्थिति से लाभ उठाकर अन्धाधुन्ध नफा कमानेवाले हिन्दुस्तान के व्यापारी तो उनके सामने ही थे। यूरोप में लड़ाई हो रही थी तो हिन्दुस्तान में कपड़ा सस्ता होना चाहिये था ऐसी जनता को आशा थी। पर बात बिल्कुल उल्टी हो गयी थी। विदेशों से कपड़े की आयात जैसे-जैसे कम होने लगी वैसे-वैसे हिन्दुस्तान के मिल वाले काफी और सस्ती कपास मिलने पर भी अपने माल की कीमत पर बेहिसाब बढ़ाने लगे थे और अपने इस लाभ के साथ मजदूरों की मजदूरी बढ़ाने का कोई ख्याल न करते थे।

मिल के मजदूरों में इसीलिए असन्तोष बढ़ने लगा था।

गाँवों के किसान अलग हैरान हो रहे थे। सरकार उन पर जुल्म ढा रही थी। साहूकार उनका खून चूस रहे थे और लड़ाई के कारण उनकी संख्या घट रही थी। इसीलिए मजदूरों और किसानों में असन्तोष

की आग भड़कने लगी थी।

शिधू के विचार सुनने के लिए धीरे-धीरे अधिक श्रोता एकत्रित होने लगे। छोटी-मोटी सभाएँ होने लगीं। शिधू अपने मतों को साफ-साफ शब्दों में उनके सामने रखने लगा और उसके परिणामस्वरूप मिल के मजदूर अपने असन्तोष के प्रमाण प्रत्यक्ष रूप से शिधू के सामने पेश करने लगे।

यह विष धीरे-धीरे फैल रहा था। भिन्न-भिन्न मिलों के मजदूर शिधू का भाषण सुनने लिये आने लगे। लड़ाई से जख्मी होकर लौटा हुआ एक सफेदपोश मजदूरों में मिलकर मजदूर की तरह रहता है, मजदूर की तरह सोचता है, मजदूर की दृष्टि से देखता है और मजदूर की बोली में बातें करता है, यह सब देखते ही उसे अनुयायी मिलने लगे।

हर जगह कुछ खराब लोग भी होते ही हैं। इसके अनुसार मिलों में भी कुछ चुगलखोर लोग मौजूद थे। धीरे-धीरे शिधू की हरकतों का समाचार मिल के मालिकों तक पहुँचा और मैनेजर ने एक दिन शिधू को अपने आफिस में बुलाकर खूब डाँटा।

इस डाँट के कारण ही शिधू के प्रति मजदूरों का आदर बढ़ने लगा। डर लगा अर्जुन को। स्वास्थ्य सुधर जाने पर वह हाल ही में अपने काम पर आने लगा था। उसके कानों में जब यह समाचार पड़ा तब वह शिधू से बोला—क्यों तुम इस झंझट में पड़ते हो ? इतनी बड़ी लड़ाई लड़ने वाली सरकार ! उस सरकार से लड़ने की हम मजदूरों की क्या हस्ती ? कुछ भी हो, आखिर मिल के मालिकों पर सरकार की कृपा है। सरकार उनकी रक्षा के लिये उन्हें हर तरह की मदद देगी। मजदूर कोई दंगा करें तो मालिक लोग सरकार की सहायता से एक क्षण में सारे दंगाइयों को कुचल डालेंगे। आज मालिक की नाराजगी के कारण तुम अपनी नौकरी से तुरन्त हाथ धो बैठोगे। अगर ऐसा हो गया तो इस हालत में तुम्हें खोजने पर भी अन्यत्र कोई नौकरी न मिलेगी।"

"बस, कह चुके ? इतनी ही बात न ?"—शिधू बोला—"अब मेरा और अधिक बुरा क्या होगा ? नौकरी चली जाएगी, इतना ही न ? बीमार पड़ने का भी जहाँ सुभीता नहीं । आधी रोटी खाकर अधपेट रहने की अपेक्षा एकदम निर्जला एकादशी क्या बुरी ? बहुत हुआ तो अकेला में मर जाऊँगा, पर हजारों लोग जाग उठेंगे । आज यह लड़ाई बन्द हो गई, समझ लो कि बन्द ही हो गयी है । परन्तु लड़ाइयों का युग शुरू हो गया है । कई बरसों से ऐसा महायुद्ध नहीं हुआ था । पर युद्ध के बाद युद्ध होने लगेंगे । कम-से-कम उस समय तो हमारे लोग व्यर्थ न मरें । और अब स्वराज्य मिलने वाला है । यहाँ के लोगों को विदेश ले जाकर मारने के लिए जो गप्पें दी थीं उन गप्पों के पहाड़ से अब कौनसी चुहिया निकलेगी, यह हम देखेंगे ही ।'

"यह मैं कुछ नहीं समझता ।"—अर्जुन बोला—"मुझे सिर्फ तुम्हारी चिन्ता हो रही है । तुमसे भी अधिक रमा भाभी की चिन्ता मुझे अधिक बेचैन कर रही है ।"

"जब तक तुम हो तब तक मुझे किसी की भी चिन्ता नहीं ।"—शिधू अर्जुन को अपनी बाहों में भरता हुआ बोला—"तुम मेरी इस झंझट में न पड़ो । जिस तरह मिल के दरवाजे पर खड़े होकर पहरा कर रहे हो उसी तरह पहरा करते रहो । मिल के मजदूरों में असंतोष और असमाधान की आग लगाये बगैर मुझे समाधान न होगा ।"

यह देखकर कि अब दलीलें बेकार होंगी, अर्जुन चुप हो गया .

यह सब क्या हो रहा है, रमा को इसकी कोई कल्पना न थी । उसने अर्जुन से पूछा तब उसे सब हाल मालूम हुआ । वह भी आखिर क्या कर सकती थी ? उसे डर लग रहा था इसमें शक नहीं, लेकिन शिधू को रोकना उसके हाथ में न था । शिधू की जन्मजात आनन्दी वृत्ति अब एकदम विलुप्त हो गयी थी । उसका स्वभाव बड़ा कठोर बन गया था । उसमें जरा भी लचीलापन नहीं रहा था । इसीलिए रमा ने सोचा कि लाड़-प्यार से उसके मन को मोड़ने की कोशिश करना बेकार है ।

जब शिधू को समय मिलता तब वह जाने कहाँ-कहाँ भटकने चला जाता। गिरगाँव में वह विशेष आता-जाता न था, परन्तु अपने को मजदूरों का नेता कहने वाले एक मनुष्य के साथ वह सेन्डहर्स्ट रोड पर स्थित सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाईटी के आफिस में गया। लड़ाई की विशेष परिस्थिति की जानकारी प्राप्त करने की कुछ लोगों को वहाँ बड़ी जिज्ञासा थी। ऐसे कुछ नेता वहाँ उसे मिले। अपने मन के विचार उसने उन नेताओं पर साफ-साफ शब्दों में प्रकट किये। लड़ाई और किसानों एवं मजदूरों के स्वार्थों का परस्पर सन्बन्ध क्या है, इसका अपने मत के अनुसार उसने जो निष्कर्ष निकाला था, वह उसने उनके सामने रखा। उन नेताओं ने मजदूरों का एक संगठन बनाने का शिधू को आश्वासन दिया।

लेकिन शिधू को संतोष न हुआ। उसे यही लग रहा था कि वे नेता लोग उसकी बात ही नही समझे हैं। परन्तु उसके साथ मजदूरों का जो नेता आया था वह यह नहीं समझ पा रहा था कि शिधू का समाधान क्यों नहीं हुआ ?

प्रार्थना-समाज के मोड़ पर उसकी पीठ पर किसी ने थाप मारी। आश्चर्य-चकित होकर उसने मुड़कर पीछे देखा तो वह माधवराव था।

बसरा का जलवायु अनुकूल न होने के कारण बीमारी का बहाना बनाकर वह हिन्दुस्तान लौट आया था। वह नौकरी से इस्तीफा देने का इरादा कर रहा था। वह बड़ा आग्रह करके शिधू को अपने घर ले गया। उसे चाय पिलाई और शिधू के छावनी छोड़ने के बाद से वहाँ जो-जो घटनाएँ हुई उनका हाल बताना शुरू कर दिया।

पहिले की अपेक्षा भी वहाँ की स्थिति अधिकाधिक बिगड़ती जा रही रही थी। सिपाहियों में भी असन्तोष अधिक फैल रहा था। आफीसरों में भी लड़ाई के प्रति विशेष आस्था नहीं रह गई थी। यह सिद्ध करने लिए कि लड़ाई जारी है, यूँ ही कहीं-कहीं एक-दो आक्रमण कर दिये जाते थे, ऐसा माधवराव ने बताया।

शिधू ने फिर अपना सारा हाल बताया। उसे सुनकर माधवराव को बड़ा दुख हुआ। उसकी नित्य की उल्लसित और बातूनी वृत्ति उस हाल को सुनते ही एकदम अस्त हो गयी। अपने पर बीती विपत्तियों का हाल कहते समय शिधू को क्रोध आ रहा था। परन्तु माधवराव की आँखों में आँसू देखते ही शिधू का सतुलन एकाएक खो गया।

"रो मत !" शिधू एकदम चिल्ला उठा—"किसी की आँखों में आँसू देखता हूँ तो मेरे सारे बदन में जैसे आग लग जाती है।"

"स्वाभाविक ही है।"—माधवराव बोला—"जो जला-भुना है वही इसे समझता है।"

"स्वाभाविक नहीं !"—शिधू ओठ चबाता हुआ बोला—"यह अस्वाभाविक है। इस लड़ाई ने मुझे राक्षस बना दिया। हृदय से दुख का आवेग उठता है, पर आँखों से आंसू नहीं टपकते। इसलिए मेरी इस तरह घुटन होती है। मैं एक अजीब-सी बेचैनी महसूस करता हूँ। लगता है जैसे पागल हो जाऊँगा। न जाने और कितने लोगों का इसी तरह सत्यानाश हो गया होगा ?"

पुनः शिधू की नित्य की छटपटाहट शुरू हो गई। जैसे-तैसे समझा बुझाकर माधवराव ने उसे शांत किया। दो खजूर खाने से कालरा कैसे हो जाता था, आदि बातें निकालकर उसे हँसाने का प्रयत्न किया। मादेलीन की याद दिलाई।—

मादेलीन का नाम निकलते ही शिधू भौंचक्का हो गया।

"कहां होगी वह ? मेरी याद भी आती होगी उसे ?" शिधू बोला।

माधवराव बोला—"क्या तुम्हें नहीं मालूम ? मादेलीन आजकल यहीं बम्बई में है।"

शिधू की मुद्रा एकदम बदल गयी। आनन्द की लहरें उसके हृदय में उमड़ने लगीं। उसके चेहरे पर एक प्रकार की दिव्य ज्योति चमक उठी। उस स्मृति से ही वह रोमांचित हो उठा।

उसका कण्ठ भर आया, पर आंसू न निकले। वह बोला—"मादेलीन

यहाँ बम्बई में है और अभी तक मुझसे भेंट नहीं की। वह मेरे लिए ही आई है इसमें शक नहीं, खास मेरे लिए। कहाँ है वह ? क्या तुम जानते हो ?"

"चलते हो अभी ?" हमेशा के अपने उतावले स्वभाव के अनुसार माधवराव बोला।

"चलो।" कहकर शिधू उठकर खड़ा हो गया—"कहाँ है वह ? कहीं नजदीक ही है क्या ? या कि फोर्ट में है ? क्या मोटर नहीं मिलेगी एकाध ? क्या करूँ ?" उसका चेहरा एकदम उतर गया। जेब में हाथ डालकर उसने देखा। सिर्फ दो आने ही थे। वह बोला—"हम कैसे जायेंगे ?"

"तुम उसकी चिन्ता न करो।" माधवराव बोला—"जब जाना ही है तब हम जरूर जाएंगे। फिर उसमें कोई रुकावट नहीं। टैक्सी करके चलेंगे। क्या करें हवाई जहाज नहीं है, वरना उसमें बैठकर चलते। फोन करके पूछे लेता हूँ—वह तुम्हारी ही पूछ-ताछ करती थी।" कपड़े पहनता हुआ माधवराव कह रहा था, "तुम्हारा कहना ठीक है। तुम्हारे लिये ही आई है वह। पर इस सिन्धु में बिन्दु का कहाँ पता चलेगा ? कैसे पता चलता तुम्हारा उस बेचारी को। बड़ी आस्था से पूछ रही थी। अब चलकर चकित किये देता हूँ। समझे ? पहले उसे बताऊँगा नहीं। अभी सिर्फ फोन से पूछता हूँ कि वह अपने होटल में है या नहीं ?"

बोलते-बोलते माधवराव कब चला गया, शिधू को इसका पता तक न चला।

शिधू अपने होश में न था, वह उतना ही बेचैन हो गया था। माधवराव की तरह उसे भी लगता था कि पंख होते तो उड़कर चला जाता।

"अजी, अब चलो भी।" कहते हुए माधवराव शिधू को घसीटकर जाने लगा।

———

विदेशी मेहमान

अपोलोबंदर के एक होटल में शिधू और माधवराव जिस समय जाकर पहुँचे उस समय मादेलीन गैलरी में खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। लिफ्ट से ऊपर आया हुआ शिधू मुश्किल से ही चार कदम ही आगे बढ़ा था कि तभी मादेलीन ने आगे बढ़कर अपनी दोनों बाहें उसके गले में डाल दीं और बड़ी गम्भीरता से उसे चूम लिया।

भावनात्मकता का अंकुर शिधू के हृदय मे सूख जाने के कारण उस चुंबन का कोई भी वैकारिक परिणाम उसके मन पर न हुआ। माधवराव ने अलबत्ता उसका हाथ पकड़कर उस पर जोर से ताली दी और जोर-जोर से हँसना शुरू कर दिया।

गैलरी में खड़े हुए एक-दो गोरे दम्पति उस दृश्य को देखकर तुच्छता से नाक सिकोड़ रहे थे। एक व्यक्ति बोला, "फुलिश गर्ल !" इन काले आदमियों को देखो। किस तरह हमारी लडकियों पर जादू कर रहे हैं।"

यद्यपि माधवराव ने उस व्यक्ति के उद्गार सुन लिये थे फिर भी शिधू और मादेलीन के कानों में वे न पड़े। वे दोनों अपनी ही तंद्रा में थे। शिधू का हाथ पकड़कर वह उसे अपने कमरे में ले गयी और एक कुर्सी पर उसे बिठा दिया। माधवराव साथ में था ही।

कितनी ही देर तक वे दोनों एक दूसरे की ओर सिर्फ देख रहे थे। माधवराव इतना बातूनी था, पर वह भी चित्र-लिखा-सा तटस्थ बैठा था।

बसरा के बेस ऑफिस से जिस समय शिधू चला गया था, उस समय के प्रसंग मादलीन की नजरों के सामने से सिनेमा की तरह सरक रहे थे। उस समय शिधू ने उसे पहचाना न था। उस समय वह सिर्फ अर्जुन को

ही पहचानता था। यह देखते ही कि उसकी स्मृति लौट आई है, मादेलीन को अवर्णनीय आनन्द हुआ।

माधवराव से चुप न बैठा जाता था। वह बोला, "अब इनकी याद लौट आई है।"

इस समय ये बातें न कीजिए। मैं देख रही हूँ कि इनकी स्मृति लौट आई है और मुझे इतने से ही समाधान है। यह तो एक ही हैं। पर ऐसे हजारों लोग होंगे, जो इस लड़ाई के कारण मनुष्यों में से उठ गये होंगे। इस लड़ाई में अंग्रेज अपने स्वार्थ के लिए आए, परन्तु सात समुद्र पार करके अपना घर-बार छोड़कर जो हिन्दुस्तानी सेना बिना किसी स्वार्थ के फ्रांस की रक्षा के लिए आई, उसका ऋण बड़ा है। फ्रांस को उन्होंने हमेशा के लिए ऋणी कर रखा है। इसी दृष्टि से मैं इनकी ओर देखती हूँ। स्मृति का विलुप्त हो जाना कितनी भयंकर बात है! ऐसी सजा ये नौजवान क्यों भोगें?

"और भी एक बात है।" माधवराव बोला— 'ये रो नहीं सकते। इनकी आँखों में आँसू नहीं आते।'

"अरे, आँखों में आँसू नहीं आते?" स्तंमित होकर मादेलीन बोली—

शिधू टकटकी लगाये उसकी ओर देख रहा था। उसके हृदय में किसी अज्ञात उर्मियों की बेकाबू घटायें उमड़ उठी थीं। उसके मुंह से शब्द नहीं निकल रहा था। उस वातावरण का माधवराव के मन पर भी प्रभाव पड़ा। वह भी कुछ न बोलकर चुप बैठ गया।

मादेलीन मन-ही-मन पुटपुटा रही थी—"आँसू नहीं आते, हृदय का झरना आँखों के द्वार तक आकर रुक जाता है! क्या हो गया यह! आंसूओं के बिना मनुष्य जिंदा कैसे रहे?" वह थोड़ी देर चुप रही और पुनः बोली—"अर्जुन कहाँ है? वह तो कुशल से है न?"

"वह कुशल से है।" शिधू बोला—"इसीलिए मैं जीवित हूँ उसी ने मुझे जीवित रखा। अपना सर्वस्व खर्च करके उसने मुझे पुनर्जन्म दिया।"

शिधू ने अपना हाल कहना शुरू किया। उसे कहते हुए कभी-कभी

उसका खून मस्तक में चढ़ जाता। वह घबरा जाता और फिर मादेलीन उसके नजदीक बैठकर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरने लगती।

वह दृश्य देखकर माधवराव गदगद हो जाता और हृदय भर जाने से आँखों में आने वाले आँसू शिबू को दिखाई न दें इसलिए उठकर खिड़की के पास जाता और बाहर देखने लगता।

दीये जलने का वक्त हो गया था। मादेलीन बोली—"चलो, हम तुम्हारे घर चलें।"

शिबू के छक्के छूट गये। ऐसी गन्दी बस्ती में इसे कैसे ले जाएं? वह किस बस्ती में किन परिस्थितियों में रह रहा था, इसकी कोई जानकारी न होने के कारण माधवराव बोला—"चलिए, मैं भी चलता हूँ आप के साथ। मैंने भी अभी तक इनका घर नहीं देखा है।"

शिबू के चेहरे पर दयनीयता के भाव उभर रहे थे। वह बिल्कुल बेचैन हो गया था। जोर से हाथ मलता हुआ वह बोला—"नहीं! यहीं आपकी मुलाकात हो यही अच्छा है। मैं ही कल फिर यहाँ आ जाऊँगा। वह दृश्य आप न देखें!"

"कहाँ रहते हैं आप?" मादेलीन ने पूछा।

"नरक में। गरीबी के रौरव में तड़पने वाले लोग जहाँ सड़ा करते हैं, उस नरक में।"

"चलो वहीं चलें!" मादेलीन ने निश्चय-पूर्वक कहा।

"नहीं!" शिबू चिल्ला उठा।

"वह नरक नहीं, मेरी दृष्टि में स्वर्ग है!" कहकर बड़े प्रेम से शिबू के कंधे के नीचे हाथ डालकर वह उसे खींचकर बाहर लाई।

"आपको कहाँ कैसे ले जाऊँ?" शिबू ने गिड़गिड़ाकर कहा।

"आप जहाँ रहते हैं?" मादेलीन बोली—"फिर मुझे वहाँ जाने में क्या हर्ज है?"

शिबू बोला—"मैं नहीं चाहता कि कम-से-कम हमारी गरीबी आप जैसे विदेशियों को दिखाई दे।"

"हमें यदि कुछ देखना है तो तुम्हारी गरीबी ही देखना है।" मादेलीन गम्भीरता से बोली—"तुम्हारी इस गरीबी को हम नहीं देखते। हमने कभी देखा नहीं, इसलिए हमने लड़ाई में तुम्हारे प्राण लिए। चलिये।"

टैक्सी करके वे मजदूर नगरी में सीमेंट की चाल के द्वार पर आये। यह देखकर कि एक मेम शिधू के साथ आई है, चाल में रहने वाले सब लोग गैलरी में आकर इकट्ठे हो गये।

गन्दगी की वह परम सीमा देखकर मादेलीन के रोंगटे खड़े हो रहे थे।

शिधू बोला—"देखिये सच्चा हिन्दुस्तान यही है!"

हाथ में हाथ डाले वे दोनों जिस समय कमरे के दरवाजे पर आए, तब रमा आश्चर्य-चकित हो गई। माधवराव साथ था ही। मादेलीन को देखते ही अर्जुन दौड़कर आया। उसका हाथ पकड़ कर जिस समय शेकहैन्ड करने लगा, तब रमा और सुभद्रा आश्चर्य से चकित हो गईं। कैसे उसने हिम्मत की? मेम का हाथ पकड़ लिया।

अर्जुन के गले में हाथ डालकर मादेलीन ने जब चुम्बन लिया तब यह देखकर उन दोनों की क्या स्थिति हो गई थी, इसका वर्णन करना असम्भव है। गैलरी में खड़े लोगों का आश्चर्य भी चरम सीमा को पहुँच गया था। लड़के बच्चे 'ही-ही' हँस रहे थे। उस गन्दी चाल के उन दो कमरों की स्वच्छता और टीपटाप देखकर मादेलीन को आश्चर्य हुआ। उन कमरों की प्रत्येक वस्तु दारिद्रय की मूर्तिमान प्रतीक थी। परन्तु वह दारिद्रय घिनौना न था। धनी की दृष्टि को असहनीय होने वाली वह निर्मल दरिद्रता मादेलीन को पवित्रता की प्रतीक प्रतीत हुई।

शिधू ने परिचय कराया, "यह है मेरी पत्नी।"

मादेलीन ने कसमसाकर रमा को बाहों में भरकर उसका चुम्बन लिया। रमा सिहर उठी। परंपरागत की अस्पृश्यता की कल्पना उसके हृदय में जाग्रत हुए बिना न रही।

सुभद्रा का भी इसी तरह से परिचय हुआ। वह बेचारी बिल्कुल हर्ष-विभोर होकर मन-ही-मन हँसने लगी। उसे लगा कितनी भाग्यशाली हूँ मैं। एक गोरी मेम ने मुझे बाहों में भरकर चूम लिया।

माधवराव की आँखें सजल हो गयी थी। इसलिए वह गैलरी के कठघरे से टिककर रास्ते की ओर देख रहा था।

कमरे में कुर्सी न थी। सन्दूक पर ट्रंक रखकर अर्जुन ने उस पर कंबल बिछाया और मादेलीन के लिए बैठक तैयार कर दी। उस खुरदरे कम्बल का स्पर्श मादेलीन को महसूस हुआ। पर उसने सोचा, यही सच्चे हिन्दुस्तान का वस्त्र है! यही स्पर्श बड़े भाग्य का है?

सब लोग एक दूसरे के मुँह की ओर लगातार देख रहे थे। रमा बिल्कुल कोने में जाकर खड़ी हो गई थी। उससे शिधू बोला—"आओ, इधर बैठो। इनसे अँग्रेजी में बातें करो। कम-से-कम अब तुम जरूर पछताती होगी कि तुमने अंग्रेजी नहीं सीखी।"

उन्हीं के साथ भोजन करने का मादेलीन ने हठ पकड़ लिया, तब अलबत्ता अर्जुन का कलेजा टूट गया। जिस समय अर्जुन शिधू के कानों में यह पूछ रहा था कि मादेलीन के लिए बाजार से कौन-कौन सी खास चीजें लायी जाएँ, उस समय मादेलीन उनकी ओर देख रही थी। अंदाज से वह ताड़ गयी कि दोनों आपस में क्या बातें कर रहे है। इसलिए वह तुरन्त बोली—"देखो जी मेरे लिए बाहर से कोई भी खाने की चीज मत लाओ। समझे! मेरे लिए कोई खास खाना भी मत पकाओ। तुम लोग जो राज खाते हो वही मैं भी खाऊँगी।

माधवराव ये अर्जुन को इशारे से एक तरफ बुलाया। धीरे से एक दस रुपये का नोट अर्जुन के हाथ में थमाकर उसकी मुट्ठी बन्द कर दी।

अर्जुन बोला—"नहीं-नहीं जी! इसकी क्या जरूरत?"

"पहले मेरी सुनो।" माधवराव बोला—"मैं यह कोई दान नहीं दे रहा हूँ। समझे? बसरा में मैंने शिधूजी से दस रुपये उधार लिये

थे। जब वह वापिस आया, तो उसकी स्मृति खो गई थी। इसलिए उस वक्त लौटाना मैंने ठीक नहीं समझा। उन्हीं रुपयों को अब मैं लौटा रहा हूँ। इस समय ये रुपये उसके हाथ में देना उचित नहीं, इसलिए तुम्हें दे रहा हूँ।"

माधवराव बिल्कुल सफेद झूठ बोल रहा था। परन्तु उसकी बात से अर्जुन का समाधान हो गया।

रमा के सामने समस्या उपस्थित हुई। खाना क्या पकाया जाए? शिधू बोला—"हो जाने दो इन्हीं की मन की। जो रोज पकाती हो वही पकाओ। कुछ भी फर्क मत करना। हमारा ऐश्वर्य देख लेने दो इन्हें।"

खाना पकने तक उनकी बातें चल रही थीं। रमा और सुभद्रा काम में लग गई थी। परन्तु कुछ समझ में न आते हुए भी अर्जुन बड़ी श्रद्धा से उन बातों को सुन रहा था। मैसोपोटामिया में रहते समय मादेलीन का स्वास्थ्य खराब हो गया था और नर्स का काम छोड़कर उसे फ्रांस लौट जाना पड़ा था। दोनों रणभूमियों पर हिन्दुस्थान के लोगों का हो रहा संहार देखने के कारण हिन्दुस्थान देखने की उसकी जिज्ञासा बेकाबू हो उठी थी। जहाज से सफर करना उन दिनों बड़ा खतरनाक था। बम्बई आते ही उसने मिलिटरी ऑफिस के जरिये शिधू और अर्जुन के बारे में पूछताछ की। परन्तु उसे इतना ही लग सका कि दोनों को डिसचार्ज करके पेंशन दे दी गई है। इसके आगे और कोई पता न चला। मिलटरी ऑफिस में उस वक्त ठीक से व्यवस्था न थी। मिलटिरी एकाउंट में मद्रासी लोग भरे थे। महाराष्ट्रीयों के नाम भी वे लोग ठीक से नहीं पढ़ सकते थे। अर्जुन पेंशनर था। इस कारण सच पूछा जाए तो उसका पता प्राप्त होना असंभव न था। पर नाम के हिज्जे में कुछ गड़बड़ी हो जाने के कारण मादेलीन को उसका पता न मिल सका। शिधू का डाकखाने से सारा सम्बन्ध टूट चुका था। इसलिए उसका पता लगना संभव ही न था। एक दिन माधवराव अपोलोबंदर घूमने गया था। वहाँ अचानक मादेलीन से उसकी मुलाकात हो गयी

थी। यदि यह मुलाकात न होती तो आज का यह मिलन का संयोग उपस्थित ही न होता। मादेलीन को लगा कि भवितव्यता नाम की कोई चीज अवश्य है और उसके सूत्र एक दूसरे में उलझे हुए होते हैं। और वे जिस तरह उलझे होते हैं उसी तरह आप-ही-आप सुलझ भी जाते हैं।

खाना सजाने के लिए मेज जैसी कोई व्यवस्था करने की अर्जुन कोशिश कर रहा था। परन्तु मादेलीन ने उसे साफ रोक दिया।

हिन्दुस्थानी प्रथा के अनुसार नीचे बैठकर बिना काँटे चम्मच के खाने में उसे बड़ी तकलीफ हुई, इसमें शक नहीं। पर उसे एक कठिन परीक्षा समझकर वह हाथ से खाने का प्रयत्न कर रही थी। भात और दाल किस तरह मिलाते हैं, हाथ से उठाकर कौर मुँह में कैसे डाला जाता है, दही में डुबोकर रोटी कैसे खाई जाती है इत्यादि पाठ माधवराव उसे पढ़ा रहा था और वह उसकी सूचना के अनुसार उस भोजन के समारोह को संपन्न करने का सफल प्रयत्न कर रही थी।

यह सुनकर कि पति के खाये बिना पत्नी नहीं खाती, मादेलीन को बड़ा अजीब-सा लगा। उसे लग रहा था कि भोजन समारोह में सब लोगों को एकत्रित होकर भोजन करना चाहिए। जब खाना खाया जा रहा था तब चाल के प्रायः सभी लोग आकर झाँककर देख जाते थे।

मादेलीन जिस समय जाने लगी, उस समय आने के समय जो विधियाँ हुई थी, वही फिर दोहराई गई। उसके लिए टैक्सी लाने के लिए माधवराव को बहुत दूर तक पैदल जाना पड़ा।

मादेलीन के जाने पर अर्जुन मुँह भरके उसकी प्रशंसा कर रहा था। रमा के हृदय में जो किल्मिष आ गया था वह मादेलीन को प्रत्यक्ष देखने के कारण अब सहज ही दूर हो गया था। रमा को इस समय अगर कुछ लग रहा था तो सिर्फ यही कि उसने मादेलीन को छू लिया तो क्या वह इस छुआछूत को माने। क्या वह स्नान करके पवित्र हो। बिधू बोला—"अर्जुन की छूत लगती है, यह माँ की शिकायत

थी, तब तुम माँ को दोष देती थी। तुम्हारे मन में अर्जुन के प्रति कृतज्ञता के कारण जो आत्मीयता निर्मित हुई, उसके कारण तुम्हें उसकी छूत नहीं लगती। उसी तरह यह भी है। इससे जब तुम्हारा अच्छा परिचय हो जाएगा, तब इसके प्रति भी तुम्हें कोई परायापन न लगेगा। लड़ाई पर जाने से मुझे जो एक बड़ा सर्वमान्य तत्व मिला वह यही कि इन्सानियत के राज्य में जाति, वर्ण और धर्म के भेद नहीं।"

"मैं भी ऐसा कहाँ कह रही हूँ ? रमा बोली—"कलंबस्त के पलटन वाले ने जो कहानी बनाकर कही थी उसके कारण मेरे मन पर थोड़ा परिणाम हो गया था। परन्तु अब मुझे मालूम हो गया। इन विलायत वालों के चुंबन लेने के समारोह में कोई विशेष मतलब नहीं रहता। यह बात अब अनुभव से मुझे मालूम हो गई, इसलिए अब मेरे मन का सारा किल्मिष धुल गया।"

अर्जुन बोला—"देखो भाभी, हम लोग कम-से-कम साफ और टीपटाप लोग है। पर फ्रांस के किनारे पर जब हम पहली बार उतरे थे, तो फ्रांस की तरुणियों ने पान तमाखू खाकर गंदे हुए हिन्दुस्तानियों के चेहरों का चुंबन लिया था। उस समय यदि आप देखतीं तो बेहोश ही हो जातीं।"

सभी हँस पड़े।

शिधू बोला—"हंसी आती है, इसी को कम-से-कम भाग्य समझना चाहिए।"

"मैं भी तो वही कहती हूँ।" रमा बोली—"बस हमेशा हँसते रहना चाहिए। भूलकर भी हमें रोने की याद न आनी चाहिए। आज मादेलीन को देखा और मुझे लगने लगा कि आज से हमारे रोने के दिन समाप्त हो गये।"

उन चारों दुःखी जीवों के जीवन में वह दिन बड़े आनन्द में बीता। क्या रोने के दिन सचमुच समाप्त हो गये थे ?

जागृति

दूसरा दिन बड़े आनन्द का उदय हुआ। सुबह उठकर देखा तो मयेकर परिवार कोंकण से लौट आ गया था, नर्मदा आयी, पर अपना कमरा खोलने से पहले रमा और सुभद्रा से मिली। सुख-दुख की बातें होने लगी। मयेकर भी शिधू के साथ बातें करता गैलरी में खड़ा था। अपना कमरा खोलने की भी उसे याद न रही।

यद्यपि इनफ्लुएंजा की बीमारी अब भी शुरू थी, फिर भी वह अपने गाँव से लौटकर बम्बई जाने के लिए बाध्य हो गया था। यदि वह न जाता, तो उसकी नौकरी चली जाती। और अगर नौकरी चली जाती, फिर से वह मिलती इसकी आशा बिल्कुल न थी। घर बैठकर लाता क्या? बम्बई से पैसे भेजे तब कहीं गाँव में चूल्हे पर हंडी चढ़ती थी। मयेकर ने कहा—"अपने मन को समझा लेता हूँ, बस ऐसा समझकर कि बीमारी का जोर अब बहुत कम हो गया है, मैं लौट आया हूँ। गाँव में भूखों मरने की अपेक्षा, यहाँ अच्छी तरह खा-पीकर मरना अच्छा।"

सब लोग बड़े खुश थे। मिल में जानेवाले लोग मिल में चले गये। मयेकर को उस दिन नौकरी पर हाजिर नहीं होना था।

शिधू का मन काम में न लगता था। कोई बहाना बनाकर उसने छुट्टी ली और वह घर लौट आया।

उसे अचानक घर आया देखकर रमा के छक्के छूट गये। उसका मन बड़ा संशयालु हो गया था। जरा भी कुछ कम-अधिक देखती, तो उसके मन में भला बुरा शक होने लगता। पर शिधू ने जब कहा कि मादेलीन से मिलने के लिए वह छुट्टी लेकर आया है, तब उसका जी ठंडा हुआ।

अब उसके मन में मादेलीन के बारे में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं रहा था। औरतों की नजर बड़ी पैनी होती है। मादेलीन जब तक वहाँ थीं तब तक रमा ने उसे बिल्कुल बारीकी से निरखकर देखा था। उसने एकबार भी ऐसा न देखा कि मादेलीन अथवा शिधू ने एक दूसरे की ओर चोरी-चोरी देखा हो।

यद्यपि यह आधुनिक कल्पना कि स्त्री और पुरुष मित्र हो सकते हैं, रमा को जँची न थी, फिर भी उसने अभी-अभी विदेशों के वर्णन सुने थे, उसके कारण उन दोनों के परस्पर निस्सीम स्नेह के बारे में उसे अब कोई संशय नही रह गया था।

शिधू की जेब में कुल पूँजी चार आने थी। ट्राम से फोर्ट तक जाने के लिए छः पैसे लगते थे, आफिस आने के लिए छः पैसे खर्च करने के बाद भी उसके पास एक आना बचाता था। मन में यह हिसाब लगाकर वह फोर्ट जाने के लिए रवाना हुआ। वह अगर माधवराव के घर जाता, तो उसे एक आना और खर्च करना पड़ता। यही नहीं, बल्कि माधवराव को अपने साथ ले जाना पड़ता।

वह होटल में पहुँचा। मादेलीन मिली। और उसी समय पता लगा कि लड़ाई बन्द हो गई—आर्मिस्टिस हो गई।

मादेलीन को एक दिन से अधिक रहना सम्भव न था। उसने जहाज में अपना स्थान सुरक्षित करा लिया था। उसका पैसेज पहले ही बुक हो चुका था। परन्तु अब आर्मिस्टिस हो जाने के कारण सफर में किसी भी प्रकार का भय नहीं रहा था।

उस दिन वह मादेलीन के साथ उस होटल में ही खाना खाने के लिए रह गया। बहुत दिनों के बाद विदेशी पद्धति से खाना खाने का अवसर प्राप्त होने के कारण उसे लगने लगा जैसे वह विदेश में ही है, हिन्दुस्तान में नहीं। आस-पास चारों तरफ गोरे लोग दीख रहे थे। सारा इंतजाम विदेशी ढंग का था। खिड़की के बाहर नजर डालने से सामने दिखाने वाला दृश्य भी विदेशी वातावरण से मिलता जुलता था।

और सामने मादेलीन बैठी थी। उस वातावरण की भिन्नता के कारण उसके विचारों को भी एक अजीब मोड़ मिला। हिन्दुस्तान की मिलों में मजदूरों की क्या हालत है, इस विषय पर वह मादेलीन से बातें कर रहा था। मजदूरों की वर्तमान परिस्थिति से वह उसे परिचित करा रहा था। शिधू की "चाल" में कुछ समय बिताने के कारण मादेलीन उस परिस्थिति की थोड़ी-सी झलक देख ही चुकी थी।

शिधू ने आग्रह किया कि वह मिल में चलकर सारी परिस्थिति अपनी आँखों से देखे, और वह तैयार भी हो गयी। वह उसे लेकर अपनी मिल में आया और मैनेजर से उसका परिचय कराया। उस समय मैनेजर ने शिधू को भी बैठने के लिए कुर्सी दी। जहाँ मेज के नजदीक खड़े होना भी सम्भव न था, वहाँ सिर्फ एक गोरे चमड़े के साथ आने से जो उसका स्वागत हुआ, उसे देखकर आनन्द होने के बजाय शिधू को क्रोध ही आया।

मिल देख चुकने के बाद मादेलीन को लेकर शिधू अपने घर आया। आने जाने का खर्च मादेलीन ही कर रही थी। इसलिए उसकी चार आने की पूँजी में से छः पैसे से अधिक खर्च न हुए थे। इसकी उसे बड़ी खुशी हो रही थी।

मादेलीन को लेकर वह घर आ तो गया, पर घर में उसका स्वागत कैसे किया जाए, यह उसके सामने एक समस्या ही थी। माधवराव के द्वारा दिये गये दस रुपये अर्जुन ने रमा को दे दिये थे। पर वह बात शिधू को मालूम न थी। मादेलीन के आने पर मयेकर की सहायता से रमा ने जिस समय होटल से बिस्कुट और केक आदि मँगाकर उसके स्वागत की तैयारी की, तब शिधू को बड़ा आश्चर्य हुआ।

एक विदेशी सुसंस्कृत महिला अपनी गन्दी चाल में आकर हममें मिल-जुलकर हमारे साथ बर्ताव कर रही है, इसका मयेकर परिवार पर भी प्रभाव पड़ा। यही नहीं, बल्कि ऐसे बड़े आदमी की शिधू से मित्रता होने के कारण उसके प्रति भी उन्हें आदर मालूम हुआ।

फ्रेंच प्रथा के अनुसार मयेकर को जो पहिली सलामी दी गई थी उसे देखकर बेचारी नर्मदा के छक्के छूट गए थे। पर रमा ने हँसकर उसकी सराहना की।

थोड़ी देर के बाद मिल को छुट्टी दे दी गई थी। इस कारण सुभद्रा और अर्जुन भी घर आ गये थे।

मयेकर बोला—"यह सब मादेलीनबाई के चरणों का प्रताप है। उनके आने के कारण लड़ाई बन्द हो गई। मैं भी आ गया। इतने महान संकट से गुजरने के बाद हम सब एक दूसरे से फिर मिले। बादल साफ होने लगे। अब अच्छा सूर्य प्रकाश पड़ेगा। सब को सुख के दिन दिखेंगे। अब मुझे लगता है कि यह बीमारी भी काला मुँह करेगी।"

बम्बई की मिलों की विदेशों की मिलों से जब मादेलीन तुलना करने लगी तो उसे सुन कर मयेकर को भी आश्चर्य हुआ। जब उसने यह सुना कि वहाँ के मजदूरों की हालत यहाँ के मजदूरों से कई गुनी अच्छी होने पर भी, वे अपनी हालत को और अधिक सुधारने के लिए झगड़ रहे हैं, तब वह बोला—"शिधूबाबू जो कहते थे, वह बात मुझे अब जँच गई। हम उन्हें दोष देते थे कि वे मजदूरों में असंतोष और अशान्ति फैलाने की कोशिश कर रहे है और इसका हमें डर लग रहा था। यूँ ही मालिक को नाराज क्यों किया जाए, इसलिए शिधूबाबू के आन्दोलन से मैं और मेरी तरह और भी कई लोग काफी दूर रहने का प्रयत्न करते थे। पर अब पता चला, अब समझ में आया। आप फ्रान्स भले ही चली जाएँ, परन्तु वहाँ के मजदूर आन्दोलन के बारे में हमें आप पता देती रहिए। वहाँ की कुछ संस्थायें मजदूरों के लिए आन्दोलन कर रही हों तो उनका हाल भी हमें मालूम होना चाहिए जिससे हमें भी उससे कुछ शिक्षा मिलेगी और हम भी अपना मार्ग निश्चित कर सकेंगे।

"आन्दोलन के समान दूसरा कोई साधन नहीं।" मादेलीन बोली "मैं जब से हिन्दुस्थान में आयी हूँ तब से यहाँ की परिस्थिति का

अध्ययन कर रही हूँ। मैंने देखा कि तुम्हारे धर्म ने तुम्हें कमजोर बना दिया है। मैं तुम्हारे धर्म की निन्दा नहीं करती। मेरे देश में धर्म को विशेष महत्व चाहे न दिया जाता हो, फिर भी दूसरों के धर्म के प्रति व्यक्तिगत मेरे मन में कोई मनमुटाव नहीं। परन्तु भगवान और भाग्य पर भार डालकर आकाश की ओर आँखें लगाये प्रार्थना करने का जो मार्ग तुम्हारा धर्म सिखाता है उसके कारण ही तुम्हारा सत्यनाश हुआ है। उधर रूस जाग उठा है। कोई अद्वितीय तत्वज्ञान दुनिया के सामने आएगा, ऐसा लगने लगा है। मार्क्स नाम के एक जर्मन तत्ववेत्ता ने जो तत्वज्ञान निर्मित किया, उससे स्वयं जर्मनी के लोगों ने कोई फायदा नहीं उठाया। हमारे देश में उसके कुछ अनुयायी हैं। परन्तु मार्क्स के तत्वज्ञान को आधार मानकर रूस में अब जो क्रान्ति हो रही है उसका सारी दुनिया की राजनीति पर विलक्षण प्रभाव पड़ेगा, ऐसा मैं सोचती हूँ। यहां के बाद मैंने रूस जाने का निश्चय किया है। मैं चाहती हूँ कि वहाँ के मजदूरों का यहाँ के मजदूरों से सम्बन्ध हो जाए। तुम दरिद्री हो। आन्दोलन चलाने के लिए आवश्यक धन तुम्हारे पास नहीं, परन्तु यहाँ का आन्दोलन चलाने के लिए रूस से तुम्हें मदद मिल गयी, तो हिन्दुस्थान में क्रान्ति हो जाएगी, ऐसा मुझे साफ दिख रहा है। यहाँ की सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसाइटी के एक प्रख्यात मजदूर नेता से मेरी भेंट हुई थी। उनका मत भी यही है। मैं लौट कर जब अपने देश जाऊँगी, तब कसकर इसकी कोशिश करूँगी कि ये सूत्र कैसे जुड़ सकते हैं। उससे पहले तुम लोग यहाँ के मजदूरों के मन तैयार करने की कोशिश करते रहो। इस लड़ाई से जो अनर्थ हुए हैं उनकी आँच मध्यम श्रेणी के लोगों को नहीं लगी। पूंजीपतियों को लड़ाई के कारण खूब फायदा हुआ। जो लड़ाई में मरे है वे बिल्कुल निम्न स्तर के लोग हैं। पर इस लड़ाई के कारण ही उनकी बुरी दशा हो गई है, यह उन्हें महसूस करा देना चाहिये। भविष्य की लड़ाई के समय वे सावधान रहें, इस प्रकार से उनका मत तैयार हो जाना चाहिए। शेर के मुँह को

जब मनुष्य का खून लग जाता है तब वह जिस तरह मनुष्य मारने का धड़ाका शुरू कर देता है उसी तरह युद्ध का रक्त मुँह में लग जाने से ये सुखासीन राजनीतिज्ञ स्वस्थ न बैठेंगे। आज नहीं तो कल लड़ाईयाँ कुरेदकर निकालगे। उस समय इस लड़ाई का स्मरण लडाकू जाति को देना चाहिए। हिन्दुस्तान के पीछे एक परम्परा है, एक इतिहास है। उस इतिहास के स्मरण से हम फ्रेंच लोगों की तरह तुम लोगों का खून खौल उठता है। भविष्य की लड़ाई के समय लड़ाई के जोश से हिन्दुस्तानी लोग परायों की राजनीति के लिए अपना खून नहीं बहायेंगे। इस की अभी से तैयारी करनी चाहिए। रोज यही बात कहते रहना चाहिए, रोज आन्दोलन करते रहना चाहिए। विस्मृति होने से ग्लानि आ जाती है वह ग्लानि न आनी देना चाहिए। सफेदपोशों से कुछ नहीं होगा। वे सिर्फ वाचाल होते है। अपनी बुद्धि पर उन्हें अभिमान होता है इसलिए वे कभी एक नहीं होंगे। भाग्य समझो कि मजदूरों को इस बात का ज्ञान नहीं कि वे बुद्धिमान है। उन्हें पदवियों का अभिमान नहीं, सभ्यता की शेखी नहीं। क्रान्ति करेंगे तो मजदूर ही करेंगे।"

उसका भाषण सुनते हुए गैलरी में खड़ा एक क्लर्क जोर से हँस पड़ा। तब सबका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ। मयेकर ने कहा— "क्यों हँसे जी ? वे क्या कर रही हैं उसे तुम समझे भी हो ?"

हाँ कुछ कुछ समझ गया हूँ।"—वह बोला

"फिर हँसे क्यों ?"

"ये मेम साहब बडी लम्बी-लम्बी गप्पे हाँक रही हैं।" सुख और सन्तोष से हम रह रहे है और हमसे कह रही हैं कि आन्दोलन करो। हमने आन्दोलन किया और यहाँ की मिले बन्द हो गयीं, तो इन विदेशियों की पाँचों घी में हो जायेंगी—।"

"यहाँ से भागो तुम !" शिवू चिल्ला उठा। और वह क्लर्क चला गया। यह बीच ही में क्या बात हो गयी मादेलीन यह न समझ पायी। शिवू ने उससे सारी बात कही तब वह बोली—"इस तरह तो चलता

ही रहेगा। ऐसे लोग हमारे देश में भी क्या कम हैं ! परन्तु गुलामी में खुशियाँ मनाने की तुम हिन्दुस्तानियों की वृति देखती हूँ, तो मुझे दुख होता है। मैं बड़े-बड़े लोगों से मिली, परन्तु बुद्धिमानों को भी यह कहते देखकर कि अंग्रेजो की छत्र-छाया के बिना हमारा कुछ नहीं होगा, मुझे बड़ा धक्का लगा।" वह क्षणभर के लिए चुप बैठी। उस की नजर बड़ी करुणापूर्ण हो गई थी। वह बोलने लगी तब उस का कंठ गदगद हो गया था—"तुमसे मैं क्या कहूँ ? कुछ भी हो, आखिर मै विदेशी हूँ। आज तुम पर जो शासन कर रहे है उनसे मेरा साम्य है। उस साम्य के कारण तुम मेरे भाषण से चमकोगे ही, इसे मैं महसूस करती हूँ। मैं कल चली जाऊँगी फिर कब भेंट होगी इसका कोई ठिकाना नहीं। परन्तु हिन्दुस्तान के बाहर के जाग्रत हुए मजदूरों का तुम से सम्बन्ध करा देना यह मेरा एक पवित्र कर्तव्य है, यह निश्चय करके ही मैं हिन्दुस्तान का किनारा छोड़ रही हूँ।"

उसके भाषण का मयेकर के मन पर बड़ा विलक्षण प्रभाव पड़ा। स्वभाव से वह बड़ा डरपोक था। आप भले और अपना काम भला, इस वृत्ति से नौकरी करते हुए दिन काटना ही उसके जीवन का उद्देश्य था। परन्तु अन्तःकरण की जिस आत्मीयता से, और जिस आवेश से मादेलीन बोल रही थी, उस का प्रभाव उस की सन्तोषी वृत्ति पर पड़े बिना न रहा। मुझे थोड़ी बहुत अंग्रेजी आती है उसका मुझे यह बड़ा फायदा हुआ, ऐसा मयेकर ने कहकर दिखाया।

दूसरे दिन के जहाज से मादेलीन जाने के लिए निकली, उस समय ये सारे लोग उसे पहुँचाने बन्दर गये।

एक यूरोपियन महिला साधारण मजदूर स्त्री-पुरुषों से आलिंगन कर करके बिदा ले रही है, फूट-फूटकर रो रही है, जहाज छूटते समय भी डेक पर खड़ी होकर उमड़नेवाली सिसकियों को मुँह से रुमाल लगा कर दाब रही है, हाथ हिलाकर बिदा ले रही है यह देखकर गोरे लोगों की बात छोड़िये, पर बन्दर के मजदूरों को भी आश्चर्य हुआ।

लड़ाई के बाद-नींद

माधवराव उस समय बेकार था, फिर भी उसके पास काफी पूँजी थी। लड़ाई से लौटने के बाद वह काफी रुपया अपने साथ लाया था और वही रुपया अभी उसके पास था।

शिधू को पता भी न चल पाता और कभी-कभी वह उसे मदद कर देता। किसी न किसी बहाने वह कोई कपड़ा, कुछ मिठाई या ऐसी और भी कुछ चीजें लाकर शिधू के घर दे जाता। कहता, ये मेरे गाँव से आई है। मैंने इन्हें खरीदा नहीं है।

उधारी लौटाने के बहाने उसने अर्जुन को जो दस रुपये दिये थे उस पहेली को शिधू हल न कर सका। रमा ने उससे कहा कि ये वही रुपये माधवराव ने लौटाये हैं जो आपने उन्हें बसरा में कभी उधार दिये थे। पर शिधू को यह बात जँची नहीं। जब उसने इसके बारे में माधवराव से पूछा, तब माधवराव बोला—"यार उस समय की बातें तुम्हें याद भी हैं? एक दिन मुझे रुपयों की बड़ी जरूरत पड़ गयी थी और मेरी तनख्वाह मिली नहीं थी, उस समय तुमने मुझे दस रुपये लाकर दिये थे। मैं तो ले नहीं रहा था। पर मेरी जरूरत को महसूस करके तुमने दस रुपये का एक नोट जबरदस्ती मेरी जेब में ठूँस दिया था।

माधवराव ने इतना सुन्दर अभिनय किया कि आखिर शिधू को वह बात सच लगी। एक दिन जब वह एक साड़ी और चोली के लिए कपड़ा लेकर आया, तो रमा वे चीजें लेती न थीं। तब माधवराव बोला, "मेरी बहिन का विवाह हुआ है। हमारे गाँव की प्रथा है कि घर में जब कोई मंगल-कार्य होता है तो उसके उपलक्ष्य में हम अपने नातेदारों और स्नेहियों को नये वस्त्र बांटते हैं। इस तरह मुझे कोई दस-बारह साड़ियां

बाँटनी पड़ी। आप हमारे कारबार तरफ की रीतियाँ नहीं जानतीं।"

दक्षिण कोंकण की रीतियों को जब मयेकर बताने लगा, तब रमा ने वे वस्त्र स्वीकार किये।

उधर मिल में कुछ गुफ्तगू हो रही थी। मयेकर को शक हुआ कि जब मादेलीन बातें कर रही थी, उस समय गैलरी में खड़े जो लोग उसका भाषण सुन रहे थे, उनमें से ही किसी ने जाकर मैनेजर से चुगली की होगी। मैनेजर ने हर व्यक्ति को अपने दफ्तर में बुलाकर काफी डाँट-फटकार की और धमकी दी। जब शिधू से पूछा गया तब वह बोला, "मालिक का कुछ नुकसान हो, यह मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं। मालिक का कोई बुरा न हो, असावधान रहने के कारण एकदम आग न भड़क उठे, इसके लिए मैं बड़ा सावधान रहता हूँ। हिन्दुस्तान के बाहर दुनियां में जो आन्दोलन हो रहे हैं, उसका प्रभाव यहाँ पड़े बिना न रहेगा। यूरोप में चल रहे आन्दोलन की ओर कोई ध्यान न देता था, कोई उसकी चिन्ता तक न करता था, उसकी किसी ने परवाह भी न की थी। परन्तु इस लड़ाई के कारण अब दुनियाँ के सारे देश एक दूसरे के नजदीक आने लगे हैं। हमारे जैसे आदमी लड़ाई पर गये—बिल्कुल निम्न-स्तर के लोग गये, विलायत की अब कोई शान नहीं रही। मजदूर आन्दोलन अब रुकेगा नहीं। इसे चलाने के लिए मैं नहीं तो कोई दूसरा खड़ा हो जाएगा। इस समय आप लोगों को मजदूरों की चिन्ता करनी चाहिए। मजदूरों में मिल के प्रति आत्मीयता पैदा करनी चाहिए। यदि यह नहीं करोगे, तो मैं कह सकता हूँ कि फिर ईश्वर ही, अगर वह कहीं है तो, तुम्हारी रक्षा करेगा।"

उस दिन से मैनेजर ने शिधू पर नजर रखने के लिए अपने मनुष्य नियुक्त कर दिये। परन्तु शिधू का प्रचार धड़ल्ले से चल रहा था। मयेकर उसे अपने ढंग से रोकने की कोशिश करता, परन्तु इसका उस पर कोई असर न होता। मयेकर ने रमा से कहा—"भाभी! अब आप ही शिधू बाबू को समझाइए। उनकी जीभ बड़ी पैनी है। जब बोलने

लगते हैं तो फिर उन्हें होश नहीं रहता और इधर हमारे ही लोग चुगल-खोर हैं। यहाँ तो हमसे बड़ी आत्मीयता दिखाते हैं और उधर जाकर चुपचाप मैनेजर और मालिक के कान भर देते है।"

"मैं उनसे क्या कहूँगी, मयेकर लाला ?" रमा बोली—"आपने उन्हें पहिले नहीं देखा। उनके पहले के स्वभाव से आप परिचित नहीं हैं। वे सदा प्रसन्न-मन रहा करते थे। हमेशा हँसते-खेलते रहते, उनमें बचपन ही भरा था ऐसा ही कहिए न। परन्तु अब सिक्के का रंग बिल्कुल बदल गया है। अब पहले की एक भी बात उनमें न रही। मामूली बातें करने में भी मुझे डर लगता है, फिर यह इतनी बड़ी बात उनसे कैसे कहूँ ?"

नर्मदा ने एक बार अपने ढंग से प्रयत्न करके देखा पर शिधू एकदम उस पर चिल्ला उठा—"तुम घर घुसनी औरतें इन बातों को क्या समझोगी ? खून बहाया है हम मर्दों ने। प्राण गए हैं हम मर्दों के। औरतों ने क्या किया ? चूड़ियाँ फोड़ी, मंगलसूत्र तोड़े और माँग का सिंदूर पोंछ डाला। उन्हें लगा अपने मृत पति के लिए हमने यह कितना बड़ा काम कर दिया और अपने को कृतकृत्य समझा। परन्तु हजार सुहागिनों की मांगों का सिंदूर पोंछ देने से भारतमाता की माँग में सिंदूर नहीं भर जाता ? यदि कुछ दिल में लगता हो तो आकर हममें शामिल हो। बैठे-बैठे चूल्हा फूंकते रहने की अपेक्षा कम-से-कम बहरे मजदूरों के थांड़े कान ही फूंको। मर्दों की तरह आगे बढ़ो। उधर विलायत में देखो, औरतें बन्दूक लेकर रणभूमि पर जाने की माँग कर रही थीं। परन्तु वहाँ मर्द भी बड़े ईर्ष्यालु, डरपोक, नामर्द ही होते हैं। उन्हें लगा यदि औरतों ने तलवार के जौहर दिखाए तो मर्दों की इज्जत जाती रहेगी ! इसलिए लाल क्रास का पट्टा देकर मर्दों ने औरतों को अस्पताल में रख दिया।

यदि अपने देश के प्रति तुम्हें कुछ प्यार या अभिमान हो, तो इस चाल के कबूतरखाने से निकल कर बाहर जाओ और मजदूरों को जाग्रत करो !

नर्मदा को लगा, कहाँ मैं बोल पड़ी !

नया वर्ष उदित हुआ। पदवियों की खैरात बाँटी गई थी। शिधू के मालिक को 'सर' की पदवी मिली थी। मैनेजर को लगता था जैसे वह 'नाईट हुड' उसे ही मिली हो !

उस दिन मिल बन्द रखी गयी। सब मजदूरों को एक दिन का अधिक वेतन दिया गया। सब को लगा हमारे मालिक कितने उदार हैं !

और यह हाल सुनकर शिधू के हृदय में क्रोध की आग भड़कने लगी। उसे लगा जैसे उस के सारे बदन में आग लग गयी हो। वह बेचैन होकर गैलरी में टहलने लगा। उसकी वाचा नहीं फूट रही थी।

शिधू को जिस समय ऐसा क्रोध आया था, उसी समय रमा का शरीर ज्वर से जल रहा था। सुभद्रा और नर्मदा लगातार उसके बिस्तरे के पास बैठी थी। पर शिधू उस तरफ झांककर भी न देखता था।

अर्जुन लगातार दौड़-धूप कर रहा था। वह आकर माधवराव को बुला लाया। माधवराव ने सलाह दी कि रमा को किसी अच्छे अस्पताल में ले जाकर भरती कर देना चाहिए। अर्जुन बोला—"हमने यहाँ दो आदमियों की सेवा करके उन्हें अच्छा कर लिया। फिर क्या तीसरे की भी हम सेवा न कर सकेंगे। इन्हें यहीं रहने दीजिए। हम सेवा करके ठीक कर लेंगे।" परन्तु माधवराव ने अर्जुन की बात नहीं मानी।

वह बोला—"तुम लोग मर्द थे। यह स्त्री है। सुभद्रा और नर्मदा उसकी सेवा करेंगी। मैं यह नहीं कहता कि वे नहीं करेंगी। पर इस सेवा के कारण ही उन दोनों को इस बीमारी की छूत लग गयी तो उसका नतीजा क्या होगा, यह सोचा है तुमने ? स्त्रियों को इस बीमारी से बड़ा भय रहता है। इनफ्लुएंजा से जो मरे हैं उनमें स्त्रियों की संख्या ही अधिक है। इसलिए कहता हूँ। तुम्हें कोई चिन्ता न होनी चाहिए। मैं ही सारा प्रबन्ध किये देता हूँ। मैं तुम में से किसी की भी न सुनूंगा। रमा भाभी को मैं अस्पताल में ही भरती करूँगा, और मैंने जो एक बार कह दिया सो कह दिया।"

अम्बुलेंस कार लाकर माधवराव रमा को अस्पताल ले गया और वहाँ उसे भरती करा दिया।

नर्मदा और सुभद्रा भी साथ गई थीं। वे वहाँ का सारा प्रबन्ध देख आयी। तब उन्होंने कहा कि माधवराव ने ठीक ही किया।

क्या चल रहा है, इसका शिधू को होश न था। अपने ही विचारों में खोया वह पिंजड़े में बन्द शेर की तरह गैलरी में टहल रहा था।

उस दिन मिल के अफसरों ने कुंदनलाल को एक शानदार पार्टी दी थी। मिल के भिन्न-भिन्न विभागों के मुख्य अधिकारी, जाबर, हैडजाबर भी निमंत्रित थे।

मजदूरों को किसी ने भी नहीं बुलाया था। और मजदूरों को निमंत्रित करना संभव है, ऐसा कोई भी समझदार मनुष्य न कहता।

सर कुंदनलाल के बंगले के अहाते में दीवाली की तरह रोशनी की गयी थी। नाच-गाना हो रहा था। बंबई के सब बड़े-बड़े लोग उपस्थित थे। बड़े-बड़े सरकारी अफसर भी आये थे। अंग्रेजी ढंग से पार्टी का प्रबन्ध किया गया था और भाषण आरम्भ हुए।

सर कुंदनलाल के गुणों का वर्णन करते समय हर भाषणकर्ता को अपने शब्द अधूरे लग रहे थे। उन भाषणों को सुनकर सर कुंदनलाल का हृदय भर आया था। उत्तर देने के लिए कुंदनलाल खड़े हुए। उस समय उनका स्वर गदगद हो गया था। वे बोले—"मित्रो, आपकी यह सहानुभूति देखकर मेरा हृदय कृतज्ञता से भर गया है। महायुद्ध के भयंकर संकट में अपनी दयालु सरकार की सहायता करने में मैंने जो थोड़ी सी मदद की है, वह दरिया में खसखस के बराबर है। मेरी उस राजभक्ति के पारितोषक के रूप में हमारी सरकार ने आज मुझे···

एक बड़ा कोलाहल-सा सुनाई दिया। मजदूरों का एक बड़ा दल शिधू के नेतृत्व में घुस आया और सर कुंदनलाल से मुलाकात करने के लिए हो-हल्ला मचाने लगा।

सर कुंदनलाल बड़े खुशी में थे। उन्होंने बड़े दयालु हृदय से अपने

मजदूरों को भीतर बुलाया । सब एक पंक्ति में खड़े हो गये । नेता की हैसियत से शिधू कुंदनलाल के सामने जाकर खड़ा हो गया ।

शिधू को देखते ही मैनेजर का मुँह खट से उतर गया । अब कोई अजीब प्रसंग उपस्थित होगा, ऐसा उसे लगा । सर कुंदनलाल शिधू को पहचानते थे । उन्होंने पूछा—"कैसे आए मि० जोशी ?"

"यह क्या हो रहा है ?" शिधू ने गम्भीरता-पूर्वक पूछा ।

"महायुद्ध के संकट में सरकार की थोड़ी सी मदद करने का जो कार्य मैंने किया उसके लिए सरकार ने 'सर' की पदवी देकर मुझे सम्मानित किया है । अतः मेरा अभिनन्दन करने के लिए आज मेरे सारे मित्र पधारे हैं ।"

"और हम कौन हैं ? क्या आप के बैरी है ? हमें क्यों नहीं बुलाया ?'

"यह सामारोह मेरे मित्रों ने किया है । यदि मैं यह सामारोह करता तो तुम्हें जरूर बुलाता ?"

"फिर ये जाबर और हैडजाबर यहाँ क्यों है ?"

"मेरे मित्रों ने ही उन्हें निमंत्रित किया है ।"

फिर आपके मित्रों ने हमें क्यों निमंत्रित नहीं किया ? क्या जाबर और हैडजाबर ही आपके मित्र हैं और हम सब आपके बैरी है ?"

"मि० जोशी, यह आनंद का समारोह है । यहाँ झगड़ा करने की क्या जरूरत ?"

"आनन्द आपको हुआ होगा, पर हमारे पेट में आग जल रही है । हजारों लोगों का खून चूसकर प्राप्त किये करोड़ों रुपयों में से मुट्ठी भर रुपये आपने फेंक दिये इसलिए आप 'सर' हो गये ! हम गरीबों ने अपने कलेजे का खून दिया, हाथ-पैर दिये, दिमाग दिया, सिर दिया, तो हमें तो किसी ने 'सर' नहीं बनाया ? क्या मूल्य सिर्फ रुपयों का ही है ? आप की दयावान सरकार की रक्षा करने के लिए हमने अपना खून बहाया, जो पलटन वाले थे वे लड़ाई में इसलिए गये क्योंकि वे नौकर थे, पर लड़ने का जोश हृदय में रखकर लड़ाई पर गया मुझ जैसा सिविलियन

अपना दिमाग खो बैठा। घर के लोगों से भी वंचित हो गया—आज खाने के लाले पड़े है उसे। प्राणों की परवाह न करके लड़ाई पर जाने का क्या यही इनाम है ?"

"यह मैं क्या बताऊँ ? मैं कोई सरकार नहीं। तो फिर आप सरकार से कहिए न।" शिधू का चेहरा हरा-पीला हो गया था। उसका सारा बदन काँप रहा था। मुंह से निकलने वाला हर शब्द आग की चिनगारी की तरह उड़ रहा था। वह बोला—"तो फिर जाकर अपनी सरकार से कहिए कि लड़ाई से लौटे हुए प्रत्येक मनुष्य का जब तक कोई बड़ा कल्याण कल्याण नहीं होता है तब तक सरकार द्वारा दी गई इस पदवी को हम स्वीकार न करेंगे।"

सर कुंदनलाल ठहाका मारकर हँसने लगे। आस पास बैठे लोगों में भी कहकहे की लहर दौड़ गयी।

शिधू का खून दिमाग में चढ़ गया था। मन पर का उसका अधिकार छूट चुका था। आत्यंतिक क्रोध के पराकाष्ठा से बेकाबू होकर उसने सर कुंदनलाल के मुंह पर एक जोर का चांटा जड़ दिया।

सब तरफ हाहाकार मच गया। मैनेजर ने टेलीफोन करके पहिले से ही पुलिस वालों को बुला लिखा था। वे आ पहुँचे थे। शिधू की खोज करता हुआ अर्जुन भी इसी समय वहां आ पहुँचा।

क्रोध के आवेश में शिधू कुंदनलाल पर घूंसे और चांटे बरसा रहा था। पकड़कर खींचने वाले पुलिस वालों से भी वह नहीं रोका जा रहा था। जब उसके हाथ पकड़ लिए, तब वह कुन्दनलाल को लातें जमाने लगा। पुलिस ने उसे हथकडियाँ पहना दीं और जब वे उसे ले जाने लगे, तब अर्जुन आगे बढ़कर बोला—"मेरे पटेल को कहाँ लिए जा रहे हो?"

"पुलिस थाने पर।" एक पुलिस सिपाही ने उत्तर दिया।

"तो फिर मुझे भी ले चलो।"—अर्जुन बोला।

"तुम्हें क्यों ले चलें। तुमने कोई गुनाह नहीं किया है।"

"मैं गुनाह अभी करता हूँ।"—ऐसा कहकर अर्जुन वहाँ से तीर

जैसा निकला और जाकर कुन्दनलाल पर एकदम टूट पड़ा और अपने ठूंठे हाथ से उन्हें पीटना शुरू कर दिया।

पुलिस ने अर्जुन को भी पकड़ा। हथकडियाँ ठोंकी। तब अर्जुन बोला—"व्यर्थ है तुम्हारी ये हथकड़ियाँ। मेरा एक हाथ ठूंठा है।"

पुलिस ने उसकी भुजा को मजबूत रस्सी से बाँध दिया।

उन दोनों को पकड़कर ले जाने के बाद शांत चित्त से सर कुंदन-लाल ने अपना भाषण समाप्त किया।

*　　　*

रमा अस्पताल में तड़पती पड़ी थी।

सुभद्रा और नर्मदा, शिघ्रू और अर्जुन की बाट जोहती हुई गैलरी में खड़ी थीं। मयेकर शिघ्रू के दल के साथ न गया था।

मयेकर लाकअप में उन दोनों से मिलने आया। उस समय शिघ्रू बोला—"आज मेरा जन्म सार्थक हो गया। देखो मयेकर मेरे हृदय के भीतर खौलने वाला उफान जब इस तरह बाहर निकल पड़ा और जब मैंने अर्जुन को देखा तब मुझे एकएक रमा की याद हो आयी और मेरी आँखों से एकदम आँसू गिर पड़े। रमा से कह देना कि अब मैं मनुष्यों में आ गया हूँ। अब उसे चिंता करने की कोई जरूरत नहीं। मैं रोने लगा हूँ। अब मैं मौत से भी नहीं डरूँगा।"

शिघ्रू की आँखों से लगातार आँसुओं की झड़ी लगी थी। मयेकर सिसक-सिसककर रो रहा था। अर्जुन अलबत्ता पत्थर के पुतले की तरह तटस्थ होकर बैठा था।

शिघ्रू एकदम हँस पड़ा। वह हँसते-हँसते बोला—"मयेकर, मेरे भाई बन्दों से मेरा संदेश कह देना। मैं उनका अनंत अपराधी हूँ। मैंने बड़ी नासमझी की। मैं अपने मन को न रोक सका, क्या करूँ! मैं अपने को न रोक सका और इसलिए मैं मनुष्यों में आ गया और इसीलिए मुझे माफ कर दो। मेरे कारण शायद तुम लोगों को कोई कष्ट हुए तो उनसे कह देना कि उसका पाप मेरे सिर पर है। यह मैं जानता हूँ।

मयेकर से सिसकी नहीं रोकी जाती थी। वह रो रहा था।

"रोते हो मयेकर ?" शिधू बोला--"अब रोना ही है सबको। रोने का समय आ गया था और मैं रो नहीं सकता था, इसका मुझे दुख था। पर अब मेरा सुख का प्याला पूरा भर गया है। अब मैं मन-माना रोऊँगा। लड़ाई अब बंद हो गयी है। लड़ाई पर हम लोगों को जब बाँध कर ले गये, तब सरकार ने वचन दिया था कि हिन्दुस्तान को स्वराज्य देंगे। चर्चाएँ चल रही हैं। माटेग्यु-चेम्सफोर्ड रिफार्म आ रहे हैं। राज्य का संविधान बदलने वाला है।"

हथकड़ियों से जकड़े हुए हाथों से आँसुओं को पोंछता हुआ बड़े प्रेम से हँसकर शिधू बोला, "मयेकर, कोई लाख कहे कि हिन्दुस्तान का बड़ा कल्याण होगा, परन्तु इस लड़ाई के कारण जिस समय हमने खून बहाया उस समय हमने यह कभी नहीं सोचा था कि हमें यह पुरस्कार मिलेगा। हमें लड़ाई पर भेजने वालों ने भी ऐसा कभी नहीं सोचा था। नये संविधान के आने से भी कुछ न होगा। फिर से अगर लड़ाई हुई और मैं जिंदा रहा तो कहूँगा ही। परन्तु अगर मैं मर गया तो मेरे देश भाइयों से कहना—"तुम्हारा सत्यानाश हो जाए फिर भी कोई हर्ज नहीं, परन्तु अपनी खुशी से लड़ाई पर न जाना। अगर तुम पर जबरदस्ती करें, तो भी लड़ाई पर मत जाना। लड़ाई पर जाकर क्या होगा ? हमारा क्या हुआ ?

हथकड़ियों से बँधे हाथ ऊपर उठाकर शिधू मयेकर से बोला—"हमें यही पुरस्कार मिला न ? पैसे देकर कोई 'सर' हो गया, इसलिए सिर देकर हमें ये हथकड़ियाँ मिली ?"—कह कर वह ठठाकर हँस पड़ा।

हथकड़ी से बँधे हाथ से अर्जुन को चुटकी काटकर वह बोला—"सुना अर्जुन, अबे सिपाही के बच्चे ! लड़ाई के बाद क्या ? लड़ाई के बाद यह ! लड़ाई के बाद ये हथकड़ियाँ......" ऐसा कहकर हथकड़ियों में बंधे हाथ उसने ऊपर उठा दिये। हथकड़ियाँ झनझना उठीं।

* समाप्त *